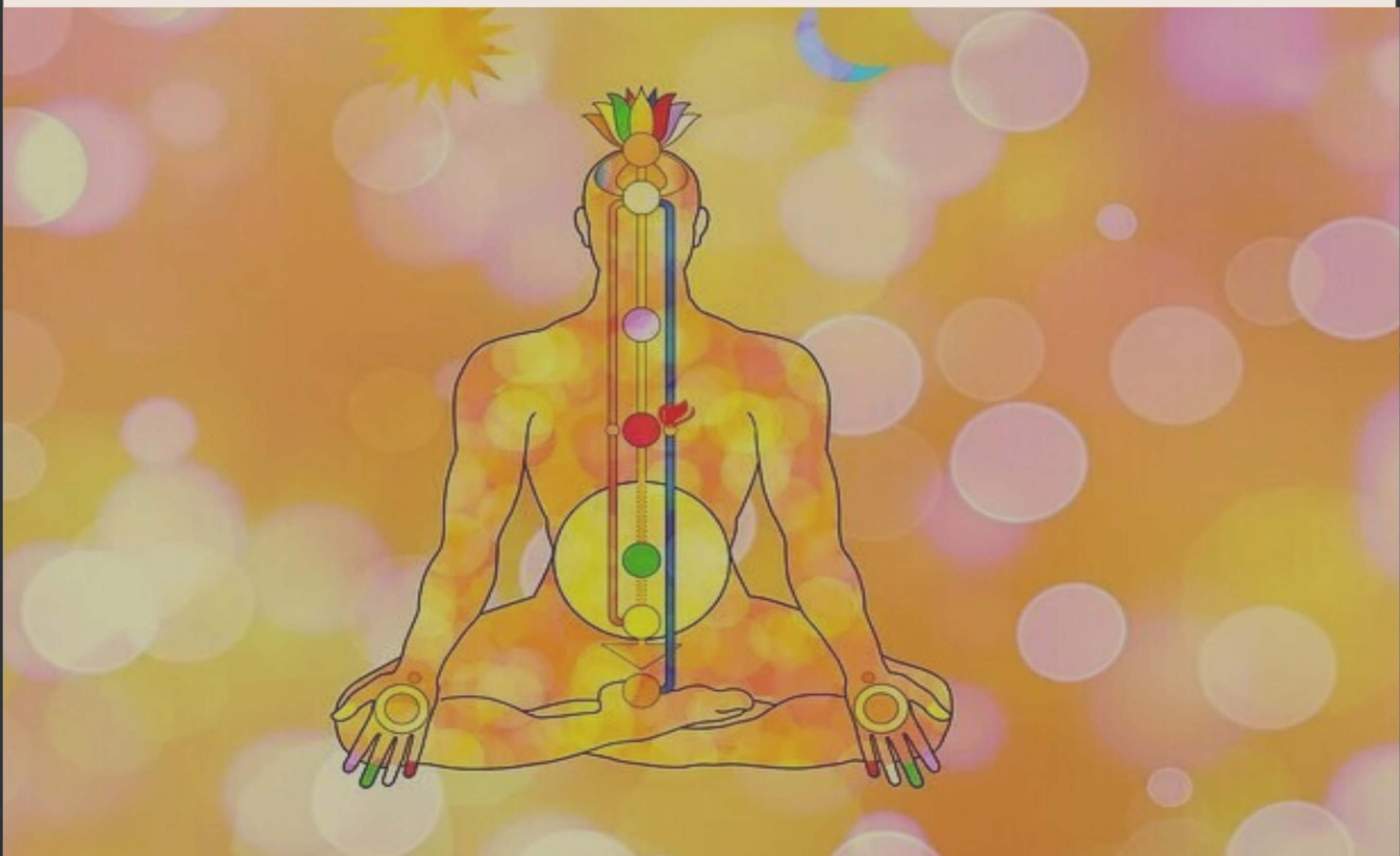
कुंडलिनी विज्ञान

एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान

पुस्तक~2

पहली बार कुंडलिनी सम्पूर्ण रूप से सरलीकृत



विश्वप्रसिद्ध कुंडलिनी वैबसाईट के लेखों का अनुपम संग्रह

कुंडलिनी योग हिंदु धर्म रूपी पेड़ पर उगने वाला मीठा फल है, और फल तभी तक है, जब तक पेड़ है

कुण्डलिनी विज्ञान

एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान-2

लेखक- प्रेमयोगी वज्र

2021

पुस्तक परिचय

यह पुस्तक कुण्डलिनी विज्ञान **शृंखला** का **दूसरा भाग (पुस्तक-2) है**। इसका पहला और दूसरा भाग (पुस्तक-2) भी उपलब्ध हैं। यह ब्लॉग-पोस्टों का संकलित रूप है। इन पोस्टों को प्रेमयोगी वज्र ने लिखा है, जो एक रहस्यवादी योगी हैं। वह प्रबुद्ध है और साथ ही उसकी कुंडलिनी भी जागृत है। ये सभी पोस्टें कुंडलिनी से संबंधित हैं। एक पोस्ट एक अध्याय से मेल खाती है। प्रेमयोगी वज्र 3 साल पहले से, तब से कुंडलिनी के बारे में लिख रहे हैं, जब उनकी कुंडलिनी एक साल के लंबे कुंडलिनी योग ध्यान के बाद जागृत हुई थी। पुस्तक को वर्तमान तिथि तक कुंडलिनी विचारों या पोस्टों के साथ अद्यतन या अपडेट किया गया है। वह यह देखकर चकित हो गया कि कहीं भी कुंडलिनी का उल्लेख या वर्णन पूरी तरह से नहीं किया गया है। यहां तक कि कुंडलिनी को ठीक से परिभाषित भी नहीं किया गया था। उन्होंने कुंडलिनी जागरण के कई अनुभवों को खोजा और पढ़ा, लेकिन उन्हें वास्तविक और पूर्ण रूप में कोई नहीं मिला। यद्यपि उन्होंने पतंजलि योग सूत्र में कुंडलिनी के समतुल्य समाधि का उल्लेख पाया है, लेकिन इसका रहस्यवादी और प्राचीन तरीके से वर्णन किया गया है, जिसे आम जनता के लिए समझा जाना मुश्किल है। इसलिए इन कमियों से प्रेरित होकर, उन्होंने कुण्डलिनी से सम्बंधित हर चीज को जमीनी स्तर पर, सत्य, अनुभवात्मक, वैज्ञानिक, मूल, व्यावहारिक और सहज ज्ञान युक्त रखने के लिए बहुत सरल या बचकाने तरीके से कुंडलिनी के बारे में समझने और लिखने का फैसला किया। इस अद्भुत पुस्तक की उत्पत्ति के परिणामस्वरूप रहस्यात्मक कुण्डलिनी की लिए वास्तविक, ईमानदार और मानवीय प्रयास हुआ। इसीलिए यह पुस्तक कुण्डलिनी साधकों के लिए वरदान के रूप में प्रतीत होती है। चूँकि चकाचौंध पैदा करने वाली स्क्रीनों पर एक साथ इतने सारे ब्लॉग पोस्टों को पढ़ना सहज नहीं है, इसलिए उन पोस्टों को एक किंडल ई-बुक के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो पढ़ने में आरामदायक और आनंददायक है। नतीजतन, यह पूरी तरह से आशा की जाती है कि पाठकों को यह पुस्तक आध्यात्मिक रूप से उत्थान करने वाली, सत्य की खोज करने वाली, और अत्यधिक आनंद देने वाली लगेगी।

लेखक परिचय

प्रेमयोगी वज्र का जन्म वर्ष 1975 में भारत के हिमाचल प्रान्त की एक सुन्दर व कटोरानुमा घाटी में बसे एक छोटे से गाँव में हुआ था। वह स्वाभाविक रूप से लेखन , दर्शन, आध्यात्मिकता, योग, लोक-व्यवहार, व्यावहारिक विज्ञान और पर्यटन के शौक़ीन हैं। उन्होंने पशुपालन व पशु चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय काम किया है। वह पोलीहाऊस खेती , जैविक खेती, वैज्ञानिक और पानी की बचत युक्त सिंचाई, वर्षाजल संग्रहण, किचन गार्डनिंग, गाय पालन, वर्मीकम्पोस्टिंग, वैबसाईट डिवेलपमेंट, स्वयंप्रकाशन, संगीत (विशेषतः बांसुरी वादन) और गायन के भी शौक़ीन हैं। लगभग इन सभी विषयों पर उन्होंने दस के करीब पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका वर्णन एमाजोन ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट demystifyingkundalini.com पर भी उपलब्ध है। वे थोड़े समय के लिए एक वैदिक पुजारी भी रहे थे, जब वे लोगों के घरों में अपने वैदिक पुरोहित दादा जी की सहायता से धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे। उन्हें कुछ उन्नत आध्यात्मिक अनुभव (आत्मज्ञान और कुण्डलिनी जागरण) प्राप्त हुए हैं। उनके अनोखे अनुभवों सहित उनकी आत्मकथा विशेष रूप से "शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)" पुस्तक में साझा की गई है। यह पुस्तक उनके जीवन की सबसे प्रमुख और महत्त्वाकांक्षी पुस्तक है। इस पुस्तक में उनके जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण 25 सालों का जीवन दर्शन समाया हुआ है। इस पुस्तक के लिए उन्होंने बहुत मेहनत की है। एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में इस पुस्तक को पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम (एक्सेलेंट) पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इस पुस्तक को फाईव स्टार मिले थे , और इस पुस्तक को अच्छा (कूल) व गुणवत्तापूर्ण आंका गया था। इस पुस्तक का अंग्रेजी में मिलान "Love story of a Yogi- what Patanjali says" पुस्तक है। प्रेमयोगी वज्र एक रहस्यमयी व्यक्ति है। वह एक बहुरूपिए की तरह है, जिसका अपना कोई निर्धारित रूप नहीं होता। उसका वास्तविक रूप उसके मन में लग रही समाधि के आकार -प्रकार पर निर्भर करता है, बाहर से वह चाहे कैसा भी दिखे। वह आत्मज्ञानी (एनलाईटनड) भी है, और उसकी कुण्डलिनी भी जागृत हो चुकी है। उसे आत्मज्ञान की अनुभूति प्राकृतिक रूप से / प्रेमयोग से हुई थी, और कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति कृत्रिम रूप से / कुण्डलिनी योग से हुई। प्राकृतिक समाधि के समय उसे सांकेतिक व समवाही तंत्रयोग की सहायता मिली , जबकि कृत्रिम समाधि के समय पूर्ण व विषमवाही तंत्रयोग की सहायता उसे उसके अपने प्रयासों के अधिकाँश योगदान से प्राप्त हुई।

अधिक जानकारी के लिए, कृपया निम्नांकित स्थान पर देखें-

https://demystifyingkundalini.com/

कुंडलिनी वाहक के रूप में हजार फनों वाला शेषनाग

दोस्तों, लम्बी पोस्ट लिखने की प्रतीक्षा में अपने छोटे अनुभवों को लिखने का मौका भी नहीं मिलता। इसलिए मैंने सोचा है कि कुंडलिनी से संबंधित इधर-उधर के छोटे-मोटे विचार ही लिखा करूंगा। इससे कुंडलिनी से लगातार जुड़ाव बना रहेगा, जो आध्यात्मिक उन्नति के लिए बहुत जरूरी है। वैसे भी व्यस्त जीवन में एकसाथ लंबी पोस्ट लिखना संभव भी नहीं है।

मस्तिष्क के दबाव को नीचे उतारने से कुंडलिनी भी नीचे उतर जाती है

जैसे ही अपनी वर्तमान स्थिति को देहपुरुष की तरह अद्‌वैतमयी समझा जाता है, वैसे ही मस्तिष्क में कुंडलिनी प्रकट हो जाती है। उससे मस्तिष्क में एक दबाव सा पैदा हो जाता है। उस दबाव को नीचे उतारने के लिए जीभ को तालु के साथ दबा कर रखा जाता है, और कुछ न बोलते हुए मुँह बंद रखा जाता है। साथ में कुंडलिनी ऊर्जा के नीचे उतरने का चिंतन किया जाता है। ऐसा चिंतन भी किया जाता है कि दिमाग का दबाव फ्रंट चैनल से नीचे उतर रहा है। उससे दिमाग हल्का हो जाता है, और दबाव के साथ कुंडलिनी भी नीचे उतर कर किसी उपयुक्त चक्र पर बैठ जाती है। वह फिर दिमाग से लगातार आ रहे दबाव से उत्तरोत्तर चमकती रहती है। उसी दबाव को प्राण भी कहते हैं। दिमाग के खाली या हल्का हो जाने पर मूलाधार चक्र से कुंडलिनी ऊर्जा बैक चैनल से दिमाग तक चढ़ जाती है। पहले की पोस्ट में कहे गए मानसिक आघात से भी ऐसा ही होता है। मानसिक आघात से दिमाग पूरा खाली जैसा हो जाता है, और कुंडलिनी शक्ति पूरे वेग से पीठ में ऊपर चढ़ जाती है, अर्थात सुषुम्ना खुल जाती है। तांत्रिक मदिरापान से भी कई बार ऐसा ही होता है। उससे भी दिमाग खाली जैसा हो जाता है।

इस तरह से कुण्डलिनी लूप पूरा हो जाता है, और कुंडलिनी चक्रवत घूमती रहती है। इसे माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट भी कहते हैं। इससे यौन कामुकता का आवेग भी शांत हो जाता है, क्योंकि उसकी एनर्जी कुंडलिनी को लग जाती है। स्त्री में भी पूर्णतः ऐसा ही होता है। जैसा कि पुरानी पोस्ट में बताया गया है कि उनका वज्र तुलनात्मक रूप से लघु परिमाण वाला होता है, जो शरीर-कमल के कुछ अंदर समाहित होता है। यह तंत्र साधना की एक प्रमुख तकनीक है।

शेषनाग का बीच वाला फन सबसे लंबा है

पुरानी पोस्ट में भी मैंने बताया था कि शेषनाग को वज्र से लेकर रीढ़ की हड्डी से होते हुए मस्तिष्क तक लिटाने पर वज्र-संवेदना आसानी से सहस्रार तक पहुंच जाती है। उसका मुख्य लक्षण है, एकदम से वज्र का संकुचित हो जाना। उससे पीठ के केंद्र में संवेदना की सरसराहट सी महसूस होती है। पूरे नाग का एकसाथ ध्यान करना पड़ता है। वास्तव में, संवेदना में चाल का और स्थान बदलने का गुण होता है। शेषनाग के एक हजार फन हैं, जो पूरे मस्तिष्क को कवर करते हैं। उसका केंद्रीय फन सबसे मोटा और लम्बा दिखाया जाता है। वही केंद्रीय फन सर्वाधिक क्रियाशील प्रकार का है। इससे कुंडलिनी उसी में चलती है। वास्तव में संवेदना/कुंडलिनी की सेंटरिंग के लिए ऐसा किया गया है। इससे कुंडलिनी पूरी तरह से सेंट्रल लाइन में चलती है। वह केंद्रीय फन नीचे झुक कर भौंहों के बीच में स्थित आज्ञा चक्र को भी चूमता रहता है। इससे कुंडलिनी आज्ञा चक्र में पहुंच कर वहाँ दबाव के साथ आनन्द पैदा करती है। कई बार कुंडलिनी सीधी आज्ञा चक्र तक पहुंच जाती है। वैसे भी, हठयोग की एक मुख्य नाड़ी, वज्र नाड़ी को आज्ञा चक्र तक जाने वाली बताया गया है। आज्ञा चक्र से कुंडलिनी जीभ से होते हुए सबसे अच्छी तरह से नीचे उतरती है। सिर को और पीठ को इधर-उधर हिलाने से शेषनाग भी इधर-उधर हिलता-डुलता प्रतीत होना चाहिए। उससे और अधिक कुंडलिनी-लाभ मिलता है।

शेषनाग को क्षीर महासागर में दिखाया गया है, और उसके एक हजार फन भगवान विष्णु के सिर पर फैले हुए हैं

चित्र में ऐसा ही दिखाया गया है। वास्तव में हमारा शरीर भी एक सूक्ष्म क्षीर सागर ही है। इस शरीर में 70 % से अधिक पानी है, जो चारों ओर फैला हुआ है। वह पानी खीर के दूध की तरह ही पौष्टिक है। उसी शरीर के दुधिया पानी के बीच में उपरोक्त शेषनाग अपने फन उठाकर बैठा है। आदमी का सिर उसके एक हजार फनों के रूप में है।

कुंडलिनी के लिए सेंटरिंग क्यों जरूरी है

दोस्तों, हरेक वस्तु की एनर्जी उसके केंद्र में होती है। इसे सेंटर ऑफ मास या सेंटर ऑफ ग्रेविटी भी कहते हैं। इसी तरह शरीर की एनर्जी उसकी केंद्रीय रेखा पर सर्वाधिक होती है। इसीलिए कुंडलिनी को उस रेखा पर घुमाया जाता है, ताकि वह अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त कर सके। मुझे पूरे सूर्य में कुंडलिनी का ध्यान करना मुश्किल लग रहा था। पर जब मैंने सूर्य की सतही केंद्रीय रेखा पर ध्यान लगाया, तो वह आसानी से व मजबूती से लग गया। इन सभी बातों से पता चलता है कि कुंडलिनी का मनोविज्ञान भी भौतिक विज्ञान की तरह ही प्रमाणित सिद्ध होता है।

कुंडलिनी को मानवता से जोड़ने वाला धर्म बन सकता था इस्लाम

दोस्तों, अभी हाल ही में फ्रांस के पेरिस और ऑस्ट्रिया के विएना में इस्लाम के नाम पर जो आतंकवादी घटनाएं हुईं, वे बहुत दुर्भाग्यपूर्ण हैं। और अभी एक घटना और आ गई कि पाकिस्तान में एक चौकीदार ने धर्म के नाम पर अपने बैंक मैनेजर की हत्या कर दी और वहाँ उसका इस काम के लिए गर्मजोशी से स्वागत किया गया। साथ में, करतारपुर में स्थित सिखों के प्रमुख गुरुद्वारे का प्रबंधन सिखों से वापिस लेकर आईएसआई को दे दिया है। दुनिया जानती है कि पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई इस्लामिक आतंकवादियों के संगठनों को चलाती है।पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश में अनगिनत मंदिर तोड़ दिए गए हैं, और प्राचीन नक्काशियां लुप्तप्राय कर दी गई हैं। वहाँ पर आए दिन अल्पसंख्यकों पर अत्याचार होते ही रहते हैं। भारत ऐसी घटनाओं का सदियों से भुक्तभोगी रहा है। आज हम इस तथ्य की विवेचना करेंगे कि इस्लाम कैसे कुंडलिनी को मानवता के साथ जोड़ने वाला धर्म बन सकता था, पर अपनी एकमात्र गलती कट्टरता के कारण चूक गया।

मूर्ति-पूजा के खंडन का असली मकसद इंसान का इंसान के प्रति प्रेम बढ़ाना था

इस्लाम मानवता का धर्म हो सकता था। ऐसा इसलिए, क्योंकि इस्लाम में केवल अल्लाह का ध्यान करने को कहा गया है, किसी मूर्ति वगैरह का ध्यान नहीं। फिर भी मूर्ति पूजा औऱ अन्य हिन्दू परम्पराओं का अपना अलग वैज्ञानिक दर्शन है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इसी तरह अन्य धर्मों का भी है। अल्लाह के ध्यान से अद्वैत का ध्यान खुद ही हो जाता है। उससे मन में कुंडलिनी स्वयं ही बस जाती है। स्वाभाविक है कि कुंडलिनी के रूप में किसी मनुष्य का ही स्मरण होगा, किसी मूर्ति या जानवर का नहीं। प्रियतम मनुष्य की वही छवि फिर कुंडलिनी बन जाती है। उससे मानवतापूर्ण प्रेम बढ़ता है। परंतु कट्टरता के कारण इस मानवता पर पानी फिर जाता

है। अब जिससे प्रेम होगा, यदि कट्टरता के कारण उसे मारा गया, तो कैसा प्रेम। इसलिए इसी संभावित हिंसा के भय से किसी मनुष्य से असली प्रेम हो ही नहीं पाता। असली इस्लाम तो तब आएगा, जब उसमें कट्टरता और हिंसा पर पूर्ण विराम लगेगा। ऐसा कुंडलिनी तंत्र में होता है। उसमें जीवित गुरु या देवता आदि से प्रेम किया जाता है। उन्हीं के रूप की कुंडलिनी मन में बस जाती है।

बहुत से धर्म शांतिपूर्ण ढंग से हिन्दू सनातन परम्पराओं का विरोध करते हैं

भारत में भी ऐसे बहुत से धर्म हैं, जो हिंदुओं की बहुत सी सनातन परम्पराओं को नहीं मानते। यह उनका अपना दृष्टिकोण है और उसमें कोई आपत्ति भी नहीं है, क्योंकि वे ऐसी वामपंथी मान्यता किसी के ऊपर थोपते नहीं हैं। इस्लाम को भी अपनी निजी परम्परा पर चलने का पूरा अधिकार है, औरों की धार्मिक स्वतंत्रता का हनन किए बगैर। पर इस्लाम अपनी मान्यता मनवाने के लिए कट्टर और हिंसक बन जाता है। जो वन विविधतापूर्ण न हो, वह सूना-सूना सा लगता है।

इस्लाम में हिंसा को शामिल करना मध्य युग की मजबूरी थी

इस्लाम के निर्माण के समय उसमें हिंसा पर जोर दिया गया। ऐसा इसलिए लगता है क्योंकि उस समय के लोग अनपढ़ और जंगली होते थे। उन्हें समझाना लगभग असंभव सा ही होता था। समझाने के लिए शिक्षा के साधन भी आज की तरह नहीं थे। इसलिए भय को बनाना जरूरी था, क्योंकि भय की लहर खुद ही बहुत दूर तक फैल जाती है, शिक्षा के कट्टरतापूर्ण साधन के रूप में। खासकर अरब देशों में तो ऐसा ही था। भारत जैसे सभ्य और अनुकूल परिवेश वाले देश में तो प्रारम्भ से ही शिक्षा और समझ का बोलबाला था। अरब से धार्मिक कट्टरता और हिंसा की प्रथा को मुस्लिम आक्रमणकारी भारत में लेकर आए। आज के आधुनिक संसार में भी वह सदियों पुरानी परंपरा वैसी ही बनी हुई है। उसको संशोधित करना जरूरी है। समाज सुधार की तरह समय के साथ धर्म सुधार भी होता रहना चाहिए। इस्लाम को छोड़कर सभी धर्मों

में सुधार हुए हैं। मुसलमानों को मिलकर यह बात समझनी चाहिए, और दूसरे धार्मिक समुदायों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आधुनिकता के साथ आगे बढ़ते रहना चाहिए।

कुंडलिनी और मन्दिर का परस्पर सहयोगात्मक संबंध

दोस्तों, इसी हफ्ते मुझे एक नया कुंडलिनी अनुभव मिला। नया तो इसे नहीं भी कह सकते हैं, नए रूप में कह सकते हैं। कुंडलिनी तंत्र और सनातन धर्म के बीच में बहुत अधिक सहयोगात्मक रिश्ता है। इस पोस्ट में हम इसी पर चर्चा करेंगे।

मंदिर में कुंडलिनी को ऊर्ध्वात्मक गति मिलती है

एक-दो दिन से मैं कुछ मन की बेचैनी और चंचलता महसूस कर रहा था। मेरे फ्रंट स्वाधिष्ठान चक्र पर एक दबाव जैसा बना हुआ था।ऐसा1 लग रहा था कि कुंडलिनी वहां पर अटकी हुई थी। योग से थोड़ा रिलीफ मिल जाता था, फिर भी दबाव बना हुआ था। मैं एक बड़े समारोह के लिए एक बड़े मंदिर की बगल में स्थित दुकान पर फूलों के गुलदस्तों की बुकिंग कराने के लिए गया। जब वापिस आया तो अपनी बाइक वहीँ भूल आया। बाइक की याद मुझे मन्दिर के पास आई। मैं यह सोचकर मंदिर के अंदर प्रविष्ट हुआ कि भगवान का वही आदेश था। मंदिर के दरवाजों पर ताले लगे हुए थे। इसलिए मैं बाहर के लंबे-चौड़े संगमरमर से बने खुले आंगन में टहलने लगा। वहाँ पर मुझे मस्तिष्क में कुंडलिनी का स्मरण हो आया। उसी के साथ स्वाधिष्ठान का कुंडलिनी-दबाव भी ऊपर चढ़ते हुए महसूस हुआ। वहाँ पर कुछ लोग उरे-परे आ-जा रहे थे। मैं उनके रास्ते से हटकर एकांत में एक शीशे की दीवार के साथ बने संकरे प्लेटफार्म पर बैठ गया। मेरा शरीर खुद ही ऐसी पोजीशन बनाने की कोशिश कर रहा था, जिससे स्वाधिष्ठान चक्र की कुंडलिनी पर ऊपर की तरफ खिंचाव लगता। मैंने अपनी पीठ का फन फैलाए हुए नाग के रूप में ध्यान किया। मेरी कुंडलिनी वज्र से शुरु होकर रियर अनाहत चक्र तक एक संवेदनात्मक नस या चैनल के रूप में आ रही थी। बैकवार्ड फ्लो मैडिटेशन तकनीक भी इसमें मेरी मदद कर रही थी। मस्तिष्क के विचारों को मैं कुंडलिनी के रूप में आगे से होकर फ्रंट अनाहत चक्र तक पहुंचता हुआ महसूस कर रहा था। इससे अनाहत चक्र पर ऊपर का प्राण और नीचे का प्राण (अपान) आपस में टकरा कर चमकती कुंडलिनी को प्रकट कर रहे थे। तभी मेरी बाहर

गई पत्नी का फोन भी आया, जो शायद अदृश्य टेलीपैथी से ही हुआ होगा। उससे मुझे और अधिक बल मिला। उससे फ्रंट स्वाधिष्ठान चक्र का दबाव समाप्त हो गया। मेरी साँसें तेज व गहरी चलने लगीं। वे साँसे मुझे बहुत सुकून दे रही थीं। कुंडलिनी से संबंधित सारी प्राण शक्ति मेरे अनाहत चक्र को मिली। उससे मेरा हृदय प्रफुल्लित हो गया, और मैं तरोताजा होकर बाइक पर वापिस घर लौट आया, और खुशी-खुशी अपने कामों में जुट गया। बड़े-बड़े मंदिरों को बनाने के पीछे एक नया कुंडलिनी-रहस्य उजागर हो गया था।

स्वाधिष्ठान चक्र पर दबाव बनने का मुख्य कारण सीमेन रिटेंशन होता है

ऐसा यौनसंबंध से परहेज करने से भी हो सकता है, पॉर्न देखने से भी हो सकता है, और अपूर्ण तांत्रिक यौनयोग से भी। इसलिए उचित योगसाधना से इस दबाव को ऊपर चढ़ाते रहना चाहिए। मस्तिष्क तक इसे पहुंचाने से यदि सिरदर्द या मस्तिष्क में दबाव लगे, तो पूर्वोक्त ढंग से अनाहत चक्र तक ही इसे चढ़ाना चाहिए।

कुंडलिनी जागरण के लिए भगवान शिव लिंग को मूर्ति से अधिक श्रेष्ठ मानते हैं

यह प्रमाणित किया जाता है कि इस वेबसाईट के अंतर्गत हम सभी किसी भी धर्म का समर्थन या विरोध नहीं करते हैं। हम केवल धर्म के वैज्ञानिक और मानवीय अध्ययन को बढ़ावा देते हैं। यह वैबसाइट तांत्रिक प्रकार की है, इसलिए इसके प्रति गलतफहमी नहीं पैदा होनी चाहिए। पूरी जानकारी व गुणवत्ता के अभाव में इस वेबसाईट में दर्शाई गई तांत्रिक साधनाएं हानिकारक भी हो सकती हैं, जिनके लिए वैबसाइट जिम्मेदार नहीं है।

इससे भगवान शिव की तथाकथित तन्त्रेश्वरता स्पष्ट जाती है। वे अपने लिंग को अपना निर्गुण रूप और अपनी मूर्ति को सगुण रूप मानते हैं। लिंग उस विराट स्तंभ का लघु रूप है, जो अधोलोकों को ऊर्ध्वलोकों से जोड़ता है। ब्रह्मा और विष्णु इसका आदि-अंत नहीं ढूंढ सके थे। इसी तरह लिंग भी मूलाधार को सहस्रार से जोड़ता है। यौनतंत्र का सारा रहस्य शिवपुराण के इसी कथानक में छिपा है। यदि शिव की मूर्ति पर या मस्तिष्क में बने शिव के चित्र पर सीधा ध्यान लगाया जाएगा, तो वह ज्यादा प्रभावी नहीं होगा। परंतु यदि वज्र पर शिव के चित्र का ध्यान किया जाएगा, तो वह वहाँ से सीधा मस्तिष्क या सहस्रार में पहुंचेगा, और तुलनात्मक रूप में वहाँ बहुत ज्यादा प्रभावी व स्थायी बना रहेगा। शिव का चित्र यहां कुंडलिनी का प्रतीक है। कुंडलिनी के रूप में अन्य कुछ भी चित्र या संवेदना हो सकती है। वैसे तो भगवान शिव ने अपने लिंग और मूर्ति, दोनों की एकसाथ आराधना करने को कहा है, परन्तु अधिक श्रेष्ठ लिंग को माना है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न सनातन धार्मिक परंपराओं से कुंडलिनी का विकास ही हो पाता है, परंतु उसके जागरण के लिए तंत्र का सहारा लेना ही पड़ता है। ऐसा इसीलिए है, क्योंकि यदि शिव के मानवीय रूप-आकार का पता ही नहीं होगा, तो लिंग पर भी उसका ध्यान कैसे हो पाएगा। शिव के मानवीय रूपाकार का पता तो उसकी मूर्ति से ही चलता है। इसीलिए अधिकांश मंदिरों में

मूर्तियों के साथ शिवलिंग भी जरूर होता है। इसी तरह एक असली तांत्रिक सनातन धार्मिक परंपराओं का विरोधी नहीं, अपितु सहयोगी होता है।

कुंडलिनी ही हिंदू पुराणों की सर्वप्रमुख विषयवस्तु है: शिव व केतकी के फूल की कहानी

दोस्तों, पिछली पोस्ट में मैंने शिवपुराण की एक कथा के बारे में बताया था, जो कि तंत्रशास्त्र के रहस्य का आधारबिंदु है। उसे केतकी के फूल की कहानी कहते हैं। इस पोस्ट में मैं उस कहानी की गहराई से व्याख्या करूँगा।

क्या है केतकी के फूल की कहानी

शिवपुराण के अनुसार एक बार भगवान ब्रह्मा और भगवान विष्णु के बीच में झगड़ा हो गया था। भगवान ब्रह्मा कहने लगे कि उन्होंने सारे संसार का निर्माण किया है, इसलिए वे ही सबसे बड़े हैं। दूसरी ओर, भगवान विष्णु कहने लगे कि वे ही सारे संसार का पालन और रक्षण करते हैं, इसलिए वे ही सबसे बड़े हैं। जब उनके झगड़े से चारों ओर उथल-पुथल मच गयी, तब उन दोनों के बीच में एक ज्योतिर्मय स्तंभ प्रकट हुआ। आकाशवाणी से आवाज हुई कि जो सबसे पहले इसके ओर-छोर का पता लगाएगा, वही सबसे बड़ा है। भगवान विष्णु ऊपर की तरफ चल पड़े, और भगवान ब्रह्मा नीचे की ओर। परंतु दोनों ही उसके छोर का पता नहीं लगा पाए और खाली हाथ वापिस लौट आए। विष्णु ने अपनी असफलता की सच्ची कहानी ब्रह्मा को बयान कर दी, परंतु ब्रह्मा भगवान विष्णु से झूठ बोलने लगे। ब्रह्मा ने कहा कि वे उसके छोर को छूकर वापिस आए थे। ब्रह्मा ने केतकी के सफेद फूल को साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया। तभी इस झूठ से नाराज होकर भगवान शिव वहाँ प्रकट हो गए। उन्होंने कहा कि वे ही सबसे बड़े हैं तथा उनके सिवाय कोई दूसरा इसके आदि-अंत को नहीं जान सका है। केतकी के झूठ से नाराज होकर शिव ने उसको शाप दिया कि वह कभी उनकी पूजा में शामिल नहीं किया जाएगा। साथ में, ब्रह्मा को भी शाप दिया कि कहीं भी उनका मंदिर नहीं होगा, और न ही उनकी पूजा की जाएगी।

शिव-केतकी की कहानी का तांत्रिक रहस्य

ब्रह्मा और केतकी के फूल किसके प्रतीक हैं

वास्तव में उपरोक्त कथा मैटाफोरिक है, और कुंडलिनी योग की सर्वश्रेष्ठता की ओर इशारा कर रही है। ब्रह्मा उन लोगों का प्रतीक है, जो अंधाधुंध निर्माणकार्य से प्रकृति को नुकसान पहुंचा रहे हैं। अहंकार का सहारा लेने वाले बिजनेसमैन, नेता और नकली धर्मगुरु इसी प्रकार के लोग होते हैं। रजोगुणी यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान करवाने वाले लोग भी इनमें शामिल हैं। उनके अंदर अहंकार पैदा हो जाता है, और वे अपने आप को सबसे बड़ा समझने लगते हैं। उनके पास धन की कोई कमी नहीं होती, इसलिए वे समाज के प्रतिष्ठित व साफ-सुथरी छवि वाले लोगों को और पत्रकारों को खरीद लेते हैं। केतकी का सफेद फूल ऐसे ही लोगों का परिचायक है। वे ऐसे लोगों से अपना भरपूर गुणगान करवाते हैं, और असली भगवान को अनदेखा करके खुद भगवान बन बैठते हैं। इसीलिए ऐसी साफ सुथरी व सफेद छवि वाले कपटी लोग भगवान शिव को प्रसन्न नहीं कर पाते। उन्हें प्रसन्न करने के लिए तो बच्चे की तरह भोले बनना पड़ता है। तभी तो शिव को भोलेनाथ या भोले बाबा भी कहते हैं। तांत्रिक भी भोले ही होते हैं। ब्रह्मा जैसी छवि वाले उपरोक्त लोग भी लोगों से सच्चा सम्मान नहीं प्राप्त कर पाते। उनके प्रभाव के डर से ही लोग उन्हें झूठा सम्मान देते हैं। जैसे भगवान ब्रह्मा स्तंभ का निचला छोर ढूंढते हैं, वैसे ही उनकी तरह के लोगों का झुकाव भी नीचे अर्थात तमोगुण की तरफ ज्यादा होता है। तमोगुण मदिरा, माँस आदि के अनियंत्रित उपभोग के रूप में हो सकता है। वे ब्रह्मा की तरह ही रजोगुणी होते हैं। रजोगुण का झुकाव तमोगुण की तरफ ज्यादा होता है। वे बहुत नीचे के लोकों या चक्रों तक पहुंच जाते हैं, पर सबसे नीचे के लोक अर्थात मूलाधार चक्र तक नहीं पहुंच पाते। इसका सीधा सा अर्थ है कि वे मूलाधार चक्र पर कुंडलिनी को जगा नहीं पाते। यदि मूलाधार चक्र पर भी कुंडलिनी जागृत हो जाए, तो वह सभी चक्रों या लोकों को भेदते हुए सीधी सहस्रार में चली जाती है, और वहाँ भी जागृत हो जाती है। पर ऐसा तांत्रिक लोग ही कर सकते हैं, साधारण लोग नहीं।

भगवान नारायण सेवादारों व दानवीरों के प्रतीक हैं

समाज के कुछ लोग जनता की सेवा से सीधे जुड़े होते हैं। उनमें सेवादार और दानवीर मुख्य होते हैं। सात्विक धर्म-कर्म आदि करने वाले लोग भी इनमें शामिल हैं। अनेक प्रकार की मानसिक साधनाएं करने वाले लोग भी ऐसे ही होते हैं। हालाँकि वे भोले होते हैं, पर फिर भी वे ज्योतिर्मय स्तंभ का छोर नहीं ढूंढ पाते। वे स्तंभ पर ऊपर की ओर जाते हैं, क्योंकि वे सत्त्वगुणी होते हैं। उनके अंदर मन के दोष नहीं होते। अहंकार भी उनमें कम होता है। वे काफी ऊपर के लोकों या चक्रों तक चले जाते हैं, पर सर्वोच्च लोक या सहस्रार तक नहीं पहुंच पाते। इसका अर्थ है कि वे भी कुंडलिनी को जागृत नहीं कर पाते। फिर शिव ने कहा कि वे ही इसे जानते हैं। साथ में कहा कि इसलिए वे ही सबसे बड़े हैं। इसका सीधा सा अर्थ है कि शिवभक्त तांत्रिक ही अपनी कुंडलिनी को जागृत कर पाते हैं।

ज्योतिर्मय स्तंभ सुषुम्ना नाड़ी का और विभिन्न लोक विभिन्न चक्रों के प्रतीक हैं

वास्तव में सारा संसार हमारे अपने मनुष्य शरीर में बसा हुआ है, "यतपिण्डे तत्ब्रह्मांडे" के अनुसार। ऐसा ही "शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)" पुस्तक में भी वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया गया है। जो कथा में विभिन्न ऊपरी और निचले लोक कहे गए हैं, वे हमारे शरीर की रीढ़ की हड्डी में स्थित चक्र ही हैं। जो प्रकाशमय स्तम्भ है, वह सुषुम्ना नाड़ी है। वह भी चमकदार संवेदना के रूप में होती है। वह मूलाधार चक्र से अर्थात सबसे निचले लोक से सहस्रार चक्र अर्थात सबसे ऊपर के लोक तक गुजरती है। बीच में अनेक प्रकार के लोक अर्थात चक्र आते हैं। उसका लघु रूप लिंग या वज्र है। वही उस स्तंभ का सबसे प्रमुख भाग होता है, क्योंकि वहीँ से प्रकाशमय संवेदना स्तंभ उत्पन्न होता है।

कुंडलिनी योगसाधना की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए ही शिवपुराण में शिव-केतकी की कथा के रूपक का वर्णन आता है

दोस्तों, आओ थोड़ा कुंडलिनी ध्यान कर लेते हैं। पिछली पोस्ट में मैंने जो शिव-केतकी की कथा कही थी, वह पुराणों में लिखित रूपकों का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। पुराण ऐसे रूपकों से भरे हुए हैं। रूपकों की सहायता से प्रस्तुत विषय अच्छी तरह से समझ में आ जाता है, और अच्छी तरह से याद रहता है। अधिकांश आध्यात्मिक ज्ञान मन की सीमा से बाहर होता है, और प्रत्यक्ष अनुभव की वस्तु है। इसलिए उसे रूपकों में ढालकर मन के दायरे में लाया जाता है।

पूर्वोक्त प्रकाशमान स्तंभ के ओर-छोर की खोज करने के लिए ब्रह्मा ऊपर की ओर और भगवान विष्णु नीचे की ओर भागे थे

पूर्वोक्त कथा में हमने विष्णु को ऊपर की ओर तथा ब्रह्मा को नीचे की ओर जाते दिखाया था। पर वास्तविकता इसके विपरीत थी। वैसे इससे कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। रूपकों को हम किसी भी तरफ को ढाल सकते हैं। सत्य का अनुभव तो वही रहता है। रूपक सत्य को नहीं बदल सकते। रूपकों का अपना कोई गणित नहीं होता। रूपक तो केवल सत्य को समझाने के लिए बनाए गए होते हैं। रूपक की इस विपरीत स्थिति में हम सत्य के अनुभव को निम्नलिखित तरीक़े से ढाल सकते हैं। ब्रह्मा प्रकार के लोग क्योंकि अंधाधुंध निर्माण कार्य करवाते हैं, इसलिए वे अपने सकाम कर्मों के फलस्वरूप विभिन्न उच्च लोकों को प्राप्त करते हैं। वे सहस्रार रूपी परम लोक को प्राप्त नहीं करते, क्योंकि वे जगत के प्रति आसक्त होते हैं। इसलिए वे कुंडलिनी योगसाधना नहीं कर पाते। यदि करते हैं, तो वह शीघ्र फलदायी नहीं होती। बाकि तो पूर्वोक्त रूपक में सब ठीक है। इसी तरह, विष्णु प्रकार के लोग नम्रता के, गहन अन्वेषण के, और ज्ञान चिंतन के प्रतीक होते हैं। वे नीचे के लोकों में रहने वाले दीन दुखी लोगों की सेवा में जुट जाते हैं। उनमें भी जगत के पालन और रक्षण का

अहंकार आ जाता है। फिर भी वे अपनी झूठी शेखी नहीं बघारते, और न ही अपने प्रभाव का ज्यादा ढिंढोरा पीटते हैं। इसलिए उन्हें नीचे के लोकों या चक्रों में जाने वाला बताया गया है। इसी कारण से उनकी भी कुंडलिनी योग साधना आसानी से सफल नहीं होती। बाकि तो रूपक में सब ठीक ही है। असली तांत्रिक कुंडलिनी योगी तो भगवान शिव की तरह मस्तमौले होते हैं। उन्हें दुनियादारी का कोई फिक्र-फाका नहीं होता। वे अपनी कुंडलिनी के साथ मस्त और आनन्दमग्न होते हैं। वे तांत्रिक साधना से बढ़ाई गई अपनी एनर्जी को दुनियादारी में बर्बाद न करके उससे अपनी कुंडलिनी को जागृत करते हैं। वे ज्यादा पाने की चाहत में नहीं भागते। जो उन्हें मिल जाता है, उसी में संतुष्ट हो जाते हैं। भगवान शिव के पास भी एक बाघम्बर, एक मृगचर्म, एक त्रिशूल, एक सर्प, एक बैल और पार्वती माता के सिवाय कुछ नहीं होता। वे इन्हीं में खुश रहते हुए गहन व आनन्दमयी ध्यान साधना में डूबे रहते हैं।

केतकी का पुष्प ऐसे लोगों का प्रतीक है, जो भगवान के साथ रहकर भी उसे नहीं पहचानते

कथा में आता है कि केतकी का सफेद पुष्प भगवान शिव के मस्तक से नीचे गिरा था, पर वह भी उस ज्योति स्तंभ का आदि-अंत नहीं जानता था। केतकी की तरह साफ-सुथरी छवि वाले लोग भी उन पुजारियों की तरह हैं, जो लगातार मन्दिरों में रहकर भी भगवान को नहीं जानते। आम जनता उन पर विश्वास करती है, इसलिए ब्रह्मा प्रकार के लोग इस बात का नाजायज फायदा उठाते हैं। वे पैसे के दम पर उनसे अपना गुणगान करवाते हैं, और जतवाते हैं कि वे सबकुछ अर्थात भगवान को जानते हैं। बाकी तो रूपक में सब वैसा ही है।

कुण्डलिनी की चमक को कम करने के लिए ही कुंडली-ग्रह किसी आदमी के लिए अपनी चमक कम करते हैं, जिससे पाप का अंधेरा हावी होकर अपना बुरा असर दिखाता है

दोस्तों, हाल ही में मुझे कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं का सामना करना पड़ा। वैसी घटनाओं की रोकथाम के लिए मेरे परिचितों द्वारा मेरी जन्मपत्री कई प्रकार के ज्योतिषविदों से परीक्षित करवाई गई। कुछ ज्योतिषविदों की ऑनलाइन रॉय ली गई, तो कुछ की ऑफलाइन। सभी ने मेरी ग्रह-दशा को बहुत खराब बताया। एकदम से मेरा तुलादान करवाया गया। हनुमान चालीसा, दुर्गा रक्षा स्तोत्र, व गजेंद्र मोक्ष स्तोत्र पढ़ने को कहा गया। महामृत्युंजय मन्त्र-जाप करने को कहा गया। मैं इन्हीं बातों से जुड़े हुए अपने कुण्डलिनी-अनुभव व इससे जुड़े मनोवैज्ञानिक सिद्धांत इस पोस्ट में साझा करूँगा।

बुरा समय आने पर कुण्डलिनी धीमी पड़ने लगती है

पूर्ववत नियमित योग करने पर भी मेरे मन की कुण्डलिनी धीमी पड़ती जा रही थी। मुझे उसका कारण समझ नहीं आ रहा था। हालांकि बहुत पहले भी मेरे साथ ऐसा होता था, पर उसकी वजह याद नहीं आ रही थी। उससे उस समय भी मैं इसी तरह से दुर्भाग्य के साए में आ जाता था।

धार्मिक कृत्यों से कुण्डलिनी चमकने लगती है, जो हर प्रकार से कल्याण करती है

वास्तव में सभी धार्मिक कृत्य कुण्डलिनी के माध्यम से ही लाभ पहुंचाते हैं। उनसे कुण्डलिनी एकदम से पुष्ट हो जाती है। वह कुंडलिनी फिर हर प्रकार से आदमी की

भलाई में जुट जाती है। कुंडलिनी ही आदमी को विपदाओं से बचाती है। तुलादान कराते वक्त ही मुझे अहसास हुआ कि मेरे पाप या यूं कहो कि मन का बोझ मेरे कंधे से उतरकर दूसरे पलड़े पर रखे हुए अनाज के साथ नीचे उतर गया था। उससे मैं हल्का हो गया और मेरे अंदर जैसे काफी खाली जगह बन गई। उस खाली जगह को भरते हुए मेरी कुंडलिनी एकदम से कौंधने लग गई। उससे मैंने फीलगुड महसूस किया और उसके बाद मैं हर समय कुंडलिनी के आनंद में मस्त रहने लगा। कुण्डलिनी से जुड़े अन्य सारे आध्यात्मिक गुण भी पुनः मेरे अंदर प्रकट हो गए। उससे मेरा जीवन भी सुधर गया। व्रत-उपवास, जप-पाठ आदि धार्मिक कृत्यों से भी मुझे अपनी कुंडलिनी सुदृढ़ होती हुई महसूस हुई। विशेष ग्रह-दशा में विशेष धार्मिक कृत्य इसीलिए बताए जाते हैं, क्योंकि वे ही कुंडलिनी को सबसे ज्यादा उजागर करते हैं।

आकाशीय पिंड कुंडलिनी को प्रभावित करते हैं, क्योंकि दोनों ही चमकीले होते हैं

पाप मन के बोझ के रूप में प्रकट होते हैं। वे कुंडलिनी को दबाने की कोशिश करते हैं। इसी तरह, बुरी ग्रह दशा भी कुंडलिनी को दबा कर अपना प्रभाव दिखाती है। कुंडलिनी के दबने से पुराने पाप मन के बोझ के रूप में प्रकट हो जाते हैं। आदमी के लिए बुरी ग्रह दशा का मतलब यहाँ उसके लिए ग्रहों की चमक का कम होना है। उससे कुंडलिनी की चमक भी कम हो जाती है। जिन लोगों के मन में कुंडलिनी नहीं बनी होती है, उनकी सामान्य मानसिकता की चमक को प्रभावित करके ग्रह अपना असर दिखाते हैं।

ग्रह अपना असर कैसे दिखाते हैं

इसे हम एक साधारण से उदाहरण से समझ सकते हैं। सूर्य को सबसे बड़ा व चमकीला ग्रह माना जाता है, और उसका प्रभाव भी सबसे ज्यादा दिखाई देता है। जिस दिन चमकदार धूप हो, उस दिन मन आनंद व उमंग से भरपूर होता है। जिस दिन सूर्य की

रौशनी बादलों से ढकी हो, उस दिन मन में अवसाद जैसा छाया रहता है। ऐसा ही प्रभाव अन्य ग्रह भी दिखाते हैं, जिसे ज्योतिष शास्त्र से समझा जाता है। जैसे रेडियो सिग्नल हर जगह हैं, पर वे उनसे प्रोपर ट्यूनिंग करने वालों को ही प्राप्त होते हैं; उसी प्रकार ग्रहों की चमक हर जगह है, पर वह समुचित जन्मकुंडली-योग वाले आदमी को ही प्राप्त होती है। यह ऐसे ही होता है, जैसे कई लोगों को सूर्य का प्रकाश भी आनंदित नहीं कर पाता। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उन्होंने सूर्य व उसके प्रकाश के साथ ट्यूनिंग नहीं की होती। शायद इसी ट्यूनिंग को बनाने के लिए ही सुबह के समय सूर्य को अर्घ्य देने की धार्मिक परम्परा है। इसी तरह नवग्रह पूजन से उन सभी ग्रहों के साथ ट्यूनिंग हो जाती है।

कोरोना काल में ज्योतिष शास्त्र अतिरिक्त सहायता प्रदान कर सकता है

जिन बीमारियों का इलाज है, उनके मामलों में तो कोई आध्यात्मिक मनोविज्ञान की बात ही नहीं करता। सफलता के लिए हर कोई आसान शॉर्टकट अपनाना चाहता है, बेशक वह टिकाऊ न हो। पर कोरोना में तो यह विशेष लाभ पहुंचा सकता है, क्योंकि उसका इलाज ही नहीं। जब मन का बोझ कम होगा, तो स्वाभाविक है कि शरीर की इम्यूनिटी बढ़ेगी, जिससे कोरोना से लड़ने में मदद मिलेगी। यह तो वैज्ञानिक प्रयोगों से पहले से ही सिद्ध हो चुका है कि कुंडलिनी ध्यान से शरीर की इम्यूनिटी बढ़ती है।

ज्योतिष शास्त्र अपने आप में सम्पूर्ण विज्ञान है, जिसे गहन वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता है

मैंने गूगल पर बहुत सर्च किया कि कहीं डीमिस्टीफाईंग ज्योतिष आदि के नाम से या अन्य कोई सरलीकृत वैबसाइट मिल जाए, पर कहीं नहीं मिली। ज्योतिष से संबंधित विद्वान पाठकों से अपेक्षा है कि वे इस क्षेत्र में पहल करें और ज्योतिष को पूर्ण सरलता से आम लोगों तक पहुंचाएं।

कुंडलिनी ही मन की वह ट्यूनिंग फ्रेकवेंसी है, जो मामूली सी लौकिक और पारलौकिक हलचल को भी आसानी से पकड़ लेती है

दोस्तों, पिछली पोस्ट में मैंने बताया कि कैसे ग्रहों के साथ ट्यूनिंग बना लेने से उनके दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है। इस पोस्ट में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि वह ट्यूनिंग क्या है, और वह कैसे कुण्डलिनी सिद्धांत से जुड़ी हुई है।

कुंडलिनी ही मन की वह फ्रेक्वेंसी है, जिस पर हम ग्रहों के साथ ट्यून हो सकते हैं

हम रेडियो की ट्यूनिंग को नोट करके रखते हैं, और उसी फ्रेक्वेंसी पर हम रेडियो को चलाते हैं। दूसरी फ्रेक्वेंसी पर चलाने से रेडियो नहीं चलेगा। इसी तरह हमें अपनी कुंडलिनी का बखूबी पता होता है, और उसे हम कभी भूलते नहीं। वह मन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चित्र होता है। उसको योगी लोग प्रतिदिन योगसाधना से भी याद करते रहते हैं। यदि किसी जन्मकुंडली-योग के कारण ग्रहों से आने वाला प्रकाश कम हो जाए, तो उसे संतुलित करने के लिए हमारे मन की कुंडलिनी की चमक बढ़ने लगती है। ऐसा महसूस होने पर हम कुंडलिनी योगसाधना को भी बढ़ा देते हैं। मन के दूसरे चित्रों की चमक बढ़ाने से हमें उतना लाभ नहीं मिलता, क्योंकि हमने उन्हें ग्रह पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से ग्रहों के साथ व उनके प्रकाश के साथ नहीं जोड़ा होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो उनकी ट्यूनिंग ग्रहों के साथ नहीं की होती है। वास्तव में, धार्मिक अनुष्ठानों से केवल मन की कुंडलिनी ही ऊर्जावान बनती है। अन्य गतिविधियों से विचारों की बाढ़ में शक्ति बंट जाती है। इससे कोई एक विचार ट्यूनिंग फ्रेक्वेंसी की ऊर्जा प्राप्त नहीं कर पाता। ट्यूनिंग विचार की ऊर्जा जितनी अच्छी हो, उतनी अच्छी ट्यूनिंग होगी, क्योंकि अंदर-बाहर, यहाँ-वहाँ सभी कुछ ऊर्जा से भरपूर है। इसे हम ऑटो सर्च फंक्शन भी कह सकते हैं। ग्रहों के साथ पहले से ट्यून होई हुई कुंडलिनी खुद ही एक्टिवेट हो जाती है। ग्रहों के प्रकाश में किसी भी प्रकार

के बदलाव के होने पर कुंडलिनी क्रियाशील हो जाती है। वह एक बफर का काम करते हुए उन बदलाओं के झटकों से सुरक्षा प्रदान करती है।

ग्रहों के ऊपर कुण्डलिनी के ध्यान से वह ट्यूनिंग फ्रेक्वेंसी बन जाती है

ऐसा ग्रहों के पूजन से, सूर्य को अर्घ्य देने से, प्रतिदिन ध्यानपूर्वक पंचांग पढ़ने से और अन्य विविध धार्मिक अनुष्ठानों से होता है। तभी तो शास्त्रों में आता है कि प्रतिदिन ध्यानपूर्वक पंचांग को पढ़ने वाले पर कभी कोई विपत्ति नहीं आती। किसी आदमी के लिए ग्रहों के प्रकाशमान होने पर उसकी कुंडलिनी उस प्रकाश को ग्रहण करके चमकने लगती है। जब वे ग्रह उस आदमी के लिए अंधकारमय बनते हैं, तब वही कुंडलिनी उस आदमी को प्रकाश प्रदान करती रहती है। इस प्रकार से कुंडलिनी एक बैटरी या phosphorescent/ स्फुरदीप्त पदार्थ की तरह काम करती है, जो चार्ज और डिस्चार्ज होती रहती है, और अंधकार से बचाती है। प्रतिदिन के कुंडलिनी योग से भी उसे चार्ज किया जाता रहता है।

ग्रह-शांति के उपाय कुंडलिनी को रिचार्ज करते हैं

ग्रह-शांति के लिए नवग्रह पूजन, दान, जप-तप, व्रत, यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान किए जाते हैं। ये सभी उपाय मन को प्रकाशित करते हैं। सबसे अधिक प्रकाशित कुंडलिनी होती है, क्योंकि वही मन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चित्र के रूप में होती है। उस कुंडलिनी से निकलने वाला प्रकाश ग्रहों के प्रकाश की कमी को पूरा कर देता है।

जीवन की प्रत्येक परिस्थिति ग्रहनिर्मित ही होती है

हरेक घटना सूर्य के प्रकाश में होती है। क्योंकि सभी आकाशीय पिंड एक-दूसरे से जुड़े हैं, इसलिए अन्य सभी ग्रहों का भी उनमें योगदान होता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि कुंडलिनी जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में हितकारक होती है। यदि किसी आदमी को उन्नत होने के लिए उन्न्त होने के लिए उपयुक्त घटनाओं का सहयोग

मिल रहा हो, तो हम कह सकते हैं कि उसके ग्रह शुभ हैं। इसी तरह यदि किसी आदमी को उन्नत होने के लिए घटनाएँ न मिल रही हों या अनुपयुक्त घटनाएं मिल रही हों, तो कह सकते हैं कि उसके ग्रह अशुभ हैं।

इस पोस्ट की विश्लेषणात्मक विवेचना यही है कि जिस तरह एक रेडियो सेट से हमेशा अच्छा संगीत प्राप्त करने के लिए उसे हमेशा ट्यूनिंग फ्रेकवेंसी पर ऑन रखना जरूरी है, उसी तरह हमेशा आनंदमयी बने रहने के लिए मन में हमेशा कुण्डलिनी को बसा कर रखना जरूरी है।

कुंडलिनी के लिए शिवलिंग के रूप वाले गुम्बदाकार या शंक्वाकार पर्वत का महत्त्व: वर्ष 2020 की अंतिम ब्लॉग पोस्ट

नया साल चमक और आशा से भरा हो ताकि अंधेरा और उदासी आप से दूर रहें। नववर्ष 2021 की शुभकामना!

दोस्तों, करोल पहाड़ हिमालय का एक बेहद आकर्षक पहाड़ है। यह शिवलिंग के जैसे आकार का है। मैदानी क्षेत्रों से ऊपर चढ़ते समय यह ऊंचे पहाड़ों के प्रवेशद्वार पर स्थित प्रतीत होता है। मेरी कुंडलिनी से जुड़े इसके योगदान पर वैज्ञानिक चर्चा हम आज इस पोस्ट में करेंगे।

करोल पहाड़ के साथ मेरा आजन्म रिश्ता

मैं इसी पहाड़ की नजर में पैदा हुआ, और इसीके सामने बड़ा हुआ। यह आसपास के क्षेत्र में सबसे ऊंचा पहाड़ एक साक्षी की तरह हर समय मेरे सामने खड़ा रहा। यह हमेशा मेरे कर्मों की गवाही देता रहा, और मुझे सन्मार्ग पर प्रेरित करता रहा। इसने मुझे कभी अहंकार नहीं करने दिया। जैसे ही मुझे कभी थोड़ा सा भी अहंकार होने लगता था, तो वह कहता था, "मैं तो सबसे बड़ा और ऊँचा हूँ, फिर भी मैं कभी अहंकार नहीं करता; फिर तू मेरे सामने कीड़े जितना छोटा होकर भी क्यों अहंकार कर रहा है"। उसके इस ताने से मेरा अहंकार समाप्त हो जाता था। उससे मेरे मन की कुंडलिनी चमकने लग जाती थी। इस पहाड़ पर मेरा आना-जाना लगा रहता था, क्योंकि मेरे ज्यादातर मित्र, रिश्तेदार व आजीविका के साधन इसी पहाड़ पर होते थे। प्रतिदिन सुबह जब मैं सूर्य को जल चढ़ा रहा होता था, तब वह इसी पहाड़ के पीछे से उग रहा होता था। इससे वह पूजा का जल उस पहाड़ को भी स्वयं ही लग जाता था। इससे अनजाने में ही वह पहाड़ मेरा इष्ट देवता और मित्र बन गया था।

समय के साथ करोल पहाड़ के साथ मेरी कुंडलिनी मजबूती से जुड़ती गई

सूर्य को जल देते समय मेरे मन में उमड़ने वाली कुण्डलिनी करोल पहाड़ के साथ स्वयं ही जुड़ती गई। सूर्य की तरफ तो सीधा देखा नहीं जा सकता, और न ही सूर्य देव दिनभर नजरों के सामने रहते हैं। परन्तु वह पहाड़ तो हमेशा नजरों के सामने रहता था। उसकी तरफ देर तक सीधी नजर से भी देखा जा सकता था। काम करते हुए जरा सा सिर ऊपर उठाता, तो वह पहाड़ अनायास ही दृष्टिपटल पर आ जाता था, और उसके साथ ही उससे जुड़ी हुई मेरी कुंडलिनी भी। इस तरह से मेरी कुण्डलिनी मेरे जीवनभर मेरे साथ लगातार बनी रही, और उत्तरोत्तर बढ़ती रही। परिणामस्वरूप, मुझे क्षणिक आत्मज्ञान भी उसी खूबसूरत पहाड़ के नजारे के साथ मिला, और कुंडलिनी जागरण भी उसीके चरणों की छत्रछाया में जाकर मिला।

करोल पहाड़ का शिवलिंग के जैसा आकार भी मेरी तांत्रिक कुंडलिनी के विकास में सहायक बना

शिवपुराण में शिवलिंग की आकृति का बहुत ज्यादा आध्यात्मिक महत्त्व बताया गया है। वहाँ शिवलिंग की पूजा को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। जरा सोचो कि जब छोटे से घरेलू आकार के शिवलिंग का इतना ज्यादा महत्त्व है, तब शिवलिंग के आकार वाले पहाड़ का महत्त्व क्योंकर नहीं होगा। इससे तो महत्त्व कई गुना बढ़ जाएगा, क्योंकि पहाड़ की विशालता, अचलता, अमरता, और अहंकारविहीनता के कारण उसके प्रति आदरबुद्धि वैसे भी ज्यादा होती है। तभी तो पहाड़ को देवता भी माना जाता है। इसी वजह से ही लोग साधना के लिए सुरम्य पहाड़ों की ओर जाते हैं। वैसे तो विभिन्न कोणों से देखने पर वह पहाड़ विभिन्न आकृतियों में दिखाई देता था, यद्यपि उसकी शिवलिंग के जैसी सुंदर आकृति तो मेरे घर व आसपास के क्षेत्र से ही ज्यादा दिखाई देती थी। इसका मतलब है कि वास्तविक आकृति का उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि आकृति के भान होने का है। शिवलिंग के सूक्ष्म तांत्रिक महत्त्व के कारण ही मंदिर के शिखर कुछ शंक्वाकार या गुम्बदाकार लिए होते हैं। यह आकार

वास्तव में मूलाधार से जुड़ा होता है, और उसी की शक्ति लिए होता है। कैलाश पर्वत का रूप भी ऐसा ही है, और संभवतः तंत्र के सर्वाधिक अनुरूप है। तभी तो यहाँ पर साक्षात शिव का निवास बताया गया है।

पहाड़ एक साधना में लीन मनुष्य की तरह होता है

इसी वजह से तो पहाड़ के रूप को भगवान शिव के रूप के साथ जोड़ा गया है। उसकी वनस्पति शिव की जटाएं हैं। उससे निकलते नदी-नाले व झरने शिव की जटा से निकलती गंगा नदी है। उस पर उगता चाँद शिव के मस्तक का खूबसूरत अर्धचंद्र है। उसके अंदर बसने वाले लोग व वन्य जीवजंतु शिव के ऊपर लिपटे नाग के रूप में हैं। उसका वनस्पतिविहीन व पथरीला भूभाग शिव के शरीर के नग्न भाग के रूप में है।

पहाड़ का अपना स्वरूप कुंडलिनी जागरण के दौरान की अवस्था है

यह अवस्था भाव, अभाव, व पूर्णभाव का मिश्रित रूप है। नशे आदि की अवस्था में भी भाव व अभाव दोनों एकसाथ होते हैं, परंतु उसमें पूर्णभाव नहीं होता। पर्वत की आत्मा में अभाव की अवस्था अद्वैत व जजमेंट से रहित चेतना के रूप में है, भाव की अवस्था अस्तित्व के आनंद के रूप में है, और पूर्णभाव की अवस्था पूर्ण अस्तित्व के परमानन्द के रूप में है। यह पूर्णभाव सर्वोच्च अनुभव के रूप में है। इसे भावाभावहीनता (न भाव, न अभाव) के रूप में भी जाना जा सकता है। पर्वत की ही तरह अन्य सभी निर्जीव पदार्थ भी जागती हुई कुण्डलिनी के रूप में पुर्नजीवन के रूप में हैं, निर्जीव नहीं। तभी तो कुंडलिनी जागरण के दौरान सभी कुछ अपने जैसा और एकसमान लगता है। भगवान कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत के इसी सर्वव्यापी रूप को समझा था, इसीलिए वे इंद्र देवता के कोप से बच पाए और व्रज के ग्रामीणों को भी बचा पाए। ग्रामीण तो गोवर्धन पर्वत को अपना स्थानीय देवता मानते थे, जो सीमित व अलग-थलग रूप वाला था। यह कथा मुझे एक रूपक की तरह भी लगती है। इंद्र विकास व संसाधनों के अहंकार से युक्त शहरवासियों व मैदानी भूभाग में रहने वाले लोगों का प्रतीक है। गोवर्धन पर्वत गांव की हरी-भरी वादियों का प्रतीक है। व्रजवासी एक अनपढ़, ग्रामीण, पहाड़ी, पिछड़े, अन्धविश्वासी व संकुचित सोच के अहंकारी

आदमी का प्रतीक है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि अहंकार शहरवासी और ग्रामवासी, दोनों में है। यद्यपिशहरी में उच्चता व कृत्रिमता का अहंकार है, और ग्रामीण में निम्नता व प्रकृति का। ये दोनों प्रकार के अहंकार आपस में टकराते हैं। इन दोनों प्रकार के अहंकारों से रहित आदमी ज्ञानी कृष्ण की तरह है, जो इन दोनों प्रकार के लोगों के साथ मिश्रित होकर भी उनके दुष्प्रभावों से अछूता रहता है।

कुंडलिनी ही एक अधिकारी को सच्चा अधिकारी बनाती है

दोस्तों, अधिकारी मुझे बचपन से ही अच्छे लगते हैं। मुझे उनमें एक देवता का रूप नजर आता था। उनमें मुझे एक अपनेपन और सुरक्षा की भावना नजर आती थी। बदले में, अधिकारियों का भी मेरे प्रति एक विशेष प्रेम होता था। अधिकारी का जीवन जीते हुए अब मुझे यह समझ आ रहा है कि ऐसा क्यों होता था।

अधिकारी देवता की तरह अद्वैतशील होते हैं

एक अधिकारी काम करते हुए भी कुछ काम नहीं करता। तभी तो कहा जाता है कि अधिकारी कुछ काम नहीं करते। वास्तव में एक अधिकारी सभी काम अद्वैत के साथ करता है।अद्वैत के साथ किया गया काम काम नहीं रह जाता। वही औरों से काम करवा सकता है, जो खुद न तो काम करता है, औऱ न ही निकम्मा रहता है। यह ऐसे ही है जैसे कि पानी की मझदार में न फंसा हुआ व्यक्ति ही पानी में फंसे हुए दूसरे व्यक्ति को पानी से बाहर निकाल सकता है। औरों से काम करवाना भी एक काम ही है। अद्वैत के साथ रहने से एक अधिकारी के काम न तो काम बने रहते हैं, और न ही निकम्मापन। एक प्रकार से उसके सारे काम काम की परिभाषा से बाहर हो जाते हैं। यदि अधिकारी खाली बैठा रहे, तो वह निकम्मा कहलाएगा। निकम्मापन भी काम के ही दायरे में आता है, क्योंकि काम और निकम्मापन दोनों एक-दूसरे के सापेक्ष हैं, और एक-दूसरे से शक्ति प्राप्त करते हैं। इसलिए काम के दायरे से बाहर होने के लिए यह जरूरी है कि वह अद्वैत के साथ लगातार काम करता रहे। क्योंकि अद्वैत और कुंडलिनी हमेशा साथ रहते हैं, इसलिए प्रत्यक्ष तौर पर भी कुंडलिनी का सहारा लिया जा सकता है। तभी वह अपने अधीनस्थ लोगों से उत्तम श्रेणी का भरपूर काम ले सकता है।

देवताओं के सर्वोच्च अधिकारी भगवान गणपति भी अद्वैत की साक्षात मूर्ति हैं

भगवान गणेश जी को गणनायक, गणपति, गणनाथ, विघ्नेश आदि नामों से भी जाना जाता है। ये सभी नाम नेतृत्व के हैं। इसीलिए वे सभी देवताओं से पहले पूजे जाते हैं। शास्त्रों ने उन्हें विशेष रूप दिया है। उनका मुँह वाला भाग एक हाथी का है, और बाकी शरीर एक मनुष्य का है। यह रूप अद्वैत का परिचायक है। यह सुंदरता और कुरूपता के बीच के अद्वैत को इंगित करता है। यह उस शक्तिशाली अद्वैत को दर्शाने का एक प्रयास है, जो जानवर और मनुष्य के सहयोग से पैदा होता है। हाथी स्वयं भी अद्वैत भाव का परिचायक होता है। उसमें एक अद्वैतशील संत के जैसी मस्ती और बेफिक्री होती है। हाथी कामभाव व उससे संबंधित मूलाधार चक्र का भी परिचायक है, जो एक नायक या नेता के जैसे सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वप्रथम स्थान पर आता है।

एक सच्चे अधिकारी और कुंडलिनी योगी के बीच समानता

दोनों ही प्रकार के लोग अद्वैतशील होते हैं। दोनों में ही अनासक्ति होती है। दोनों ही हर समय आनन्दित और हंसमुख रहते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि कुंडलिनी योग से अधिकारी में निपुणता की कमी पूरी हो सकती है। इसलिए एक अधिकारी को कुण्डलिनी योग जरूर करना चाहिए। प्रेम प्रसंग से भी कुंडलिनी/अद्वैत का विकास होता है। तभी आपने देखा होगा कि अधिकांश अधिकारी वर्ग के लोग इश्क-मोहब्बत के कुछ ज्यादा ही दीवाने होते हैं।

एक अधिकारी के लिए "शरीरविज्ञान दर्शन" जैसे अद्वैत दर्शन की अहमियत

हिन्दू शास्त्र और पुराण अद्वैत की भावना का विकास करते हैं। इसलिए एक अधिकारी को प्रतिदिन उन्हें पढ़ना चाहिए। इसी कड़ी में प्रेमयोगी वज्र ने "शरीरविज्ञान दर्शन" नामक पुस्तक की रचना की है। उसे लोग आधुनिक पुराण भी

कहते हैं, क्योंकि वह पूरी तरह से वैज्ञानिक है। कम से कम उसे पढ़ने में तो संकोच नहीं होना चाहिए।

अद्वैत से ही काम करने की प्रेरणा मिलती है

यह आमतौर पर देखा जाता है कि अद्वैतशील आदमी के काम के आनंद और मस्ती को देखकर बाकी लोग भी काम करने लग जाते हैं। यदि कभी काम के लिए बोलना भी पड़ जाए तो वह इतनी मित्रता व प्यार से होता है कि वह आदेश प्रतीत नहीं होता। एक प्रकार से वह बोलना भी न बोलने के बराबर ही हो जाता है। असली अधिकारी का गुण भी यही है कि उसके संपर्क में आते ही लोग खुद ही अच्छे ढंग से काम करने लग जाते हैं। लोगों में अपनी अलग ही विकास की सोच पैदा हो जाती है। लोग अपने काम से आनन्दित और हँसमुख होने लगते हैं। यदि काम करवाने के लिए अधिकारी को बोलना पड़े या आदेश देना पड़े, तो इसका मतलब है कि अधिकारी के अद्वैतशील व्यवहार में कमी है। वास्तव में अधिकारी बोलते हुए भी नहीं बोलते, और आदेश देते हुए भी आदेश नहीं देते। सच्चे अधिकारी गजब के कलाकार होते हैं।

कुंडलिनी सबसे बड़ी धर्मनिरपेक्ष वस्तु है

दोस्तों, बहुत से लोग कुंडलिनी को धर्म के नाम से, विशेषकर हिंदु धर्म से जोड़ते हैं। पहले मैं भी लगभग यही समझता था। इसका कारण है, कुंडलिनी k बारे में गहराई से समझ न होना। इसी कमी को पूरा करना इस ब्लॉग का उद्देश्य प्रतीत होता है। आज हम इस पोस्ट में कुंडलिनी की सर्वाधिक धर्मनिरपेक्षता को सिद्ध करने का प्रयास करेंगे।

प्रत्येक धर्म या सम्प्रदाय में अपने अलग-अलग आराध्य हैं

उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म के विभिन्न संप्रदायों में अनेक प्रकार के देवी-देवता हैं। शैव संप्रदाय भगवान शिव की अराधना की संस्तुति करता है। वैष्णव सम्प्रदाय में भगवान विष्णु के अवतारों की पूजा करने को कहा गया है। शाक्त लोग देवी माता की अराधना करते हैं। ब्रह्मवादी हिन्दू निराकार ॐ की अराधना करते हैं। इसी तरह सिख धर्म में गुरुओं का ध्यान और उनकी बताई गई शिक्षा को अमल में लाना प्रमुख है। जैन मत में भगवान महावीर व उनके उपदेशों का वर्णन है। बुद्धिस्ट लोग भगवान बुद्ध को अपना सबसे बड़ा ईश्वर मानते हैं। इस्लाम में अल्लाह के प्रति समर्पित होने को कहा गया है। इसाई धर्म में भगवान यीशु की भक्ति पर जोर दिया गया है।

कुंडलिनी योग में कोई भी आराध्य नहीं है

इसका यह अर्थ नहीं है कि कुंडलिनी योगी किसी का भी ध्यान नहीं करते। इसका अर्थ है कि कुंडलिनी योग में अपना अराध्य अपनी मर्जी से चुनने की स्वतंत्रता है। वास्तव में ध्यान के आलंबन का ही नाम कुंडलिनी है, जैसा कि पतंजलि ने अपने योगसूत्रों में कहा है। "यथाभिमतध्यानात् वा" इस सूत्र में पतंजलि ने कहा है कि किसी भी मनचाही वस्तु के ध्यान से मन को स्थिर और योगयुक्त किया जा सकता है। यह अलग बात है कि तांत्रिक हठयोग की तकनीकों से इसके साथ संवेदनात्मक एनर्जी को मिश्रित करके, इसे और ज्यादा मजबूत किया जाता है। कुंडलिनी किसी भी वस्तु

या भाव के रूप में हो सकती है। यह प्रेमिका के रूप में भी हो सकती है, प्रेमी के रूप में भी, और दुश्मन के रूप में भी। कृष्ण की कुंडलिनी देवी राधा के रूप में, और देवी राधा की कुंडलिनी अपने प्रेमी कृष्ण के रूप में थी। शिशुपाल कृष्ण को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानता था, इसलिए उसका ध्यान हमेशा कृष्ण में लगा रहता था। इस तरह से शिशुपाल की कुंडलिनी भी भगवान कृष्ण के रूप में थी। कुंडलिनी गुरु के रूप में भी हो सकती है, और शिष्य के रूप में भी। यह प्रकाश के रूप में भी हो सकती है, और अंधकार के रूप में भी। यह बड़े के रूप में भी हो सकती है, और छोटे के रूप में भी। यह तंत्र के रूप में भी हो सकती है, और मंत्र के रूप में भी। यह भगवान के रूप में भी हो सकती है, और भूत के रूप में भी। यह देवता के रूप में भी हो सकती है, और राक्षस के रूप में भी। यह निर्जीव पदार्थ के रूप में भी हो सकती है, और सजीव के रूप में भी। यह मनुष्य के रूप में भी हो सकती है, और पशु के रूप में भी। और तो और, यह ॐ, अल्लाह आदि निराकार रूप में भी हो सकती है। सीधा सा मतलब है कि एक आदमी का जिस वस्तु की तरफ सबसे ज्यादा झुकाव हो, वह उसी वस्तु को अपनी कुंडलिनी बना सकता है। फिर वह योग के माध्यम से उसका नियमित ध्यान करके उसको जगा भी सकता है। यह अलग बात है कि अधिकांश लोग अच्छे व सुंदर व्यक्तित्वों जैसे कि गुरु, देवता आदि का ही ध्यान करते हैं, क्योंकि एक आदमी जैसा ध्यान करता है, वह वैसा ही बन जाता है।

कुंडलिनी भौतिकतावादी विज्ञान से भी ज्यादा धर्मनिरपेक्ष है

विज्ञान भी व्यावहारिक प्रयोगों से सिद्ध किए गए सिद्धांतों को ही मानने की वकालत करता है। यह उनके इलावा अन्य किसी विषय को नहीं मानता। कुंडलिनी तो इन बाध्यताओं की सीमा से भी परे है। कुंडलिनी को किसी सत्य वस्तु या भाव का भी रूप दिया जा सकता है, और असत्य का भी। विज्ञान देवताओं को नहीं मानता, पर बहुत से ऋषियों ने उन्हें कुंडलिनी के रूप में जगाया है। ऐसा ही मैंने पिछली पोस्टों में भी बताया था कि करोल पहाड़ का आकार वास्तव में शिवलिंग जैसा नहीं था, परंतु मेरे निवास से वह विशाल शिवलिंग प्रतीत होता था। उसी आभासिक आकृति पर कई शिवभक्त लोग ध्यान लगा लेते थे। उपरोक्त तथ्यों से तो यही निष्कर्ष निकलता है

कि कुंडलिनी सबसे अधिक संवेदनात्मक, सहानुभूतिप्रद, स्वतंत्रताप्रद, प्रेमप्रद, मानवतावादी, लोकतांत्रिक, वैज्ञानिक, और धर्मनिरपेक्ष है; यहाँ तक कि भौतिकतावादी विज्ञान से भी ज्यादा। कुंडलिनी विज्ञान को यह भलीभांति ज्ञात है कि सभी की व्यक्तिगत रुचि का सम्मान करना चाहिए।

कुण्डलिनी-लिङ्गों में मूलाधार चक्र ही सर्वश्रेष्ठ लिङ्ग है

दोस्तों, शिवपुराण में भगवान शिव के ध्यान पर ही अधिकांश जोर दिया गया है। उसमें भगवान शिव को ही कुंडलिनी माना गया है। पूरे पुराण में लिंग का बहुतायत में वर्णन है। जब लिंग के ऊपर शिव (कुंडलिनी) का ध्यान किया जाता है, तब वह शिवलिंग या कुंडलिनी-लिंग बन जाता है। शिवलिंग ही शिवपुराण की धुरी है, जिसके चारों ओर पूरा पुराण घूम रहा है।

कुण्डलिनी के साथ जुड़े हुए चिन्ह को ही कुंडलिनी लिंग या शिवलिंग कहते हैं

वास्तव में मुख्य वस्तु के साथ जुड़े हुए चिन्ह को ही उस वस्तु का लिंग कहते हैं। जैसे कि पुरुष के साथ जुड़े हुए पौरुषत्व के चिन्ह को पुलिंग और स्त्री के साथ जुड़े हुए स्त्रीत्व के चिन्ह को स्त्रीलिंग कहते हैं। लिंग के बिना मुख्य वस्तु में कुछ कमी आ सकती है, परंतु वह समाप्त नहीं हो जाती। यदि पुरुष से पुरुष के चिन्ह समाप्त हो जाएं, तो पुरुष के स्वभाव में कुछ कमी आ सकती है, परंतु पुरुष वैसा ही रहेगा। इस हिसाब से तो छिपकली की पूँछ को भी छिपकली का लिंग कह सकते हैं। जब वह उसे गिराती है, तो उससे उसे अपना संतुलन बनाने में कुछ कठिनाई आ सकती है, परंतु छिपकली वैसी ही रहती है। इसी तरह, अध्यात्म में मुख्य वस्तु कुंडलिनी ही है। किसी मूर्ति आदि के चिन्ह से जोड़ने पर कुंडलिनी को अतिरिक्त बल मिलता है। यदि उस चिन्ह या लिंग को हटा दिया जाए, तो कुंडलिनी ध्यान में कुछ कमी आ सकती है, परंतु कुंडलिनी तब भी मन में बनी रहती है।

कुंडलिनी योग चर लिंग के अंतर्गत आता है

शिवपुराण में अनेक प्रकार के लिंगों का वर्णन आता है। चर लिंग कुंडलिनी योगी के लिए विशेष महत्त्व का है। इसमें मूल संवेदना को लिंग माना गया है। शरीर के

विभिन्न चक्र उस लिंग के बदलते हुए स्थान हैं। वह संवेदना निचले चक्रों पर उत्पन्न होती रहती है, और अन्य सभी चक्रों से होती हुई चक्राकार घूमती रहती है।

सबसे स्थायी लिंग के रूप में हमारा अपना शरीर

अन्य प्रकार के लिंग अचर होते हैं। उनमें पर्वत या पत्थर से बने लिंग भी शामिल हैं। पर्वत से बने लिंग स्थायी होते हैं। पत्थर से बने लिंग अस्थायी होते हैं। पत्थर से बने लिंग स्त्रियों के लिए बेहतर बताए गए हैं। अन्य प्रकार के लिंग सूक्ष्म लिंग होते हैं। मंत्र लिंग इनमें मुख्य हैं। मंत्रलिंग में मंत्र के ऊपर कुंडलिनी का ध्यान किया जाता है। ॐ भी एक उत्तम प्रकार का मंत्र लिंग है। सूक्ष्म लिंग सन्यासियों के लिए बेहतर बताए गए हैं। पर्वत को इसीलिए स्थायी लिंग कहा गया है, क्योंकि वे लाखों वर्षों तक वैसे ही बने रहते हैं। इस हिसाब से तो हमारा अपना शरीर सबसे स्थायी लिंग हुआ, क्योंकि वह हमें हर जन्म में मिलता ही रहेगा, जब तक हमें मुक्ति नहीं मिल जाती। इसका सीधा सा अर्थ है कि कुंडलिनी योग साधना सर्वश्रेष्ठ साधना है। वास्तव में लिंग का दूसरा अर्थ अनुभूति भी है, जो हमें विभिन्न प्रकार के पदार्थों और भावों की सहायता से प्राप्त होती है। उसी अनुभूति पर कुंडलिनी को आरोपित किया जाता है। क्योंकि सबसे तीखी और मीठी संवेदना की अनुभूति हमें अपने ही शरीर से प्राप्त होती है, कहीं बाहर से नहीं, इसलिए शरीर के अंदर का लिंग ही सर्वश्रेष्ठ लिंग है। यही सिद्धांत तंत्रयोग का मूल सिद्धांत है। "शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)" नामक पुस्तक में इस बात को पुरजोर सिद्ध करके दिखाया गया है।

कुंडलिनी के साथ चक्र-संतुलन संतुलित जीवन की कुंजी है, जिससे तनाव खुद ही घट जाता है

दोस्तों, आजकल जीवन बहुत संघर्षपूर्ण व स्पर्धात्मक हो गया है। रिश्तों की पेचीदगियां भी आजकल बहुत बढ़ गई हैं। ऐसे में दिमाग में बोझ का बढ़ जाना स्वाभाविक ही है। आज हम इस पर और कुंडलिनी की सहायता से इससे बचाव के ऊपर चर्चा करेंगे।

दिमाग का अनियंत्रित बोझ ही अधिकांश समस्याओं का मूल कारण है

दिमाग के अनियंत्रित बोझ से आदमी में बहुत से व्यावहारिक परिवर्तन आते हैं। वह चिड़चिड़ा व गुस्सैल बन जाता है। इससे उसका तनाव बढ़ जाता है। तनाव बढ़ने से उसकी कार्य करने की क्षमता घट जाती है, और वह विभिन्न रोगों का शिकार होने लग जाता है। इन सभी से उसका पारिवारिक, सामाजिक और व्यावसायिक जीवन गड़बड़ाने लग जाता है। उसकी साँसें भी रुकने सी लगती हैं, और अनियमित भी हो जाती हैं। इससे शरीर में ऑक्सीजन की कमी भी होने लगती है।

चक्र साधना तनाव को कम करने में सहायक

सभी चक्रों का समान रूप से उपयोग न होने से प्राणशक्ति सभी चक्रों के बीच में बराबर मात्रा में विभक्त नहीँ हो पाती। इससे जिन चक्रों को जरूरत से ज्यादा प्राणशक्ति मिलती है, वे काम के बोझ से दुष्प्रभावित हो जाते हैं; और जिन चक्रों को जरूरत से कम प्राणशक्ति मिलती है, वे भी पर्याप्त काम न मिलने से दुष्प्रभावित हो जाते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि योग से स्वास्थ्य लाभ मिलता है। वास्तव में सही ढंग से किए जाने वाले कुंडलिनी योग से सभी चक्र स्वस्थ व क्रियाशील बने रहते हैं। इससे जीवन संयमित व संतुलित बन जाता है। हमने अक्सर देखा है कि प्रकृति के बीच में काम करने वाले बुद्धिजीवी लोग आकर्षक व्यक्तित्व वाले होते हैं। उनकी

जीवनशैली संतुलित होती है। इसका यही कारण है कि दिमाग के काम से उनके मस्तिष्क के चक्र स्वस्थ रहते हैं, और शारीरिक कार्यों से शरीर के अन्य चक्र। यदि वैसे लोग भी कुंडलिनी योग करेंगे तो उन्हें भी लाभ होगा, फिर आलस्यपूर्ण जीवनशैली वाले शहरी लोगों को भला क्योंकर नहीं होगा।

कुंडलिनी प्राणशक्ति के वाहक के रूप में काम करती है

प्राणशक्ति तो अदृश्य होती है। उसे तो हम आसानी से अनुभव भी नहीं कर सकते। फिर उसे चक्रों पर कैसे घुमाया जाएगा। वास्तव में, कुंडलिनी प्राणशक्ति के लिए एक हैन्डल का काम करती है। जहाँ भी कुंडलिनी जाती है, प्राणशक्ति वहाँ खुद चली जाती है। इसीलिए चक्रों पर केवल कुंडलिनी को ही घुमाया जाता है।

दिमाग के अनावश्यक बोझ को एकदम से कम करने वाला एक व्यावहारिक नुस्खा

जीभ को तालु के साथ सटा कर रखा जाता है। जीभ और तालु के संपर्क को ध्यान में रखा जाता है। मस्तिष्क में विचारों की हलचलों को यथावत चलने दें, और उन पर भी ध्यान बना कर रखें। शरीर के फ्रंट चैनल और बैक चैनल पर भी ध्यान बना कर रखें। यदि संभव हो तो सभी पर एकसाथ ध्यान बनाएं, अन्यथा ध्यान को एक-दूसरे पर शिफ्ट करते रहें। ऐसा करने पर कुंडलिनी अचानक मस्तिष्क में प्रकट हो जाएगी, और अन्य फालतू विचार धीमे पड़ जाएंगे। कुंडलिनी सभी चक्रों पर घूमते हुए आनन्द के साथ लगातार मस्तिष्क में बनी रहेगी, और मस्तिष्क का अनावश्यक बोझ भी कम हो जाएगा। बैक चैनल की कल्पना एक फन उठाए हुए शेषनाग के रूप में कर सकते हैं, जिसकी केंद्रीय रेखा पर कुंडलिनी चलती है। पेट से लंबे और गहरे साँस लेने से भी कुंडलिनी को चैनेल में चलने की शक्ति प्राप्त होती है। सीधे भी कुंडलिनी ध्यान को किसी विशेष चक्र पर केंद्रित किया जा सकता है, और साथ में यह भी ध्यान में रखा जा सकता है कि मस्तिष्क से उस चक्र तक फ्रंट चैनल के माध्यम से प्राणशक्ति स्वयं नीचे उतर जाएगी। इससे थोड़ी देर में ही मस्तिष्क की प्राणशक्ति भी उस चक्र

पर पहुंच जाती है। उससे चक्र पर ऐंठन के साथ और आनन्द के साथ कुंडलिनी तेजी से चमकने लगती है। मस्तिष्क का बोझ एकदम से हल्का हो जाता है। यह ऐसे ही होता है जैसे कि इलेक्ट्रिक करेंट विद्युतचुम्बकीय तरँग के रूप में एकदम से लक्ष्य पर पहुंच जाता है, जबकि इलेक्ट्रॉनों को पहुंचने में ज्यादा समय लगता है।

चाय पीकर भूख को बढ़ाना

अक्सर देखा जाता है कि चाय पीकर भूख घट जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि चाय से प्राणशक्ति मस्तिष्क को चली जाती है। तभी तो चाय पीने के बाद दिमाग में रंग-बिरंगे विचार उमड़ने लगते हैं। इससे पाचनतंत्र में प्राणशक्ति की कमी हो जाती है। कई बार मैंने चाय से दिमाग में बढ़ी हुई प्राणशक्ति को कुंडलिनी योग के माध्यम से नीचे उतारा, और उसे विशेषकर नाभि चक्र पर स्थापित किया। उससे मेरी भूख अचानक से बढ़ गई। इसी तरह प्राणशक्ति को अन्य चक्रों पर भी केंद्रित किया जा सकता है। इसे हम चाय योगा कह सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि हम कुण्डलिनी योग के माध्यम से अपने शरीर की बहुत सी चयापचय क्रियाओं को नियंत्रित कर सकते हैं।

कुंडलिनी ही यमुना में पौराणिक कालियनाग को मारने वाले भगवान श्रीकृष्ण के रूप में अभिव्यक्त होती है

मित्रों, योग एक वैज्ञानिक विधि है। आम लोग इसे आसानी से नहीं समझ सकते। अभ्यास तो इसका तब करेंगे न, जब इसे समझेंगे। इसीलिए आम जनमानस की सुविधा के लिए पुराण रचे गए हैं। पुराणों में योग को विभिन्न मिथक घटनाओं और कथाओं के रूप में समझाया गया है। हालांकि मिथक रूप होने पर भी ये कथाएं सैद्धांतिक रूप से सत्य होती हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि ये मिथक शास्त्रीय होते हैं, विशेष रूप से डिज़ाइन किए गए होते हैं, और गैर-शास्त्रीय या साधारण मिथकों के विपरीत होते हैं। कुछ तथाकथित आधुनिकतावादियों की सोच के विपरीत, ये अंधविश्वास की श्रेणी में नहीं आते। सामाजिक, व्यक्तिगत और व्यावहारिक मर्यादाओं के उल्लंघन से बचने के लिए कई बातें सीधे तौर पर नहीँ कही जा सकती हैं, इसलिए उन्हें वैज्ञानिक मिथक के रूप में कहना पड़ता है। योग को एकदम से समझना मुश्किल हो सकता है। लम्बे समय तक यौगिक या अद्वैतमयी जीवनशैली को अपना कर रखना पड़ता है। इसीलिए पुराणों में योग से संबंधित बातों को मनोरंजक मिथक कथाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इससे ये कथाएं लंबे समय तक अपने प्रति आदमी की रुचि बना कर रखती हैं। इनसे आदमी अपनेआप ही अप्रत्यक्ष रूप से योगी बना रहता है, और अनुकूल परिस्थिति मिलने पर थोड़े से अतिरिक्त प्रयास से वह पूर्ण योगी भी बन सकता है। यदि सभी लोग एकसाथ पूर्णकालिक योगी बन गए, तब दुनियादारी के काम कैसे चलेंगे। इसीलिए योग को ऐसी वैज्ञानिक व सुहानी कथाओं के रूप में ढाला जाता है, जिन पर विश्वास बना रहे। इससे दुनियादारी के सारे दायित्वों को निभाते हुए भी आदमी हर समय यौगिक जीवनशैली में बंधा रहता है। ऐसी ही एक प्रसिद्ध कथा श्रीमद्भागवत महापुराण में आती है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण व कालियनाग के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। उस कथा के अनुसार भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ के डर से रमणक द्वीप पर कालिय नाम का एक विशाल नाग रहता था, जिसके सैंकड़ों फन थे। उसे किसी संत ने श्राप

दिया था कि कृष्ण भगवान उसको मारकर उसका उद्धार करेंगे। इसलिए वह वृन्दावन के समीप बह रही यमुना नदी में आ गया था। उसके जहर से यमुना का पानी जहरीला हो गया था, जिससे आसपास के लोगबाग और पशु-पक्षी मर रहे थे। कृष्ण भगवान अपने गोप मित्रों के साथ वहाँ गेंद खेल रहे थे। तभी उनकी गेंद यमुना के जल में चली गई। श्रीकृष्ण ने तुरंत यमुना में छलांग लगा दी। अगले ही पल वे कालियनाग से कुश्ती लड़ रहे थे। बहुत आपाधापी के बाद श्रीकृष्ण उसके बीच वाले और सबसे बड़े सिर पर चढ़ गए। वहाँ उन्होंने अपना वजन बढ़ा लिया और उसके फनों को मसल दिया। उन्होंने उसके सिर और पूँछ को एकसाथ पकड़कर उसे यहाँ-वहाँ पटका। अंत में उन्होंने कालियनाग को हार मानने पर मजबूर कर दिया। तभी कालियनाग की पत्नियां वहाँ आईं और भगवान कृष्ण से उसके प्राणों की भिक्षा माँगने लगीं। श्रीकृष्ण ने उसे इस शर्त पर छोड़ा कि वह सपरिवार यमुना को छोड़कर रमणक द्वीप पर वापिस चला जाएगा और दुबारा यमुना के अंदर कभी नहीं घुसेगा।

कालियनाग सुषुम्ना नाड़ी या मेरुदंड का प्रतीक है, और भगवान श्रीकृष्ण कुंडलिनी के प्रतीक हैं

वास्तव में आदमी की संरचना एक नाग से मिलती है। आदमी का सॉफ्टवेयर उसके केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र से बना होता है, जो आकृति में एक फन उठाए नाग की तरह दिखता है। उसमें मस्तिष्क और मेरुदंड आते हैं। आदमी का बाकी का शरीर तो इसी केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर बाहर-बाहर से मढ़ा गया है। इसी केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में सुषुम्ना नाड़ी प्रवाहित होती है। यहाँ यमुना नदी का पानी मेरुदंड के चारों ओर बहने वाले सेरेब्रोस्पाइनल फ्लूड का प्रतीक है। रमणक द्वीप में निवास करना दुनियादारी के भोग-विलास में उलझने का प्रतीक है। रमणक शब्द को रमणीक या रमणीय शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है मनोरंजक। गरूड़ का भय साधु संतों के भय का प्रतीक है। रमणीक जगह पर साधु संत नहीं जाते। यह देखा जाता है कि साधु संत लोगों को दुनियादारी के फालतू झमेलों से दूर रखते हैं। साधु का श्राप किसी सज्जन द्वारा ईश्वर का सही रास्ता दिखाना है। कालियनाग का श्रीकृष्ण के द्वारा मारे जाने के बारे में कहना उसको आसक्ति के बंधन से मुक्ति प्रदान करने का प्रतीक है। श्रीकृष्ण के

द्वारा उसे वापिस रमणक द्वीप भेजने का अर्थ है कि वह दुनिया के भोले-भाले लोगों से दूर एकांत में चला जाए और वहाँ पर आसक्ति का विष फैलाता रहे। कालियनाग की पत्नियां दस इन्द्रियों की प्रतीक हैं। इनमें 5 कर्मेन्द्रियां और 5 ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ये इन्द्रियाँ कालियनाग की पत्नियां इसलिए कही गई हैं, क्योंकि ये दुनियादारी में आसक्त आदमी के सान्निध्य में बहुत शक्तिशाली होकर उससे एकाकार हो जाती हैं। कालियनाग का विष आसक्तिपूर्ण जीवनशैली का प्रतीक है। यह दुनिया का सबसे शक्तिशाली विष है। इससे आदमी जन्म-मरण के चक्कर में पड़कर बार-बार मरता ही रहता है। कालियनाग के सैंकड़ों फनों से निकल रहे विष का अर्थ है कि मस्तिष्क में पैदा हो रही सैंकड़ों इच्छाओं व चिंताओं से यह आसक्ति बढ़ती ही रहती है। भगवान कृष्ण यहाँ कुंडलिनी के प्रतीक हैं। उनका कालियनाग के बीच वाले मस्तक पर चढ़ने का अर्थ है, कुंडलिनी का सहस्रार चक्र में ध्यान करना। श्रीकृष्ण के द्वारा गेंद खेलने का अभिप्राय कुण्डलिनी योगसाधना से है। गेंद यहाँ प्राणायाम की प्राणवायु की प्रतीक है। कृष्ण के सखा ग्वाल-बाल विभिन्न प्रकार के प्राणायामों व योगसाधना के प्रतीक हैं। जैसे गेंद आगे-पीछे जाती रहती है, वैसे ही साँसें भी। गेंद का नदी में घुसने का अर्थ है, प्राणवायु का चक्रों में प्रविष्ट होना। श्रीकृष्ण का नदी में छलांग लगाने का अर्थ है कि कुंडलिनी भी प्राणवायु के साथ चक्रों में प्रविष्ट हो गई। यमुना पवित्र नदी है, जिसमें श्रीकृष्ण छलांग लगाते हैं। इसका अर्थ है कि प्राणवायु से पवित्र हुए चक्रों में ही कुंडलिनी प्रविष्ट होती है। श्रीकृष्ण के द्वारा कालियनाग के फनों को मसले जाने का अर्थ है कि कुंडलिनी ने मस्तिष्क की फालतू इच्छाओं और चिंताओं पर रोक लगा दी है, तथा अवचेतन मन में दबे पड़े वैचारिक कचरे की सफाई कर दी है। श्रीकृष्ण के द्वारा कालियनाग के सिर और पूँछ को एकसाथ पकड़े जाने का अर्थ है कि कुंडलिनी मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक पूरी सुषुम्ना नाड़ी में फैल गई है। मूलाधार से शक्ति लेकर कुंडलिनी सहस्रार में चमक रही है। ऐसा तब होता है जब तालु-जिह्वा के जोड़ या सहस्रार और मूलाधार का ध्यान एकसाथ किया जाता है। ऐसा करने से कालियनाग के पटके जाने का अर्थ है कि उससे दिमाग का फालतू शोर खत्म हो रहा है, जिससे आदमी शाश्वत आनन्द की ओर बढ़ रहा है। कालियनाग को जान से मारने का प्रयास करने का अर्थ है कि शरीर के तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित रूप में

ही काम करने देना है। कालियनाग का दुबारा यमुना में न प्रविष्ट होने का अर्थ है कि कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी कभी आसक्तिपूर्ण व्यवहार नहीं करता।

कुंडलिनी स्विच

मित्रों, इस बार मैं योग की साधारण सी तकनीक का वर्णन करूंगा। यह है, जीभ की निचली सतह को नरम तालु से टच करने की। वैसे इसके बारे में मैंने पहले भी लिखा था। परंतु इस बार मैं तकनीक का व्यवहारिक रूप दिखाऊँगा। अभी भी मैंने कुंडलिनी को जीभ के माध्यम से फ्रंट चैनेल से उतारा। योग के निरन्तर अभ्यास से मेरी इस तकनीक में लगातार निखार आ रहा है। इसके बारे में मैं नित नई बातें सीख रहा हूँ।

मस्तिष्क के विचारों और जीभ -तालु के स्पर्श का एकसाथ ध्यान करना चाहिए

ऐसा करने से विचारों की शक्ति खुद ही फ्रंट चैनेल से होते हुए नीचे उतर जाती है।

जीभ तालु पर जितना पीछे कांटेक्ट में रहे, उतना ही अच्छा है

तालु का पीछे वाला भाग नरम, मखमली, नम व फिसलन से भरा होता है। वहाँ पर स्पर्श की संवेदना भी ज्यादा मजबूत व आनन्द से भरी होती है। कुंडलिनी जितने अधिक ऊपर वाले चक्रों में होती है, जीभ-तालु के आपसी स्पर्श की अनुभूति भी उतनी ही जल्दी और तेज होती है। स्पर्श की अनुभूति यदि पलभर के लिए भी हो जाए, तो भी कुंडलिनी नीचे उतर जाती है। यह ऐसे ही होता है, जैसे दो तारों के क्षणभर के संपर्क से ही करेंट प्रवाहित हो जाता है। कई बार यह अनुभूति जीभ को तालु पर रब करके भी पैदा की जाती है।

साँसें भी जीभ-तालु के आपसी स्पर्श को बनाने और मिटाने का काम करती हैं

इसीलिए जीभ-तालु के कांटेक्ट पॉइंट को कुंडलिनी स्विच भी बोलते हैं। साँस भरते समय यह कांटेक्ट पॉइंट कुछ लूस पड़ जाता है। वास्तव में यहाँ पर अवेयरनेस घट

जाती है। इसका मतलब है कि कुंडलिनी स्विच ऑफ़ हो जाता है, और चैनेल का लूप सर्किट ब्रेक हो जाता है। इससे कुंडलिनी एनर्जी मस्तिष्क में जमा हो जाती है। पेट से साँसें भरने से ऐसा ज्यादा अच्छी तरह से होता है। इसी तरह, बैक चैनेल का फन उठाए नाग के रूप में ध्यान करने से भी कुण्डलिनी को बैक चैनेल में ऊपर चढ़ने में मदद मिलती है। मस्तिष्क में कुण्डलिनी एनर्जी के जमा होने से जीभ-तालु के स्पर्श को अनुभव करना भी आसान हो जाता है, जैसा ऊपर बताया गया है। फिर साँस छोड़ते हुए यह और आसान हो जाता है, क्योंकि उस समय पूरे फ्रंट चैनेल पर नीचे की तरफ दबाव पड़ता है। इस तरह से एक स्वचालित यंत्र के पुर्जों की तरह ये सभी तकनीकी बिंदु एक-दूसरे की मदद करते रहते हैं, और कुण्डलिनी चक्र लगातार चलने लगता है। इससे शरीर और मन दोनों रिफ्रेश हो जाते हैं। वैसे भी, कभी भी जीभ को तालु से स्पर्श कराने पर मस्तिष्क का अतिरिक्त बोझ नीचे उतर जाता है। मस्तिष्क के खाली हो जाने से उसमें एकदम से कुण्डलिनी स्वयं ही प्रकट हो जाती है। सिर्फ स्पर्श से कुछ नहीं होता, वहाँ पर अवेयरनेस भी पहुंचनी चाहिए। स्पर्श की संवेदना को गौर से अनुभव करने से वहाँ अवेयरनेस खुद ही पहुंच जाती है। उसके परिणामस्वरूप फ्रंट चैनेल में विशेषकर फ्रंट स्वाधिष्ठान चक्र में एक गहरी मांसपेशियों की सिकुड़न की अनुभूति होती है, और साथ में साँस की एक गहरी गैसप के साथ नियमित व गहरी सांसें चलने लगती हैं। यही कुण्डलिनी एनर्जी का चलना है।

जीभ के पिछले हिस्से के केन्द्र से फ्रंट चैनल गुजरती है, जो सभी फ्रंट चक्रों को बेधते हुए मूलाधार तक जाती है। उससे कुंडलिनी एनर्जी के गुजरते समय पूरे फ्रंट चैनल एरिया में सनसनी के साथ ऐंठन महसूस होती है।

कई बार कुंडलिनी एनेर्जी पतली और केंद्रीय लाइन पर महसूस होती है, कभी बिना रेखा के ही

जरूरी नहीं कि हमेशा ही जीभ को तालु पर बहुत पीछे ले जाना पड़े। कई बार तालु के अगले भाग में ही अच्छी अनुभूति मिल जाती है। सामान्य पोजिशन में सीधी जीभ की तालु के साथ स्पर्श-संवेदना को भी अनुभव किया जा सकता है। जैसा ठीक लगे,

वैसा करना चाहिए। कई बार कुण्डलिनी पतली रेखा में चलती महसूस होती है। ऐसा तब होता है, जब ध्यान तेज होता है, और मन शांत होता है। कई बार कुंडलिनी शक्ति केवल एक चक्र से दूसरे चक्र को स्थान बदलते दिखती है, चक्रों को जोड़ने वाली चैनल लाइन नहीं दिखाई देती। अभ्यास के साथ खुद ही अनुभूतियाँ विकसित होती रहती हैं। इसलिए औरों की अनुभूतियों की नकल न करते हुए सही अभ्यास में लगे रहना चाहिए। इसी तरह, कई बार कुंडलिनी के चलने से संबंधित क्षेत्र की मांसपेशियों का संकुचन और ढीलापन ही महसूस होता है, बेशक कुंडलिनी का पता नहीं चलता। ऐसा सही तकनीक को लागू करने से होता है। यह कुण्डलिनी के प्रभाव को दिखाता है। कई बार ऐसा महसूस भी नहीं होता, खासकर जब मांसपेशियां थकी हों।

कुंडलिनी सहस्रार चक्र में जबकि कुंडलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में निवास करती है

मित्रो, कुंडलिनी और कुण्डलिनी शक्ति के बीच में अंतर को लेकर दुनिया में अक्सर भ्रम देखा जाता रहता है। कई लोग कुंडलिनी को कुंडलिनी शक्ति समझ लेते हैं, और दूसरे कई लोग कुण्डलिनी शक्ति को कुंडलिनी समझ लेते हैं। आज हम इस बारे में अनुभवात्मक चर्चा करेंगे।

कुण्डलिनी शक्ति का मूल निवासस्थान मूलाधार चक्र है, जबकि कुण्डलिनी का मूल निवासस्थान सहस्रार है

शक्ति मूलाधार में उत्पन्न होती रहती है। वह सहस्रार तक जाकर कुण्डलिनी को पुष्ट करती है। इससे ऐसा लगता है कि कुण्डलिनी मूलाधार में पैदा हो रही है। सहस्रार से शक्ति आज्ञाचक्र से होकर नीचे उतरती है, और शरीर के सभी चक्रों में फैल जाती है। इससे ऐसा आभास होता है कि सभी चक्रों पर कुंडलिनी घूम रही है। वास्तव में वह शक्ति घूम रही होती है। शक्ति को प्राण या प्राणशक्ति भी कहते हैं।यदि चक्रों पर ही कुण्डलिनी हुआ करती, तो वह वहाँ पर जागृत भी होती। पर कुंडलिनी तो सहस्रार में ही जागृत होती है।

शरीर में अनुभव का स्थान मस्तिष्क ही है, कोई अन्य स्थान नहीं

शरीर के किसी भी भाग की चमड़ी में यदि खुजली हो, तो उसकी अनुभूति मस्तिष्क में ही होती है। हालांकि हमें ऐसा लगता है कि खुजली वाले स्थान पर संवेदना की अनुभूति होती है।कुण्डलिनी के साथ भी वैसा ही होता है। चाहे हम किसी भी चक्र पर कुण्डलिनी का ध्यान करें, उसकी अनुभूति मस्तिष्क में ही होगी। परन्तु लगता ऐसा है कि चक्र पर कुण्डलिनी है। यदि मस्तिष्क को दवा आदि से बेहोश किया जाए, तो शरीर के चक्रों पर भी संवेदना या कुण्डलिनी की अनुभूति नहीं होगी। इसी तरह जब

सुषुम्ना नाड़ी पीठ में एक चमकती हुई लकीर के रूप में अनुभव होती है, तो वह अनुभूति भी मस्तिष्क में ही हो रही होती है।

मस्तिष्क से फ्रंट चैनेल के रास्ते उतरता हुआ प्राण कुंडलिनी के आभासिक चित्र को भी अपने साथ नीचे ले आता है

यह इस बात से सिद्ध होता है कि जब मस्तिष्क में कुंडलिनी का ध्यान हो रहा होता है, उस समय यदि जीभ को तालु से लगा कर प्राण को मस्तिष्क से नीचे उतारा जाए, तो कुंडलिनी भी उसके साथ उतरकर सभी चक्रों को भेदते हुए मूलाधार तक पहुंच जाती है। कुंडलिनी का चित्र तो लगातार मस्तिष्क में ही बन रहा होता है, पर उसका आभासिक अनुभव विभिन्न चक्रों पर होता है। इसी तरह, पीठ से ऊपर चढ़ता हुआ प्राण कुंडलिनी को भी वापिस ऊपर ले जाता हुआ प्रतीत होता है। हालांकि कुण्डलिनी कुण्डलिनी मस्तिष्क में ही होती है। इसका मतलब है कि जब प्राण कुण्डलिनी को अपने साथ चलाता है, तो कुण्डलिनी भी प्राण को अपने साथ चलाती है, क्योंकि दोनों आपस में जुड़े होते हैं। तांत्रिक हठयोग में प्राण को कुंडलिनी का हैन्डल बनाया जाता है, जबकि राजयोग में कुंडलिनी को प्राण का हैंडल बनाया जाता है। मिश्रित योग में दोनों ही तरीकों का इस्तेमाल होता है, इसलिए यह सबसे ज्यादा प्रभावी है।

मस्तिष्क के विभिन्न विचार भी जब प्राण के साथ नीचे उतरते हैं, तो वे कुंडलिनी बन जाते हैं

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि योगी को कुण्डलिनी के चिंतन की आदत पड़ी होती है। इसलिए कुंडलिनी विचार सबसे प्रिय होता है। तभी तो प्रिय व्यक्ति के लिए कहते हैं कि वह तो मेरे दिल का टुकड़ा है। माँ बेटे के लिए अपनी कोख का हवाला देती है। जब प्राण किसी चक्र पर केंद्रित हो, तब मस्तिष्क में विचारों के लिए बहुत कम प्राण बचा होता है। उतने कम प्राण में तो कुण्डलिनी चित्र को ही बना के रखा जा सकता है, क्योंकि रोज के योगाभ्यास के बल से मस्तिष्क को उसको आसानी से और कम प्राण ऊर्जा से बनाने की आदत पड़ी होती है। इसी तरह, योगाभ्यास के समय जब मन

विचारशून्य सा होता है, तो मूलाधार से सहस्रार को चढ़ने वाली शक्ति से कुंडलिनी ही उजागर होती है। यह इसलिए क्योंकि कुंडलिनी की लिए सोचकर ध्यान लगाने की जरूरत नहीं होती। वह रोज के अभ्यास से खुद ही ध्यानपटल पर बनी रहती है। इसी तरह, योगाभ्यास के दौरान जब साँसे प्राणों से भरपूर होती हैं, तब भी कुण्डलिनी ही पुष्ट होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुण्डलिनी चित्र ही उन साँसों के प्राणों का सबसे अधिक फायदा उठाते हुए सबसे तेजी से चमक सकती हैं। ऐसा रोज के कुंडलिनी अभ्यास से ही होता है।

अनुभूति का स्थान सहस्रार चक्र ही है, इसीलिए कहा जाता है कि आत्मा सहस्रार में निवास करती है

मुझे तो कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति पूरे मस्तिष्क में हुई। ऐसा लगा कि मस्तिष्क का हरेक कण कम्पायमान या जागृत हो रहा था। यद्यपि कुण्डलिनी मस्तिष्क के सबसे ऊपरी हिस्से में महसूस हो रही थी। उसे ही क्राऊन चक्र भी कहते हैं। जब जागरण की अनुभूति समाप्त हुई, तब कुण्डलिनी आज्ञा चक्र में महसूस हुई। सहस्रार से जागरण की शुरुआत इसलिए होती है क्योंकि मूलाधार से ऊपर चढ़ने वाली प्राणशक्ति सीधी सहस्रार में प्रविष्ट होकर वहाँ पर कुंडलिनी को चमकाती है। हो सकता है कि अनुभव केवल सहस्रार चक्र में ही होती हो, और अन्य मस्तिष्कीय केंद्रों में अनुभूति सहस्रार से ही रेफर्ड होकर आई हो। हालांकि मेरा यह अनुमान वैज्ञानिक प्रयोगों के विरुद्ध है, जिसमें मस्तिष्क में बहुत से अनुभूति के केंद्र बताए गए हैं। वैसे तो चिकित्सा विज्ञान अभी तक चक्रों और नाड़ियों की पहेली को नहीं सुलझा पाया है। इसी तरह, आज्ञा चक्र और उससे निचले चक्रों की तरह मस्तिष्क व शरीर के सभी बिंदुओं पर महसूस होने वाली संवेदनाएं रेफर्ड ही हैं। संवेदनाओं का मूल स्थान तो सहस्रार ही है। सहस्रार में जागरण के एकदम बाद कुंडलिनी आज्ञा चक्र पर आ जाती है। इससे जाहिर होता है कि निचला चक्र अपने ऊपर वाले चक्र से कम ऊर्जा स्तर का होता है। मतलब यह है कि सहस्रार की प्राणऊर्जा के विभिन्न स्तर विभिन्न चक्रों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। जागरण के समय ऊर्जा स्तर टॉप मोस्ट लेवल पर होता है। ऊर्जा स्तर के एक निश्चित सीमा के नीचे गिरने से जागरण की अनुभूति

समाप्त हो जाती है। उस समय भी कुण्डलिनी रहती तो सहस्रार में ही है, पर वह आज्ञा चक्र में प्रतीत होती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सहस्रार से प्राण आज्ञा चक्र तक उतर गया होता है। यदि कुण्डलिनी प्राण के साथ न चला करती, तो जागरण के एकदम बाद किसी भी चक्र पर महसूस हुआ करती। उसके बाद जैसे-जैसे प्राण नीचे उतरता है, कुण्डलिनी भी उसके साथ उतरती महसूस होती है। यह ऐसे ही होता है, जैसे जब किसी अंग में बहुत तेज दर्द होता है, तो वह सहस्रार में महसूस होता है, और आदमी कहता है कि उसका सिर फटा जा रहा है। इससे ऐसी कहावत भी बनी है कि"इतनी दर्द हुई कि चोटी खड़ी हो गई"। दरअसल बालों की चोटी सहस्रार के निकट बँधी होती है। छोटी मोटी दर्द तो प्रभावित अंग के स्थानीय क्षेत्र में ही लोकेलाइज्ड महसूस होती है। यदि बिना सुन्न किए दाँत उखाड़ा जाए, तो सहस्रार में बहुत तेज दर्द होता है। आदमी बोलता है कि उससे बड़ा दर्द कोई नहीं हो सकता। कुंडलिनी जागरण के अनुभव के बाद भी तो आदमी यही बोलता है कि इससे बड़ा अनुभव नहीं हो सकता। वास्तव में कुंडलिनी जागरण ही दुनिया की सबसे बड़ी अनुभूति है। अगर कोई है, तो वह आत्मज्ञान या ईश्वर ही है। उसमें अद्वैत और आनंद की अनुभूति पूर्ण रूप में होती है। अद्वैत और आनन्द तो दाँत उखाड़ने के बाद भी महसूस होता है, पर पूर्णरूप में नहीं। इससे भी जाहिर होता है कि अनुभूति का स्थान सहस्रार ही है। दाँत निकालने के दर्द की अनुभूति की जागरण की अनुभूति से समानता की बात बहुत से योगियों ने की है। मैंने भी ऐसा दाँत निकालने का उच्चतम स्तर का दर्द एकबार महसूस किया था। सुन्न करने वाली दवा अपना असर नहीं दिखा पाई थी। उससे मुझे अपना मस्तिष्क फटता हुआ सा इसलिए महसूस हुआ, क्योंकि मेरे शरीर का सारा प्राण दर्द का पीछा करते हुए सहस्रार में घुस गया था। उसके बाद मुझे 3 साल पहले हुए आत्मज्ञान का स्मरण हो आया, क्योंकि वह अवस्था उसीके जैसी आध्यात्मिक थी। वह प्राणोत्थान की अवस्था लग रही थी। इसमें पूरे शरीर का प्राण सहस्रार में केंद्रित होता है। इसका वर्णन मैंने एक पुरानी पोस्ट में किया है। सम्भवतः दुःख या दर्द से पाप का नष्ट होना इससे पैदा हुई इस योग भावना से ही होता है। इससे इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि योग से पाप क्षीण होते हैं। अब कुण्डलिनी के अनुभव को तो दर्द के अनुभव की तरह पैदा नहीं किया जा सकता है। अगर ऐसा होता तो आदमी सावधानी से अपने बाहरी अंगों में संवेदना पैदा करके कुण्डलिनी को महसूस

किया करता। कुण्डलिनी का ध्यान तो मस्तिष्क में ही किया जा सकता है। ऐसा करना आम आदमी के लिए कठिन है। इसलिए प्राण को कुंडलिनी के हैंडल के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। तांत्रिक हठयोग से प्राण को सहस्रार तक चढ़ाया जाता है। उससे वहां खुद ही कुण्डलिनी प्रकट होकर मजबूत होती रहती है। इससे जाहिर होता है कि हठयोग राजयोग की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक, व्यावहारिक व आसान है। वैसे समयानुसार दोनों का मिश्रित प्रयोग मुझे ज्यादा कारगर लगा। उपरोक्तानुसार जब दर्द के साथ प्राण सहस्रार तक पहुंचता है, तो उससे कुण्डलिनी भी अनुभव होने लगती है। परंतु ज्यादा कुण्डलिनी लाभ नहीं मिलता, क्योंकि अधिकांश प्राण को दर्द की अनुभूति खा जाती है। हालांकि कई जगह स्पर्श की अनुभूति का कुण्डलिनी के लिए प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, जीभ और तालु के आपसी स्पर्श के अनुभव से कुण्डलिनी और प्राण मस्तिष्क से वहां तक उतर जाते हैं, और फ्रंट चैनल से नीचे चले जाते हैं।उपरोक्तानुसार ही, जैसे सहस्रार में बनने वाले चित्र ही चक्रों पर बने हुए प्रतीत होते हैं, उसी तरह बाहरी दुनिया में बनने वाले सूर्य, नदी, पर्वत वगैरह के चित्र भी सहस्रार में ही बन रहे होते हैं, पर उनकी अनुभूति दूर बाहर होती है। यह ट्रिक मस्तिष्क ने क्रमिक जीवविकास के दौरान सीखी है। यदि सभी कुछ अंदर ही महसूस हुआ करता, तो बाहर की तरफ दौड़ न होती, और जीवविकास न होता।जितनी तेज अनुभूति होती है, वह उतनी ही ज्यादा आत्मा से चिपकती है। उसे ही समाधि भी कहते हैं। ऐसी तेज अनुभूति सहस्रार में ही होती है। तभी तो आदमी यौन प्रेमी को कभी भूल नहीं पाता। दरअसल मूलाधार से उठ रही अनुभूति सीधी सहस्रार में जा बैठती है और वहाँ प्रेमी के चित्र को मजबूत करती है। इसी वजह से कई लोग प्रेम में पागल होकर साधु बन जाते हैं।सहस्रार चक्र की इसी सार्वभौमिकता के कारण उसे एक हजार पंखुड़ियां दी गई हैं। इसका मतलब है कि यह शरीर के हरेक बिंदु से जुड़ा होता है। अन्य चक्रों में दो, तीन या चार पंखुड़ियां होती हैं, मतलब कि वे आसपास के कुछेक चक्रों से ही जुड़े होते हैं। इसका वर्णन मैंने एक पुरानी पोस्ट में किया है। शिवपुराण के अनुसार कुण्डलिनी ही शिव है, और शिव ही कुंडलिनी है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि उसमें शिव ही का ध्यान लगाने को कहा गया है। उसीके अनुसार वह शिव सहस्रार में निवास करते हैं। शक्ति उनसे मिलने के लिए मूलाधार से ऊपर चढ़ती रहती है। जब शक्ति का आवेग एक निश्चित सीमा से ऊपर उठ जाता है, तब

उसका शिव के साथ मिलन का कामोन्माद चरम पर पहुंच जाता है। उससे शिव-शक्ति का मिलन पूर्ण हो जाता है, जो कुण्डलिनी जागरण के रूप में प्रकट होता है।

मिश्रित योग सबसे अधिक कारगर होता है, इस उपरोक्त कथन की पुष्टि के लिए मैं अपने साथ घटित घटना का एक उदाहरण देता हूँ। मैं उस समय प्राणोत्थान की अवस्था में था। प्रतिदिन योगाभ्यास कर रहा था। एक दिन मेरे अचानक मिले पुराने मित्र के कारण मुझे कुण्डलिनी का तेज स्मरण हो आया। मैं उसमें खो गया। तभी अचानक मेरे प्राण भी उस कुंडलिनी का साथ देने के लिए मूलाधार से उठकर पीठ के रास्ते मस्तिष्क को चढ़ गए। इससे वह कुण्डलिनी जागृत हो गई। इसका विस्तृत विवरण इस वेबसाइट के होमपेज पर है। प्राण इसीलिए ऊपर चढ़ पाए, क्योंकि मैं प्रतिदिन तांत्रिक हठयोग का अभ्यास कर रहा था, और मुझे प्राण को ऊपर चढ़ाने की आदत बनी हुई थी। यदि वह आदत न होती, तो कुंडलिनी का स्मरण तो मस्तिष्क में तेजी से होता पर वह जागृत न होती, क्योंकि उसे मूलाधार की प्राणशक्ति न मिलती। जागरण कराने वाली असली प्राणशक्ति तो मूलाधार चक्र में ही रहती है। इससे पूर्वकथित इस बात की भी पुष्टि हो जाती है कि प्राण कुंडलिनी का पीछा करता है, और जहाँ कुंडलिनी जाती है, वहाँ प्राण भी चला जाता है। कुण्डलिनी के स्मरण को आप राजयोग कह सकते हैं, और मूलाधार से प्राण को ऊपर चढ़ाने को हठयोग कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सभी प्रकार के योग मिलजुल कर काम करते हैं, और सभी एक ही महायोग के विभिन्न हिस्से हैं।

कुण्डलिनी योगी को देवराज इंद्र परेशान कर सकते हैं

मित्रो, मैंने पिछले हफ्ते की पोस्ट में बताया कि सभी प्रकार के योगों को एकसाथ अपनाने से ही योग में सफलता प्राप्त होती है। आज हम इस तथ्य की कुछ विस्तारपूर्वक अनुभवात्मक विवेचना करेंगे।

कर्मयोग सभी योगों की प्रारंभिक सीढ़ी के रूप में

ऐसा इसलिए है, क्योंकि कर्मयोग सबसे आसान है। इससे दुनिया में रमा हुआ आदमी भी ऐसे ही शांत व दुनिया से दूर बना रहता है, जैसे कमल का पत्ता पानी में डूबा रहकर भी पानी की पहुंच से दूर रहता है, और सूखा ही बना रहता है। कर्मयोग तो जिंदगी में हमेशा ही बना रहना चाहिए। परंतु यह किशोरों व युवाओं के लिए विशेष महत्त्व का है, क्योंकि इसी उम्र में कर्म तेजी से किए जाते हैं। कर्म की मात्रा जितनी ज्यादा हो, कर्मयोग भी उतना ही ज्यादा प्रभावशाली होता है। कर्मयोग को अद्वैत भाव या अनासक्ति भाव भी कहते हैं। मेरे घर पर शुरु से ही योग का प्रभुत्व होने से मुझे कर्मयोग के संस्कार विरासत में मिले। वैसा मेरा कर्मयोग तभी चरम पर पहुंचा, जब उसमें किसी अज्ञात ईश्वरीय प्रेरणा से तंत्र भी सम्मिलित हुआ। इसी से मुझे आत्मजागृति को दो बार अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वास्तव में तंत्र से कर्म करने की शक्ति बढ़ जाती है, जिससे कर्मयोग भी बढ़ जाता है। फिर किसी दिव्य प्रेरणा से मैंने शरीरविज्ञान दर्शन की रचना की। यह एक व्यवहारिक दर्शन है, और दुनिया के झमेले में फंसे एक व्यक्ति के लिए रामबाण ओषधि है। इस दर्शन से मुझे बहुत बल मिला। इससे मुझे चहुँमुखी भौतिक तरक्की के साथ आध्यात्मिक तरक्की भी मिली। इसको बनाने के करीब 4-5 वर्ष पहले मुझे एक आत्मज्ञान की झलक भी मिली थी। उससे मैं विशेष हो गया था। मैं पूरी तरह से अद्वैत सागर में डूब गया था। दुनिया वालों को मैं मंगल ग्रह से आए आदमी की तरह लगने लगा, जिससे वे मुझे हीन सा समझने लगे और मुझे अलग-थलग सा रखने लगे। वे अपनी जगह पर सही भी थे। **वे मुझे पारलौकिक आयाम में प्रविष्ट नहीं होने देना चाहते थे**। हालांकि वह

आयाम सर्वश्रेष्ठ होता है, पर उस आयाम में रहकर दुनियादारी के काम ढंग से नहीं हो पाते। देवता आदमी को उस आयाम में जाने से रोकते हैं, क्योंकि यदि सभी लोग उस आयाम में चले गए, तो उनकी रची हुई दुनिया कैसे चल पाएगी। तभी तो प्राचीन काल में देवताओं का राजा इंद्र योगियों की तपस्या भंग करने आ जाता था। इंद्र को डर होता था कि यदि कोई आदमी योगबल से अपनी ओर दुनिया के लोगों को आकर्षित करेगा, तो उसे कोई नहीं पूछेगा। इंद्र को एकप्रकार से अपने प्रभुत्व की राजगद्दी के खो जाने का डर सताता रहता था। इसी खतरे के मद्देनजर ही मैं योगसाधना को सावधानी से करता हूँ। जैसे ही मैं पारलौकिक आयाम में प्रविष्ट होने लगता हूं, और मुझे देवताओं से खतरे का आभास होने लगता है, मैं तुरंत कुछ तांत्रिक टोटका अपनाकर उस आयाम से बाहर निकल आता हूं। सूत्रों के अनुसार योगी श्री साधुगुरु भी ऐसा ही कहते हैं, और सम्भवतः करते भी हैं। **वास्तव में, देवताओं से मधुर संबंध बना कर ही आदमी उनकी बनाई दुनिया से ऊपर उठ सकता है।**

उपरोक्त आध्यात्मिक अलगाव के कारण मेरे लिए दुनिया के बीच खुलकर सम्मिलित होना मुश्किल हो गया था। इससे मुझे कर्महीनता और बोरियत सी सताने लगी। इसीको कुंडलिनी का विपरीत चैनल में चढ़ना कहते हैं। **एक इड़ा चैनेल है, और एक पिंगला**। एक भावनात्मक है, और एक कर्मात्मक। मैं भावनात्मक ज्यादा हो गया था। चित्र-विचित्र अनुभवों में और पुरानी यादों में डूबा रहता था। इससे कर्म करने की शक्ति का ह्रास होता था। इसी वजह से मुझे उस समय यौन साथी की बहुत जरूरत महसूस होती थी। यौनबल से कुण्डलिनी बीच वाले सुषुम्ना चैनल में चढ़कर सहस्रार तक पहुंच जाती है। इससे आदमी का जीवन संतुलित हो जाता है। यौन साथी का तो नहीं, पर शरीरविज्ञान दर्शन का साथ मुझे जरूर मिला। इससे उत्पन्न अद्वैत से मेरे फालतू के विचारों पर लगाम लग गई। इससे जो शक्ति की बचत हुई, उससे मेरी कुंडलिनी सुषुम्ना चैनल से होकर सहस्रार में प्रविष्ट हुई। फिर मेरी कुंडलिनी को यौनबल के बिना ही उछालें मारते देखकर संभावित यौन साथी भी मेरी ओर नजरें घुमाने लगे। जिस समय मुझे यौनबल की जरूरत थी, उस समय तो कहीं कोई नजर नहीं आया, पर जब मैंने अपना यौनबल खुद ही निर्मित कर लिया, तब वे भी उसके प्रति उत्साहित होने लगे। वास्तव में जो कुछ हुआ, वह ठीक ही हुआ। अगर मुझे

यौनबल समय से पहले मिल गया होता, तो मैं अपना स्वयं का दार्शनिक यौनबल पैदा करना न सीख पाता, और न ही मुझे आत्मजागृति की दूसरी झलक मिल पाती।

थोड़ी उम्र बढ़ने पर मेरा ज्यादा झुकाव ज्ञानयोग व हठयोग की तरफ हो गया

हालाँकि कर्मयोग भी चला हुआ था। एकबार तो आत्मज्ञान के एकदम बाद मेरा भक्तियोग भी काफी बढ़ गया था। दरअसल जब भौतिक साथियों से धोखा खाकर मैं पूरी तरह निरुत्साहित हो गया था, तभी मुझे आत्मज्ञान अर्थात ईश्वर दर्शन की झलक मिली थी। उससे मुझे संतुष्ट व सुखी रहने के लिए भरपूर सहारा मिला। मैं अपने को ईश्वर का विशेष कृपापात्र समझने लगा। मैं उसके प्रति बार बार आभार प्रकट करता था, और विभिन्न स्तुतियों से उसे धन्यवाद देता था। यही तो ईश्वर भक्ति है। इससे जाहिर होता है कि सभी प्रकार के योग एकसाथ चलते रहने चाहिए। समय के अनुसार उनके आपसी अनुपात में बदलाव करते रहना चाहिए। ऐसा करने पर आत्म जागृति की प्राप्ति को कोई नहीं रोक सकता।

कुंडलिनी ध्यान चौबीसों घंटे करने के तीन तरीके

मित्रो, मैंने पिछली पोस्टों में बताया था कि जीभ को तालु से छुआ कर कुंडलिनी को आगे के चैनल से नीचे उतारते हैं। मैंने यह भी कहा था कि किसी भी संवेदना के अनुभव का एकमात्र स्थान सहस्रार ही है, कोई अन्य चक्र नहीं। कुंडलिनी चित्र हमेशा सहस्रार में ही बन रहा होता है। अन्य चक्रों में वह तभी प्रतीत होता है, जब उसका ऊर्जा स्तर एक न्यूनतम सीमा से नीचे गिरता है। ऊर्जा का स्तर जितना नीचे गिरता है, वह उतना ही ज्यादा निचले चक्र में जाता है। मैंने हाल ही में इससे संबंधित एक नया अनुभव प्राप्त किया, जिसे मैं उन्हीं निम्नलिखित सिद्धांतों की पुष्टि के लिए प्रयोग में लाऊँगा।

आध्यात्मिक आयाम को प्राप्त कराने वाली दो मुख्य यौगिक विधियां हैं

पहली विधि दार्शनिक है, और दूसरी विधि प्रयोगात्मक या तांत्रिक है। पहली विधि में किसी पसंदीदा अद्वैत दर्शन को अपनी वर्तमान स्थिति पर आरोपित किया जाता है। दूसरी विधि में जीभ को तालु से छुआ कर रखा जाता है।

आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कराने वाली दार्शनिक या राजयोग गत विधि

मैं एक दिन बहुत से जटिल कार्यों में व्यस्त था। उन कार्यों से लगातार द्वैत पैदा हो रहा था। द्वैत के साथ मानसिक परेशानी आ रही थी। उससे स्वाभाविक था कि शारीरिक परेशानी भी पैदा हो रही थी। मैं उस द्वैत को अद्वैत में रूपांतरित करने के लिए दार्शनिक विधि का सहारा लेने लगा। मैं स्वनिर्मित “शरीरविज्ञान दर्शन” नामक पुस्तक को अपनी उस समय की वर्तमान व मनोदोलन से भरी अवस्था पर आरोपित करने लगा। मैं अपनी अवस्था को बिल्कुल नहीं बदल रहा था। मतलब कि जैसी अवस्था बन रही थी, उसे वैसा ही रहने दे रहा था। अवस्था को बदलने से देवता

नाराज होते हैं, और वे कामकाज में विघ्न डालते हैं। वे चाहते हैं कि आदमी हर प्रकार की अवस्था का अनुभव करे। यह अलग बात है कि असली योगी उन सभी अवस्थाओं को अनासक्ति से अनुभव करे। देवता इससे और ज्यादा खुश हो जाते हैं, क्योंकि वे खुद भी अनासक्त होते। वे हर अवस्था का अनासक्ति से सामना करते हैं, उनसे भागते नहीं हैं। अवस्थाओं से पलायन करने को अपना और अपनी बनाई सृष्टि का अपमान समझते हैं, क्योंकि सभी अवस्थाएं इस विभिन्नताओं से भरी सृष्टि के हक में ही होती हैं। इसीलिए मैं अवचेतन मन से ही यह मान रहा था कि मेरा अद्वैत दर्शन मेरी सभी अवस्थाओं से जुड़कर उनको अद्वैतशील बना रहा है। मैं सीधे तौर पर इसका चिंतन नहीँ कर रहा था, क्योंकि उससे मेरी अवस्थाएं दुष्प्रभावित हो सकती थीं। उससे क्या होता था कि मेरे अज्ञातस्थान वाले चिन्तन में कुंडलिनी प्रकट हो जाती थी, और मेरे किसी चक्र पर स्थित हो जाया करती थी। जितना कम मानसिक ऊर्जा स्तर मेरी अवस्था का होता, मेरी कुंडलिनी उतना ज्यादा निचले चक्र पर चली जाती थी। मन के कुछ ऊर्जावान रहने पर वह हृदय चक्र पर आ जाती थी। ऊर्जा स्तर के काफ़ी ज्यादा गिरने पर वह नाभि चक्र पर आ जाती थी। उससे भी कम ऊर्जा होने पर वह स्वाधिस्ठानचक्र पर भी स्थित हो जाती थी।

आत्म-जागरूकता पैदा करने वाली तांत्रिक विधि

फिर से मस्तिष्क की थकान होने पर मैंने अपनी उलटी जीभ को नरम तालु से छुआया। मुझे वहाँ नमकीन सा स्वाद लगा और तीव्र संवेदना की अनुभूति हुई। इसके साथ ही मस्तिष्क की ऊर्जा जीभ के पिछले हिस्से की केंद्रीय रेखा से सभी चक्रों को भेदते हुए नीचे उतर गई और नाभि चक्र पर स्थित हो गई। उसके साथ कुण्डलिनी भी थी। मस्तिष्क में केवल विचारों का कंफ्यूसिंग पुलिंदा था। वह नीचे उतरते हुए कुण्डलिनी बन गया। उससे मस्तिष्क की थकान एकदम से कम हो गई। अद्वैत व आनन्द के साथ शांति का उदय हुआ। विचार व कर्म अनासक्ति के साथ होने लगे।

राजयोग व तंत्र के नियमों के मिश्रण वाली तीसरी यौगिक विधि

कुछ देर बाद मेरे मस्तिष्क में फिर से द्वैत से युक्त दबाव बनने लगा था। उसे कम करने के लिए मैंने उपरोक्त दोनों विधियों का प्रयोग किया। पहले मैंने जीभ को तालु से लगातार छुआ कर रखा। उसके साथ ही शरीरविज्ञान पुस्तक से अपने मन में कुंडलिनी को पैदा करने का प्रयास किया। पर वह मस्तिष्क में ढंग से प्रकट हो पाती, उससे पहले ही फ्रंट चैनेल से नीचे आ गई। उसके जीभ को क्रॉस करते समय जीभ में स्वाद से भरी हुई तेज संवेदना पैदा होती थी। इससे कुंडलिनी लूप भी पूरा हो गया था। इससे वह नाभि चक्र से भी नीचे उतरकर स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र से होते हुए मूलाधार को संकुचित करने से पीठ के बैक चैनेल से ऊपर चढ़ जाती थी और आगे से फिर नीचे उतर जाती थी। इससे कुंडलिनी चक्र की तरह लूप में घूमने लगी। यह विधि मुझे सर्वाधिक शक्तिशाली लगीं। हालांकि समय के अनुसार किसी भी विधि को अपने लाभ के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

कुंडलिनी के लिए ही भगवान शिव काशी में पार्वती के साथ विहार करने के लिए सभी जिम्मेदारियों से मुक्त बने रहते हैं

सभी मित्रों को पावन शिवरात्रि की हार्दिक शुभकामनाएं

मित्रो, मैंने पिछली पोस्टों में बताया था कि भगवान शिव मस्त-मलंग तांत्रिक की तरह रहते हैं। उनके पास कुछ अति जरूरी चीजों के सिवाय कुछ अतिरिक्त नहीं रहता। उनमें से माता पार्वती भी एक हैं, जिनके साथ वे काशी में स्वच्छन्द रूप से विचरण करते रहते हैं।

तंत्रसिद्धि के लिए दुनियादारी के झंझटों से दूर रहना जरूरी है

शिवपुराण के अनुसार भगवान शिव ने दुनियादारी के झमेले से दूर रहने के लिए भगवान विष्णु की उत्पत्ति की। उन्होंने उन्हें दुनिया के पालन और रक्षण की जिम्मेदारियां सौंपी। स्वयं वे पार्वती के साथ सुखपूर्वक योगसाधना करने के लिए काशी में विहार करने लगे। कहते हैं कि वे आज भी वहाँ विचरण करते रहते हैं।

प्रेमयोगी वज्र का एकांत-विहार का अपना निजी अनुभव

प्रेमयोगी वज्र भी भगवान शिव की तरह दुनियादारी के झमेले में फंसा हुआ था। उसने लगभग 20 वर्षों तक कठिन परिश्रम किया, और विकास के अनेक कारनामे स्थापित किए। हालाँकि उसका रुझान तांत्रिक जीवन की तरफ भी रहता था। इससे वह अद्वैत भाव में स्थित रह पाता था। उससे वह थकान महसूस करने लगता था। ऐसा इसलिए होता था क्योंकि अद्वैत भाव या कुण्डलिनी को बनाए रखने के लिए भी कुछ अतिरिक्त शक्ति खर्च होती रहती है। शक्ति के बिना कुछ भी संभव नहीं, भगवान भी नहीं। तभी तो शक्ति को शिव का अभिन्न हिस्सा समझा जाता है। हालांकि कभी-कभार के तांत्रिक खान-पान व रहन-सहन से उस शक्ति की आपूर्ति आसानी से हो

जाती थी। आग उसे भी जलाती है, जो उसके बारे में जानता है; और उसे भी उतना ही जलाती है, जो उसके बारे में नहीं जानता। इसी तरह दुनियादारी के झंझट सभी के अंदर 2 अज्ञान का अंधेरा पैदा कर देते हैं। यह अलग बात है कि अद्वैतयुक्त ज्ञानी में वह अंधेरा कम घना होता है। यह ऐसे ही है जैसे आग के बारे में जानने वाला आदमी उससे बचने का प्रयास करता है, जिससे वह कम जलन प्राप्त करता है। उसी दौरान किसी अचिंत्य परिस्थिति के कारण उसका शिव के प्रति प्रेम जागा था। फिर वैसी ही दिव्य परिस्थितियों के कारण उसे घर से अति दूर सपरिवार एकांत से भरे स्थान में रहने का अवसर मिला। उससे वह पुराना जीवन लगभग भूल सा गया। एक प्रकार से भगवान शिव ने उसे अपनी तरह दुनियादारी के झंझटों से मुक्त कर दिया। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि जो दुनिया में उलझा हो, उसे ही त्याग का फल मिलता है। जो पहले से ही सोया हुआ हो, उसे सो कर कोई लाभ नहीं मिलता। तभी तो शिवपुराण में लिखा है कि दुनियादारी के झंझटों को संभालने के लिए शिव ने विष्णु को नियुक्त किया और स्वयं संसार को त्याग कर काशी चले गए। एक अधिकारी अपने मातहत को उन्हीं जिम्मेदारियों को सौंप सकता है, जिनके बारे में वह खुद बखूबी जानता हो और जिन्हें निभाने का उसे लंबा अनुभव हो। यदि भगवान शिव ने दुनिया को लम्बे समय तक न चलाया होता, तो वे विष्णु को अपनी जगह पर कैसे प्रतिनियुक्त कर पाते। जो दुनिया को पुरजोर तरीक़ेसे नहीं स्वीकारते, उन्हें दुनिया के त्याग का फल भी नहीं मिलता। इसलिए जब तक दुनिया में रहो, पूरी तरह डूब के रहो, पर होश संभाल कर रखो। आज विज्ञान भी इस बात को स्वीकारता है कि जब मन की चेतनायुक्त क्रियाशीलता एकदम से 50 प्रतिशत से ज्यादा गिर जाए, तब आत्मजागृति की संभावना काफी बढ़ जाती है। इसीलिए पुराने समय में राजा लोग एकदम से राज्य का त्याग करके तप के लिए वनवास को चले जाया करते थे। चार आश्रम भी इसीलिए बने थे। गृहस्थ आश्रम के झमेले को निभा कर आदमी एकांत में स्थित वानप्रस्थ आश्रम जाया करते थे, जहाँ उन्हें बहुत शान्ति मिलती थी। उस एकांत में प्रेमयोगी वज्र शिव की तरह ही पूर्ण तंत्रमयी जीवन बिताते हुए अपने तांत्रिक साथी के साथ मनोरम व धार्मिक स्थानों पर विहार करने लगा। उससे उसकी कुण्डलिनी क्रियाशील हो गई, और दो वर्षों के अंदर ही जागृत हो गई।

शिव के के द्वारा भाँग का सेवन

भगवान शिव के बेफिक्री, मस्ती, आनन्दपूर्णता, अद्वैत व भोलेपन आदि गुणों को ही उनके द्वारा भाँग का नशा किए जाने के रूप में दिखाया गया है। लोग इन्हीं गुणों की प्राप्ति के लिए ही नशा करते हैं। पर ज्यादातर लोग सफल नहीं हो पाते, क्योंकि ये गुण आत्मा के आश्रित हैं, नशे के नहीं। यदि तांत्रिक विधि से व गुरु की देखरेख में हल्का नशा किया जाए, तो वह इन गुणों की झलक दिखाकर इनकी स्थायी प्राप्ति के लिए प्रेरित कर सकता है। इन गुणों की वास्तविक व स्थायी प्राप्ति तो आत्मबल से ही सम्भव है।

भगवान शिव के ऊपर दुग्ध व भाँग मिश्रित जल चढ़ाने के पीछे छिपा आध्यात्मिक मनोवैज्ञानिक रहस्य

मैं आज सुबह सपरिवार एक शिवमंदिर घूम कर आया। पैदल ही 4 किलोमीटर का सफर तय किया। मौसम बड़ा सुहाना था। चारों ओर प्रकृति की छटा बिखरी हुई थी। आम के पीले पुष्प गुच्छों पर भौंरे गुंजायमान हो रहे थे। लोगबाग मंदिर आ-जा रहे थे। रास्ते में कुछ पिल्ले हमारे साथ-साथ चलने लगे, फिर कुछ सूंघ कर रुक गए और इधर-उधर देखने लगे। कुछ पुराने और बड़े पेडों पर लताएँ ऐसे घनीभूत होकर लिपटी हुई थीं, जैसे कि कोई प्रियतमा अपने प्रेमी से या माता अपने शिशु से अपना लगाव दिखा रही हो। एक सूखा पेड़ आधा नीचे झुका हुआ था, और एक जिंदगी से थक कर झुके एक बूढ़े इंसान की तरह लग रहा था। वास्तव में अधिकांश समय हम देखकर भी कुछ नहीं देखते। उस रास्ते से मैं कई बार गुजरा हूँ, पर ये चीजें मुझे पहली बार नजर आईं। इसलिए आँखों के साथ दिमाग और मन भी खुले रखने चाहिए। मंदिर से आते हुए रास्ते से कुछ भाँग के पत्ते भी तोड़कर साथ ले आया। घर में उनको करीब 20 मिनट तक शिव के मंत्र के जाप के साथ बारीक पीस। फिर उसे थोड़े पानी, उतने ही दूध और कुछ शहद के साथ मिश्रित किया। उस घोल को मैं लगभ 25 मिनट तक शिव मन्त्र के जाप के साथ फैंटता रह। फिर उस घोल को छान कर साफ किया। उस से थोड़ा सा घोल लेकर मैं पास के दूसरे मंदिर सपत्नीक चला गया। वहां उसे लोटे के

जल मैं मिश्रित कर दिया और उससे शिवलिंग का अभिषेक करने लगा। लगभग 15 मिनट तक मैं थोड़ा-थोड़ा करके उस जल को शिवलिंग के ऊपर गिराता रहा। उस जल का रंग कुछ दूधिया और हरा था। एक अन्य दंपत्ति भी नजदीक ही बैठे थे, और शिव की पूजा के साथ शिव की आरती गा रहे थे। जैसे ही शिवलिंग पर मेरा जल गिरता था, मेरी कुण्डलिनी शक्ति प्राप्त करके वहाँ चमकने लगती थी। मन भी कुछ रोमांटिक मूड में जैसा आ गया था। वास्तव में वह जल भगवान शिव का यौन द्रव्य बन गया था। दूध से उसका रंग सफेद हो गया था, और भाँग से उसमें यौनता का नशा चढ़ गया था। एक बार पारद शिवलिंग के दर्शन के समय भी मुझे वैसी ही अनुभूति हुई थी। जब मैंने गूगल पर सर्च किया तो पता चला कि तरल पारे को एक विशेष प्राचीन हर्बल तकनीक से ठोस बनाया जाता है। वह एक प्रकार से भगवान शिव की ठोस बन गया यौन द्रव्य ही है। इससे अवचेतन में यह संदेश भी जाता है कि भटकते हुए तरल मन को ठोस बना कर शांत करना चाहिए। मैं घर वापिस आया और भगवान शिव के नाम से उस द्रव्य का आधा गिलास पी गया।

कुंडलिनी के लिए ही विभिन्न देवता विभिन्न व्यक्तित्वों के सांचों के रूप में हैं

मित्रो, मुझे कभी कोई देवता अधिक पसंद आता है, कभी कोई। बहुत पहले मुझे देवी माता रानी सर्वाधिक पसंद थी। अब मुझे भगवान शिव सबसे अच्छे लगते हैं। एक बार मैं जब मुंबई घूमने गया था, तब मुझे भगवान गणेश सबसे अच्छे लगे थे। देवताओं से हमेशा ही मेरी कुंडलिनी उजागर हो जाती थी। बात स्पष्ट है कि जो देवता कुंडलिनी को सबसे ज्यादा उजागर करता है, वही देवता सबसे अच्छा लगता है। इसका मतलब है कि असली आनन्द तो कुंडलिनी में ही है। देवता तो कुंडलिनी को उजागर करने में मददगार होते हैं।

एक विशेष देवता का स्वरूप एक विशेष व्यक्तित्व के स्वरूप का साँचा होता है

वास्तव में विभिन्न देवताओं का अस्तित्व विभिन्न व्यक्तित्वों के बोधक के रूप में है। भगवान शिव एक तांत्रिक, मस्त, अकिंचन, भोले, निस्पृह, प्रकृति-प्रेमी, शीघ्र नाराज व प्रसन्न होने वाले, अनासक्त व उच्च कोटि के आत्मगौरव के अहसास वाले व्यक्तित्व के बोधक हैं। यदि किसी को ऐसा व्यक्तित्व व ऐसे व्यक्तित्व वाला कोई आदमी पसंद है, तो उसे शिव आराधना से लाभ मिल सकता है। शिव का ध्यान करते रहने से ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की छवि उसके मन मन्दिर में प्रकट होती रहती है, और फिर धीरे-धीरे कुंडलिनी का रूप ले लेती है। जीवन में कोई किसी के साथ भौतिक रूप से तो लगातार नहीं बना रह सकता। परन्तु मानसिक रूप में जरूर हमेशा बना रह सकता है। किसी प्रेमी व्यक्ति के मानसिक चित्र को लगातार बनाए रखने के लिए ही उसके जैसे देवता को चुना जाता है। देवता को मूर्ति, चित्र, प्रतिमा आदि के रूप में पूजा जाता है। इससे प्रेमी का मानसिक चित्र मजबूत होता रहता है। कई बार उल्टा भी घटित होता है। जिस व्यक्तित्व के देवता की अराधना की जाती है, उस व्यक्तित्व वाले आदमी से प्यार होने लगता है। इससे फिर कुंडलिनी का विकास होता

है। पुराने युग में योगी किसी प्रेमी व्यक्ति के बिना ही खाली देवता की मूर्ति को भी कुंडलिनी बना लेते थे। परंतु आजकल यह असंभव सा ही लगता है। क्योंकि आजकल का समाज देवप्रधान या मूर्तिप्रधान न होकर व्यक्तिप्रधान है। इसी तरह किसी को भगवान गणेश का व्यक्तित्व रुचिकर लग सकता है, तो किसी को मां काली का। पसंद अपनी-अपनी। सभी की रुचि के अनुसार देवता विद्यमान हैं। जहाँ तक मेरे अपने अनुभव की बात है, तो मेरी कुंडलिनी के रूप में शिव जैसा व्यक्तित्व था। किसी दिव्य घटनाक्रम से एकबार मेरा झुकाव एकदम से भगवान शिव के प्रति बन गया था। मैं पूरी तरह हर तरफ से हारकर अपने आप को उनके प्रति समर्पित महसूस कर रहा था। इससे मुझे विविध अनुकूल परिस्थितियों के साथ अनजाने में ही तंत्रयोग की प्रेरणा मिली, जिससे मेरी कुंडलिनी जल्दी से जागृत हो गई।

देवता भावरूप में हमेशा विद्यमान रहते हैं

उदाहरण के लिए यदि किसी देश-काल में पैदा हुए विशेष तांत्रिक या कहो भैरवनाथ को तन्त्र का देवता माना जाता, तो आजकल के अधिकांश लोगों की उन पर श्रद्धा न होती। ऐसा इसलिए होता, क्योंकि भैरवनाथ एक असली मनुष्य थे, जो बहुत पुराने समय में पैदा हुए थे, और आज नहीं हैं। उनके समय की जीवन-परिस्थितियां आज की जीवन-परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न थीं। इस प्रकार लोगों के मन में उमड़ रहा तांत्रिक भाव बाबा भैरव की तरह ही नष्टप्राय हो जाता। परंतु इसके विपरीत भगवान शिव शाश्वत हैं। वे आज भी वैसे ही हैं, जैसे हजारों वर्ष पहले थे। वे आगे भी हमेशा वैसे ही रहेंगे। वास्तव में वे कोई नाशवान व्यक्ति नहीं, अपितु व्यक्तित्व या भाव के रूप में हैं। उनके व्यक्तित्व को ओढ़ने वाले अनगिनत लोग हो चुके हैं। इसलिए उन पर हमेशा विश्वास और इंटरस्ट बना रहता है। उससे तंत्र पर भी विश्वास बना रहता है, और उसके प्रति रुचि भी।

देवता हमेशा ही कुंडलिनी को शक्ति देते हैं

यदि कोई देवता रुचिकर हो या न हो, वह हमेशा ही कुंडलिनी लाभ देता है। देवता वास्तव में सजीव (यांग/शिव/पुरुष) और निर्जीव (यिन/शक्ति/प्रकृति) के मिश्रण की

तरह है। सजीव का गुण उसमें मनुष्य की तरह ही सभी क्रियाकलाप करने के रूप में है। निर्जीव का गुण उनमें निर्जीव वस्तुओं जैसे कि हवा, पानी, आग, सूर्य आदि के रूप में होना है। देवता में सजीव व निर्जीव का मिश्रण तभी संभव हो सकता है, यदि देवता अद्वैतमयी और अनासक्त हों। अद्वैत व अनासक्ति से देवता के सभी क्रियाकलाप उसके मन में शांत हो जाते हैं। हालांकि देवता द्वारा बाहर-बाहर से वे होते रहते हैं। यदि देवता पूरी तरह से सजीव होता, तो एक जीवित मनुष्य की तरह प्रत्यक्ष होता, और दुनिया के बंधन में डूबा रहता। यदि देवता पूरी तरह निर्जीव होता, तो मृतप्राय होता, जो सृष्टि को क़भी भी न चला पाता। और तो और, उसकी पूजा से लाभ की बजाय हानि होती। देवता के इसी अद्वैत रूप के कारण ही उसकी पूजा करने से आदमी के मन में अद्वैत छा जाता है, जिससे कुंडलिनी उजागर हो जाती है। इसीलिए ही वेद-शास्त्रों में लिखा गया है कि देवता की अराधना से दुनिया के सुख-साधनों के साथ मुक्ति की भी प्राप्ति होती है।

कुण्डलिनी ही जैव विकास का मुख्य उद्देश्य है

मित्रो, मैंने पिछली एक पोस्ट में बताया था कि मैंने अपने मन की चेतना के स्तर के अनुसार कुंडलिनी को विभिन्न चक्रों पर अनुभव किया। ज्यादा चेतना होने पर कुंडलिनी ऊपर के चक्रों पर आई, तथा कम चेतना होने पर नीचे के चक्रों पर आई। वास्तव में चेतना का स्तर शुद्ध मन से मापा जाता है, बाह्य इंद्रियों से संयुक्त मन से नहीं। बाह्य इन्द्रियों के सहयोग से तो सभी लोग और बहुत से अन्य जीव चेतना से भरे होते हैं। मरने के बाद तो बाह्य इन्द्रियाँ रहती नहीं हैं। उस समय तो शुद्ध मन की सूक्ष्म चेतना ही काम आती है। आँखों से कुछ देखते समय मन में चेतना की बाढ़ सी महसूस होती है। वह चेतना आँखों के बल से पैदा होती है, मन के अपने बल से नहीं। इसी तरह अन्य बाह्य इंद्रियों के मामले में भी समझना चाहिये। जैसे-जैसे मन की काबलियत भीतर से भीतर जाते हुए सूक्ष्मता में चेतना प्रकट करने की बढ़ती है, वैसे-वैसे ही वह मुक्ति के अधिक योग्य बनता जाता है। कुण्डलिनी उसकी इसी योग्यता को बढ़ाती है। कुंडलिनी ध्यान के समय आँखें बंद होने के साथ लगभग सभी बाह्य इंद्रियों के दरवाजे बंद होते हैं। फिर भी योग ध्यान की शक्ति से मन में प्रज्वलित हो रही कुंडलिनी में इतनी चेतना आ जाती है, जितनी बाह्य इन्द्रियों के सहयोग से भी नहीं आती। वर्षों के ऐसे लगातार अभ्यास से बिना कुण्डलिनी के शांत, विचाररहित मन में भी इतनी ही चेतना आ जाती है। इसे ही आत्मज्ञान कहते हैं। दरअसल मन भी बाह्य इन्द्रियों का एक सूक्ष्म रूप ही है। विचाररहित मन को ही अक्सर आत्मा कहा जाता है।

वास्तव में विकसित हो रहे जीवों के रूप में कुंडलिनी ही विकसित हो रही होती है। दरअसल कुंडलिनी मन का ही द्योतक है। कुंडलिनी ही सबसे उच्च स्तर का मानसिक विचार है। इसलिए हम कुंडलिनी की चेतना के स्तर से मन की चेतना का स्तर नाप सकते हैं।

कुंडलिनी के काम करने के लिए उसी न्यूरोनल ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो मस्तिष्क या दिमाग के काम करने के लिए आवश्यक होती है। उस न्यूरोनल ऊर्जा को

प्राण ऊर्जा या प्राणशक्ति द्वारा उत्तेजित किया जाता है, जो पूरे शरीर की सामान्यीकृत ऊर्जा है। तो दोनों एक ही ईंधन से प्रेरित होते हैं इसीलिए दोनों आपस में जुड़े हुए हैं। लेकिन सृजन का मुख्य उद्देश्य जीव को अंतिम स्थिति प्रदान करना है। यह कुंडलिनी द्वारा किया जाता है। इसका अर्थ है कि कुंडलिनी विकास ही सृजन का प्राथमिक लक्ष्य है, मस्तिष्क का विकास नहीं। मस्तिष्क का विकास अनिच्छा से खुद ही होता है। यह सह-प्रभाव के रूप में है, यद्यपि यह कुप्रभाव भी बन सकता है, यदि इसे गलत दिशा में लगाया जाए। कई पुरानी सभ्यताओं ने इस तथ्य को अच्छी तरह से समझा और कुंडलिनी पर मुख्य ध्यान रखा। तभी तो उस समय विभिन्न आध्यात्मिक पद्धतियों का बोलबाला था। आज, कुंडलिनी-घटनाएं दिन-प्रतिदिन बढ़ रही हैं, क्योंकि आज के युग का मस्तिष्क विकास भी अप्रत्यक्ष रूप से कुंडलिनी विकास का कारण बन रहा है। इसलिए, कुंडलिनी विकास और मस्तिष्क या विश्व विकास को एक साथ करना ही सबसे अच्छा तरीका है, ताकि कम से कम समय में कुंडलिनी जागरण हो सके। इसके लिए कर्मयोग भी एक अच्छा तरीका है।

कुंडलिनी चेतना के विकास का पैमाना है। कुण्डलिनी के सुषुप्त होने का अर्थ है कि मन सोया हुआ है। सोया इसलिए कहते हैं क्योंकि मन की चेतना कभी खत्म नहीं होती, केवल अप्रकट हो जाती है अर्थात सो जाती है। उस समय चेतन मन के स्थान पर अंधेरा ही होता है। आत्मज्ञान के बाद कुंडलिनी लगातार मन में उच्च चेतना के साथ छाई रहती है, जिसे हम समाधि कहते हैं। इसे कुंडलिनी के पूर्ण जागरण की सबसे क़रीबी अवस्था कह सकते हैं। इन दोनों विपरीत छोरों के बीच में अधिकांश जीव होते हैं। उनकी कुंडलिनी की चेतना का बल्ब कभी जलता रहता है, कभी धीमा पड़ जाता है, तो कभी बुझ जाता है।

कुण्डलिनी विकास के रूप में जीव विकास

योग के बारे में सुनने में आता है कि कुण्डलिनी (नाड़ी-ऊर्जा) ही विभिन्न जीवों के रूप में ऊपर चढ़ती रहती है। सबसे निम्न जीवों में व पेड़-पौधों में यह मूलाधार में सुषुप्त रहती है। इसे कुंडलिनी शक्ति या प्राण शक्ति भी कहते हैं। वास्तव में, उनमें भी यह शरीर को बनाए रखने के लिए जीव द्वारा अनुभव किए बिना ही पृष्ठभूमि में हमेशा

काम करती रहती है। यह ऐसे ही है, जैसे एक आदमी जब सोया होता है, तब उसकी चेतना लुप्त होती है, पर वह शरीर को जीवित रखने वाले सभी काम तब भी कर रही होती है। यह पूरे शरीर में वितरित रहती है, लेकिन इसे मूलाधार चक्र में निवसित कहा जाता है, क्योंकि यह इसके विकास और पोषण का मुख्य स्थान है। यह ऐसा ही है, जैसे कि एक आदमी दुनिया में हर जगह भटक सकता है, लेकिन वह अपने विकास, पोषण और आराम(नींद) को मुख्य रूप से अपने घर पर ही प्राप्त करता है। साथ में, कुण्डलिनी मूलाधार चक्र से ही अपनी लम्बी यात्रा शुरु करती है। अचेतन मन और मूलाधार चक्र, दोनों को समान कहा जाता है, और दोनों को सबसे बुरी भावनाओं से जोड़ा जाता है। आगे जो कहा गया है कि कुंडलिनी की शुरुआत मूलाधार चक्र से ही होती है, इसका अर्थ है कि प्रकाश की ओर यात्रा अंधेरे से ही शुरू होती है। उससे थोड़े विकसित जीवों में यह मूलाधार में अत्यल्प जागृत अवस्था में आ जाती है। इन्हें उभयलिंगी या हेर्मैप्रोडिटिक कहा जा सकता है। **सम्भवतः इसी स्तर पर पूर्ण आत्मा सहस्रार से गिरकर मूलाधार के गड्ढे में फंस कर सो गई थी। इसीलिए तो उस जीव का यिन या स्त्री और यांग या पुरुष रूप में विभाजन हुआ, ताकि एक-दूसरे के प्रति आकर्षण से आत्मा मूलाधार से ऊपर चढ़ते हुए पुनः सहस्रार में प्रविष्ट हो सके।** मूलाधार के वर्चस्व वाले सबसे निम्न जीवों के पास अपशिष्ट शरीर उत्पादों के उन्मूलन के अलावा बाहरी ऊर्जावान कार्य करने के लिए कुछ भी नहीं है। यह गुदा द्वार के पास स्थित मूलाधार चक्र का कार्य है। इसलिए उनकी कुंडलिनी ऊर्जा को मूलाधार चक्र में केंद्रित कहा जाता है। उससे विकसित जीवों में यह स्वाधिष्ठान चक्र तक ऊपर चढ़ जाती है। यहां जीव का यौन विभाजन होता है और वह यौन आकर्षण के साथ यौन इच्छा महसूस करने लगता है। तभी तो देखा जाता है कि निम्न जीवों में प्रजनन की गति बहुत तेज होती है। उसमें उनकी अधिकांश ऊर्जा का व्यय हो जाता है। यह कुंडलिनी या जीव विकास के लिए अद्भुत बल प्रदान करता है। यह बल आज के विकसित मानव में भी लगातार काम कर रहा है। मध्यम विकसित जीवों में यह नाभि चक्र में आ जाती है। तभी तो अधिकांश निम्न जीव रात-दिन खाने में ही लगे रहते हैं। उच्च कोटि के प्राणी में जैसे सम्भवतः गाय में व प्रेममयी मनुष्य में यह हृदय चक्र में आ जाती है। संभवतः तभी तो गाय वात्सल्य स्नेह से भरी हुई होती है। गाय में पाचन का अधिकांश काम सूक्ष्म जीव करते हैं, इसलिए ऊर्जा की काफी बचत

हो जाती है। बबून, गोरिल्ला आदि जैसे प्राइमेट्स में, कुंडलिनी ऊर्जा आगे उनकी भुजाओं या फ़ॉर्लिम्ब्स तक चली जाती है, इसीलिए वे अधिकतम रूप से अपने फ़ॉर्लिम्ब फ़ंक्शन का उपयोग करते हैं। इसी तरह, कोयल जैसे सुंदर गायन करने वाले पक्षी में, गले के चक्र में कुंडलिनी ऊर्जा को केंद्रित कहा जा सकता है। डॉल्फिन जैसे विश्लेषणात्मक कौशल वाले बुद्धिमान जानवरों में, इसे आज्ञा चक्र तक आने वाला कहा जा सकता है। यह मानव में ही सहस्रार चक्र तक आ सकती है, वह भी उचित मस्तिष्क-अभ्यास के साथ, क्योंकि केवल वही इसे जागृत कर सकता है, और जागरण का स्थान भी केवल सहस्रार ही है। सबसे उच्च कोटि के मनुष्य में यह सहस्रार में पूर्ण रूप से जाग जाती है।

कुंडलिनी के सात चक्र सात लोकों क़े रूप में हैं

शास्त्रों में ऊपर के सात लोकों का वर्णन आता है। ये सात लोक सात चक्रों के रूप में हैं। सबसे निम्न लोक मूलाधार चक्र है, क्योंकि उस स्तर के जीवों में सबसे कम चेतना होती है। उसके ऊपर के लोकों या चक्रों में जाते हुए चेतना का स्तर बढ़ता रहता है। सहस्रार में यह स्तर सर्वाधिक होता है। कुंडलिनी जागरण अर्थात शिव और शिवा के मिलन के समय चेतना का स्तर पूर्ण हो जाता है, जिससे उसे शिवलोक या ब्रह्मलोक कहते हैं। वैसे तो मूलाधार के नीचे भी पाताल के सात लोक बताए गए हैं। उनमें भी चेतना क्रमशः नीचे की ओर गिरती रहती है। इन लोकों में अधिकांशतः राक्षसों का का निवास बताया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इनकी चेतना का स्तर इतना अधिक गिर गया होता है कि ये देवताओं, साधुओं व उच्च चेतना वाले अन्य जीवों से द्रोह करते रहते हैं। धरती को मूलाधार चक्र के समकक्ष माना गया है। ऊपर के आसमान के लोक उच्च लोक हैं, जबकि धरती के नीचे पाताल लोक हैं।

आदमी का सीधा खड़ा होना और पीठ में गड्ढा बनना भी जैव विकास श्रृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है

मैंने एक पुरानी पोस्ट में बताया था कि कैसे अपनी नई कार में बैठकर मुझे उसे चलाते हुए लगातार अपनी पीठ सीधी और नेचरल पोस्चर में रखनी पड़ती थी, क्योंकि उसका लेगस्पेस हल्का सा कम लग रहा था। उससे मेरी कुंडलिनी को जागृत करने वाली और पीठ में ऊपर चढ़ने वाली शक्ति मिली। लोग कह सकते हैं कि अगली दोनों टांगों का हाथ की तरह प्रयोग करने के लिए ही आदमी सीधा खड़ा हुआ। पर ऐसा तो गोरिल्ला आदि प्राइमेट भी करते हैं। आदिमानव भी ऐसा करते थे। उनकी पीठ तो बिल्कुल सीधी नहीं होती, और न ही हाथों का प्रयोग करने के लिए जरूरी लगती है। फिर विकसित आदमी की ही पीठ क्यों सीधी हुई। ऐसा दरअसल कुण्डलिनी को मूलाधार से मस्तिष्क तक आसानी से व निपुणता से चढ़ाने के लिए हुआ। कुंडलिनी आकाश की तरह सूक्ष्म होती है। इसका स्वभाव ऊपर की तरफ उठना होता है। तभी तो कुंडलिनी जागरण के समय लगता है कि कुंडलिनी ऊपर की तरफ तेजी व शक्ति से उड़ रही है। फिर कह सकते हैं कि फिर नाभि की सीध में पीठ में गड्ढा क्यों बना। वास्तव में वह रोलर कोस्टर के गड्ढे की तरह काम करता है। वह प्रश्वास की शक्ति से कुंडलिनी एनर्जी को मूलाधार से चूसकर अपने अंदर जमा करता रहता है। फिर काम करते हुए या योग करते हुए आदमी जब आगे की तरफ झुकता है, वह वेग को पकड़कर तेजी से दिमाग की तरफ ऊपर भाग जाती है। गर्दन के केंद्र पर जो विशुद्धि चक्र है, वहाँ भी एक ऐसा ही छोटा सा गड्ढा बनता है। वह भी इसी तरह निःश्वास की शक्ति से अनाहत चक्र पर इकट्ठी हुई कुंडलिनी एनर्जी को मूमेंटम प्रदान करके उसे ऊपर धकेलता है। इसी तरह, स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र पर यौन ऊर्जा भंडारित होती है, जिसे ही योग के दौरान पीठ में ऊपर चढ़ाया जाता है।

काम भाव का जीवविकास में सबसे ज्यादा योगदान है

उभयलिंगी जीव में यिन और यांग एक ही शरीर में इकट्ठे होते थे। इसका मतलब है कि वे पूर्ण आत्मा ही थे। क्योंकि उनमें विकास के लिए अपनी अलग इच्छा नहीं थी, इसलिए उनका विकास अन्य कुदरती व जड़ वस्तुओं जैसे पहाड़, मिट्टी, आकाशीय पिंडों की तरह होता था। उस विकास की गति कुदरती और धीमी थी। फिर लिंग के विभाजन के साथ यिन-यांग का भी विभाजन हो गया। पुरुष वर्ग में यांग और स्त्री

वर्ग में यिन की बहुलता हो गई। इस विभाजन से जीव को अपने अंदर अपूर्णता का अहसास हुआ। सम्भवतः इसी स्तर पर जीवात्मा की उत्पत्ति हुई। वह यिन और यांग को इकट्ठा करके पूर्ण होने का प्रयास करने लगा। इससे काम भाव की उत्पत्ति हुई। इससे जीवों के पुरुष वर्ग और स्त्री वर्ग के बीच में परस्पर तीव्र आकर्षण पैदा हुआ। इसी काम भाव का जीवविकास में सबसे ज्यादा योगदान है, क्योंकि इससे सबसे अधिक अद्वैतभाव पैदा होता है, जिससे कुण्डलिनी का विकास सबसे मजबूती और तेजी से होता है। यह हमने पिछली बहुत सी पोस्टों में अनुभवात्मक रूप से सिद्ध किया है कि अद्वैत, कुंडलिनी और आनंद साथ साथ रहते हैं। इसने विकास को कृत्रिमता और तेज गति प्रदान की। आज भी यह तांत्रिक कुण्डलिनी योग के रूप में मनुष्य को मुक्ति रूपी पूर्णता की प्राप्ति के लिए विकास श्रृंखला की अंतिम छलाँग लगाने में मदद कर रहा है। **यह मूलाधार चक्र पर स्थित यिन (शक्ति) को सहस्रार में स्थित यांग (शिव) के साथ जोड़ता है। भारतीय दर्शन में यिन को प्रकृति और यांग को पुरुष कहा जाता है। यिन-यांग के मिलन से अद्वैत भाव पैदा होता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से कुण्डलिनी को विकसित करता है। ऐसा नहीं है कि यिन-यांग का आकर्षण केवल स्त्री-पुरुष का ही आकर्षण होता है। यह किन्हीं भी विपरीत भावों के बीच में हो सकता है। मूलाधार अंधेरे, निम्नता, अज्ञान, घृणा आदि सभी निम्न भावों का प्रतीक है। इनके विपरीत सहस्रार प्रकाश, उच्चता, ज्ञान, प्रेम आदि सभी उच्च भावों का प्रतीक है। इसीलिए इन दोनों पर एकसाथ कुन्डलिनी ध्यान से तीव्र अद्वैतभाव पैदा होता है, जिससे सहस्रार में कुंडलिनी चमकने लगती है। यौन आकर्षण का मुख्य कार्य यही है कि इससे मूलाधार और सहस्रार चक्र तरोताजा और बलवान हो जाते हैं।**

कुण्डलिनी ही माता पार्वती है, जीवात्मा ही भगवान शिव है, और कुण्डलिनी जागरण ही शिवविवाह है

दोस्तो, पिछली पोस्ट में इस सर्वविदित सिद्धांत की पुष्टि की गई थी कि दरअसल कुंडलिनी विकास को ही जीवविकास की संज्ञा दी गई है। कुंडलिनी मूलाधार में जन्म लेती है, विभिन्न स्थानों पर बढ़ती है, और अंत में सहस्रार में जागृत हो जाती है। इसे ही शिवविवाह कहते हैं। जैसे उच्च कोटि के गृह में विवाह के बाद प्रेमी युगल विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करता है, वैसे ही आत्मा-कुंडलिनी का जोड़ा सहस्रार में विवाहित होकर विभिन्न चक्रों पर भ्रमण करता रहता है। इसे ही शास्त्रों में ऋषियों का विभिन्न लोकों में भ्रमण बताया गया है। दरअसल वे लोक विभिन्न चक्रों के रूप में ही हैं। आज हम इस पर चर्चा करेंगे।

कुंडलिनी ही पार्वती है

अहंकार ही राजा दक्ष है। उसकी बेटी सती ही कुंडलिनी है। अहंकार से ही आदमी दुनियादारी में कामयाब होता है। उसी से एक स्थिर चित्र का निर्माण होता है, जो कुंडलिनी है। अहंकार रूपी दक्ष नहीं चाहता कि उसकी पुत्री कुंडलिनी भूतिया शिव के पीछे भागकर उसकी दुनियादारी को नुकसान पहुंचाए। अंत में वह हार जाता है और सती शिव को प्राप्त करने के लिए कुंडलिनी योग रूपी तप करती है। वह उसकी इच्छा के विरुद्ध जाकर शिव से विवाह कर लेती है मतलब कुंडलिनी जाग जाती है। अहंकार काफी कम हो जाता है पर मरता नहीं। वह कुंडलिनी को शिव से दूर करके अपने झमेले में फंसा लेता है। जब कुंडलिनी को यह भान होता है तब तक उसकी उमर पूरी हो चुकी होती है। गुस्से में शिव के द्वारा दक्ष का सिर काटकर बकरे का सिर लगाने का अर्थ है कि अहंकार शरीर के साथ भी नहीं मरता, अपितु कुछ क्षीण जरूर हो जाता है। अगले जन्म में कुंडलिनी रूपी सती पार्वती के रूप में पर्वत राज के घर पैदा होती है। वह शिव की प्राप्ति के लिए फिर तप करती है। कुंडलिनी अपना अभियान अगले

जन्म में फिर से शुरु कर देती है। मैटाफोरिक कथा में इसका मतलब है कि उस कुंडलिनी को धारण करने वाला योगी अपने अगले जन्म में अपने अंतिम लक्ष्य की पूर्ति के लिए हिमालय में योगसाधना करने चला जाता है। वहाँ इंद्र अपनी गद्दी खो जाने के डर से कामदेव को शिव की तपस्या भंग करने के लिए भेजता है। शिव उसे अपनी दृष्टि से जला देते हैं। यहाँ शिव, योगी की सुप्त अंतरात्मा हैं। कामदेव दुनिया की रंगरलियों का रूपक है। यदि योगी की कुंडलिनी उसकी आत्मा से मिलन को उत्सुक हो, तो दुनिया की रंगरलियां आत्मा का अहित नहीँ कर सकतीं, बल्कि खुद ही क्षीण हो जाती हैं। पार्वती के माता-पिता प्रारंभ में पार्वती को शिव से विवाह से रोकते हैं। दरअसल मन-बुद्धि ही पार्वती के माता पिता के प्रतीक हैं। कुंडलिनी की उत्पत्ति उन्हीं से होती है। वे कुंडलिनी से दुनियादारी की उपलब्धियों की ही अपेक्षा रखते हैं, उसे ईश्वर की प्राप्ति के लिए तप आदि प्रयास नहीं करने देना चाहते। शिव भी पार्वती को हतोत्साहित करने के लिए उसे घटिया भेष में मिलकर शिव की बुराइयां सुनाते हैं। दरअसल वह अज्ञान से ढकी प्रारंभिक योगी की आत्मा ही है जो भगवान के बारे में भ्रम पैदा करती रहती है। पर पार्वती तप में लगी रहती है। अंत में शिव प्रसन्न होकर उससे विवाह कर लेते हैं, मतलब कुंडलिनी जागरण हो जाता है। फिर पार्वती कैलाश को चली जाती है, मतलब कुंडलिनी सहस्रार में बस जाती है। उसके कार्तिकेय बेटा पैदा होता है। वह दिव्य सेना का अधिपति है। उसके बेटा गणेश भी जन्म लेता है, जो समस्याओं से बचाता है, और विघ्नों को हरता है। वास्तव में ये सभी काम जागृत कुंडलिनी के ही हैं। दिव्य सेना यहाँ शरीर की इन्द्रियों की प्रतीक है। शिवपुराण की मिथक कथा में शिव को भूत की तरह दिखाया गया है, जिसके प्रति पार्वती आकर्षित होती है। उसके माँ बाप उसे रोकते हैं। दरअसल अज्ञान से ढकी आत्मा ही शिव है, जो बाहर से अंधेरे भूत की तरह लगती है। पर असल में अंदर से वह प्रकाशरूप ही होती है। अहंकार और बुद्धि ही पार्वती रूपी कुण्डलिनी के माँ-बाप हैं। ये उसे शिव की ओर जाने से रोकते हैं।कालिदास के कुमारसम्भव के अनुसार पार्वती शिव को गुफा के वीराने से गृहस्थ जीवन की मुख्य धारा में लाना चाहती है। कुण्डलिनी भी इसी तरह से अज्ञाननिद्रा में डूबी आत्मा को जगाना चाहती है। साथ में लिखा है कि कामदेव के भस्म होने से सृष्टि व्यवस्था थम सी गई थी। फिर पार्वती ने शिव से विवाह किया और उनसे कामदेव को पुनर्जीवित करवाया। फिर सृष्टि की प्रक्रिया पुनः प्रारंभ हो

गई। जब तक तीव्र कुंडलिनी योगसाधना चली होती है, तब तक योगी दुनियादारी से दूरी सी बना कर रखता है। कुण्डलिनी जागरण के बाद उसका मन पुनः दुनिया में रम जाने का करता है, यद्यपि ज्ञान के साथ। इसे ही कामदेव का पुनर्जन्म कहा गया है। देवीभागवत पुराण के अनुसार, पर्वत राज हिमालय और उसकी पत्नी मैना भगवती आदि पराशक्ति को प्रसन्न करती है। वही पार्वती के रूप में उनकी बेटी बन जाती है। वास्तव में अज्ञान से ढकी आत्मा ही पर्वत राज हिमालय है, और बुद्धि मैना है। जब दोनों अच्छे सांसारिक कर्मों से व मानवता से शक्ति को प्रसन्न करते हैं तो वह कुंडलिनी के रूप में उनके शरीर में स्थायी रूप से बस जाती है। पार्वती अपने लास्य नृत्य से शिव को शांत करती हैं, जब वे विनाशकारी तांडव नृत्य करते हैं। असल में अज्ञान से भरी हुई जीवात्मा अशांत व भटकी हुई होती है। वह बहुत से गलत काम करती है। कुंडलिनी ही उसे प्रकाश प्रदान करके सन्मार्ग दिखाती है।

शाक्त के अनुसार, शिव पार्वती के घर पर निवास करते हैं। यहाँ पार्वती को मुख्य और शिव को गौण माना गया है। उनके आपसी विवाद से शिव नाराज होकर घर छोड़कर जाने लगते हैं। तब पार्वती दशमहाविद्याओं को उतपन्न करके उनसे शिव के भागने का हरेक द्वार बंद करवाती है, और शिव को जाने से रोकती है। दरअसल सहस्रार के सिवाय विभिन्न चक्र विशेषकर मूलाधार कुंडलिनी का घर है। वहाँ उसका प्रभुत्व रहता है। वहाँ जीवात्मा ज्यादा सहज नहीं रहता। किसी कारणवश कुंडलिनी के शिथिल पड़ने से वह वहाँ से भागने लगता है। फिर कुण्डलिनी पंचमकारों और उनसे उत्पन्न पाँच वीभत्स भावों का आश्रय लेती है। इससे वह बहुत मजबूत होकर जीवात्मा को जाने से रोकती है। क्योंकि जहाँ कुंडलिनी है, वहाँ जीवात्मा है। उसके भागने के लिए कहे गए विभिन्न मार्ग कुंडलिनी चक्र ही हैं। कई स्थानों पर कुंडलिनी चक्रों की संख्या दस भी बताई गई है।एक मिथक के अनुसार, पार्वती नहा रही होती है। उसने अपने बेटे गणेश को दरवाजे पर पहरेदार के बतौर रखा होता है। गणेश शिव को भी अंदर नहीँ जाने देते। शिव नाराज होकर उसका सिर धड़ से अलग कर देते हैं। इससे पार्वती शिव से बहुत नाराज होती है। फिर उसे प्रसन्न करने के लिए शिव गणेश को हाथी का सिर लगाते हैं। दरअसल, कुंडलिनी चाहती है कि शरीर में उसका सबसे अधिक प्रभुत्व रहे। गणेश इन्द्रियों का नायक है। वह दुनिया की फालतू चीजों

को कुंडलिनी का प्रभुत्व नष्ट करने से रोकता है। वह बाहर से आए भगवानों को भी ऐसा करने से रोकता है। इससे बाहरी धार्मिक संगठन नाराज होकर उसे सजा देते हैं। पर उन्हें कुण्डलिनी की शक्ति के आगे झुककर उसे छोड़ना पड़ता है। यद्यपि वह दुनिया के द्वारा की गई उपेक्षा से काफी क्षीण हो जाता है। शाक्त पंथ में यह भी आता है कि शक्ति के बिना शिव एक शव है। यह सत्य ही है क्योंकि कुंडलिनी के संयोग के बिना जीवात्मा अचेतन और अंधकार से भरा हुआ होता है। जब सहस्रार में उसका कुंडलिनी से विवाह होता है, तभी वह शिव बनता है। उपरोक्त सभी तथ्यों से जाहिर है कि कुंडलिनी योग ही शिव व पार्वती से जुड़ी मिथक कथाओं के मूल में है।

कुंडलिनी जागरण के लिए ही सृष्टिरचना होती है; हिंदु पुराणों में शिशु विकास को ही ब्रह्माण्ड विकास के रूप में दिखाया गया है

मित्रो, पुराणों में सृष्टि रचना विशेष ढंग से बताई गई है। कहीं आकाश के जल में अंडे का फूटना, कहीं पर आधाररहित जलराशि में कमल का प्रकट होना और उस पर एक देवता का अकस्मात प्रकट होना आदि। कहीं आता है कि सीधे ही प्रकृति से महत्तत्व, उससे अहंकार, उससे तन्मात्रा, उससे इंद्रियां और उससे सारी स्थूल सृष्टि पैदा हुई। जब मैं छोटा था, तब अपने दादाजी (जो एक प्रसिद्ध हिंदू पुरोहित और एक घरेलू पुराण वक्ता थे) से पूछा करता था कि अचानक खुले आसमान में बिना आधारभूत संरचना के ये सारी चीजें कैसे प्रकट हो गईं। वे परंपरावादी और रहस्यवादी दार्शनिक के अंदाज में कहते थे, "ऐसे ही होता है। हो गया तो हो गया।" वे ज्यादा बारीकी में नहीं जाते थे। पर अब कुंडलिनी योग की मदद से मैं इस शास्त्रीय उक्ति को ही सभी रहस्यों का मूल समझ रहा हूँ, "यत्पिण्डे तत्ब्रम्हांडे"। इसका मतलब है कि जो कुछ इस शरीर में है, वही सब कुछ ब्रम्हांड में भी है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। इस उक्ति को पुस्तक"शरीरविज्ञान दर्शन" में वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया गया है। इसलिए प्राचीन दूरदर्शी ऋषियों ने शरीर का वर्णन करके ब्रम्हांड को समझाया है। वे गजब के शरीर वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक थे। दरअसल, एक आदमी कभी भी अपने मन या मस्तिष्क के अलावा कुछ नहीं जान सकता है, क्योंकि वह जो कुछ भी वर्णन करता है, वह उसके मस्तिष्क के अंदर है, बाहर नहीं।

सृष्टि रचना पुराणों में शरीर रचना से समझाई गई है

कई जगह आता है कि शेषशायी विष्णु की नाभि से कमल पैदा हुआ जिस पर ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उसी के मन ने सृष्टि को रचा। माँ को आप विष्णु मान सकते हो। उसका शरीर एक शेषनाग की तरह ही केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के रूप में है, जो मेरुदंड में स्थित है। वह नाग हमेशा ही सेरेब्रोस्पाइनल फ्लुइड रूपक समुद्र में डूबा रहता है। उस

नाग में जो कुंडलिनी या माँ के मन की संवेदनाएं चलती हैं, वे ही भगवान विष्णु का स्वरूप है, क्योंकि शक्ति और शक्तिमान भगवान में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं। गर्भावस्था के दौरान जो नाभि क्षेत्र में माँ का पेट बाहर को उभरा होता है, वही भगवान विष्णु की नाभि से कमल का प्रकट होना है। विकसित गर्भाशय को भी माँ के शरीर की नसें-नाड़ियाँ माँ के नाभि क्षेत्र के आसपास से ही प्रविष्ट होती हैं। खिले हुए कमल की पंखुड़ियों की तरह ही गर्भाशय में प्लेसेंटोमस और कोटीलीडनस उन नसों के रूप में स्थित कमल की डंडी से जुड़े होते हैं। वे संरचनाएं फिर इसी तरह शिशु की नाभि से कमल की डंडी जैसी नेवल कोर्ड से जुड़ी होती हैं। ये संरचनाएं शिशु को पोषण उपलब्ध कराती हैं। यह शिशु ही ब्रह्मा है, जो उस खिले कमल पर विकसित होता है। शिशु का साम्यगुण रूप ही वह मूल प्रकृति है, जिसमें गुणों का क्षोभ नहीं है। पहले मैं समझा करता था कि साम्यावस्था का मतलब है कि सभी गुण (प्रकृति का आधारभूत घटक) एक-दूसरे के बराबर हैं। आज भी बहुत से लोग ऐसा समझते हैं। पर ऐसा नहीं है।अगर ऐसा होता तो मूल रूप में सभी जीव एक जैसे होते, पर वे प्रलय या मृत्यु के बाद भी अपनी अलग पहचान बना कर रखते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आत्मा के प्रकाश को ढकने वाले तमोगुण की मात्रा सबमें अलग होती है। इससे अन्य गुणों की मात्रा भी खुद ही अलग होती है। यदि तमोगुण ज्यादा है, तो उसी अनुपात में सतोगुण कम हो जाता है, क्योंकि ये एक-दूसरे के विरोधी हैं। दरअसल उसमें सभी गुण साम्यावस्था में अर्थात समान अवस्था में होते हैं। सभी गुणों का समान अवस्था में होने का या उनमें क्षोभ या लहरों के न होने का मतलब है कि सत्त्वगुण (प्रकाश व ज्ञान का प्रतीक) भी घटने-बढ़ने के बजाय एकसमान रहता है, रजोगुण (गति, बदलाव व ऊर्जा का प्रतीक) भी एकसमान रहता है, और तमोगुण (अंधकार व अज्ञान का प्रतीक) भी। इससे वह किसी विशेष गुण की तरफ लालायित नहीं होता। इसीलिए शिशु सबकुछ अनुभव करते हुए भी उदासीन सा रहता है। वह निर्गुण नहीं होता। क्योंकि गुणों में क्षोभ तभी पैदा हो सकता है, यदि गुण पहले से विद्यमान हों। निर्गुण या गुणातीत तो केवल भगवान ही होता है। इसलिए उसमें कभी गुण-क्षोभ सम्भव नहीं हो सकता है। इसीलिए ईश्वर हमेशा ही परिवर्तनरहित हैं। ईश्वर निर्गुण इसीलिए होता है, क्योंकि उसमें आत्म-अज्ञान से उत्पन्न तमोगुण नहीं होता। सभी गुण तमोगुण के आश्रित होते हैं। इसी वजह से तो पंचमकारी या वामपंथी तांत्रिक

दुनियादारी और अध्यात्म दोनों में अव्वल लगते हैं। फिर शिशु के थोड़ा बड़ा होने पर चित्त या मस्तिष्क में वृत्तियों या संवेदनाओं के बढ़ने से गुणों में, विशेषकर सतोगुण में क्षोभ पैदा होता है, और वह प्रकाश की ओर आकर्षित होने लगता है। इससे सतोगुण रूप महत्तत्व अर्थात बुद्धि उत्पन्न होती है। उसे लगने लगता है कि उसकी सत्ता के लिए उसका रोना और दूध पीना कितना जरूरी है। उससे शिशु को अपने विशेष और सबसे अलग होने का अहसास होता है, जिसे अहंकार कहते हैं। इसप्रकार अहंकार की उत्पत्ति हो जाती है। उससे तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। तन्मात्रा पंचमहाभूतों का सूक्ष्म रूप या अनुभव मात्र होती हैं, जिन्हें हम मस्तिष्क में अनुभव करते हैं। जैसे पृथ्वी की तन्मात्रा गंध, जल की रस, वायु की स्पर्श, अग्नि की रूप और आकाश की शब्द होती है। वह दूध के रस के स्वाद को पहचानने लगता है, खिलौने की गंध को पहचानता है, अपने किए मूत्र की गर्मी को स्पर्ष करता है, सुंदर-असुंदर रूप में अंतर समझने लगता है, घुंघरू या खिलौने की आवाज की ओर आकर्षित होता है। फिर शिशु बाहर की तरफ नजर दौड़ाता है कि ये अनुभूतियाँ कहाँ से आईं। उससे इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि वह चक्षु, कान, त्वचा, जीभ, नाक आदि इन्द्रियों की सहायता से ही बाहर को महसूस करता है। इसीके साथ मन रूप इन्द्रिय भी विकसित होती है, क्योंकि वह इसी से ऐसा सब सोचता है। इन्द्रियों से उपरोक्त पंचमहाभूतों की उत्पत्ति होती है, क्योंकि वह इन्द्रियों से ही उनको खोजता है और उन्हें अनुभव करता है। उसे पता चलता है कि दूध, खिलौना, घुंघरू आदि भौतिक पदार्थ भी दुनिया में हैं, जिन्हें वह इन्द्रियों से महसूस करता है। फिर आगे-2 जैसा-2 बच्चा सीखता रहता है, वैसी-2 सृष्टिरचना की उत्पत्ति आगे बढ़ती रहती है। इस तरह से एक आदमी के अंदर ही पूरी सृष्टि का विस्तार हो जाता है।

कुण्डलिनी जागरण ही सृष्टि विकास की सीमा है

सृष्टि रचना का विस्तार आदमी कुंडलिनी जागरण के लिए ही करता है। यह तथ्य इस बात से सिद्ध होता है कि कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी सृष्टि विस्तार से उपरत सा हो जाता है। उसका झुकाव प्रवृत्ति (दुनियादारी) से हटकर निवृत्ति (रिटायरमेंट) की तरफ बढ़ने लगता है। उसकी प्रवृत्ति भी निवृत्ति ही बन जाती है,

क्योंकि फिर उसमें आसक्ति से उत्पन्न क्रेविंग या छटपटाहट नहीं रहती। पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह स्थिति मन की होती है, बाहर से वह पूरी तरह से दुनियादारी के कामों में उलझा हो सकता है। कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी को लगता है कि उसने पाने योग्य सब कुछ पा लिया है, और करने योग्य सबकुछ कर लिया है।

शिव पुराण के अनुसार सृष्टि रचना शिव के वीर्य से हुई

शिवपुराण में आता है कि प्रकृति रूपी योनि में शिव के वीर्यस्थापन से एक अंडे की उत्पत्ति हुई। वह अंडा 1000 सालों तक जल में पड़ा रहा। फिर वह बीच में से फटा। उसका ऊपर का भाग सृष्टि का कपोल बना। उससे ऊपर के श्रेष्ठ लोक बने। नीचे वाले भाग से निम्न लोक बने।

दरअसल शिव यहाँ पिता है, और प्रकृति या पार्वती माता है। दोनों के वीर्य और रज के मिलन से गर्भाशय में अंडा बना। वह गर्भाशय के पोषक जल में लंबे समय तक पड़ा रहा और विकसित होता रहा। फिर वह फटा, अर्थात मनुष्याकृति में उससे अंगों का विभाजन होने लगा। उसमें ऊपर वाला भाग सिर या कपोल की तरह स्पष्ट नजर आया। उसमें सहस्रार चक्र, आज्ञा चक्र और विशुद्धि चक्र के रूप में ऊपर वाले लोक बने। नीचे के भाग में अन्य चक्रों के रूप में नीचे वाले लोक बने।

कुंडलिनी जागरण ही सृष्टि विकास का चरम बिंदु है, फिर ब्रह्मांड के विकास का क्रम बंद हो जाता है, और स्थिरता की कुछ अवधि के बाद, प्रलय की प्रक्रिया शुरू हो जाती है

दोस्तों, मैंने पिछली पोस्ट में लिखा था कि सृष्टि का विकास केवल कुंडलिनी विकास के लिए है, और कुंडलिनी जागरण के साथ, सृष्टि का विकास पूरा हो जाता है, और उसके बाद रुक जाता है। आज हम चर्चा करेंगे कि उसके बाद क्या होता है। दरअसल, प्रलय की घटना हमारे शरीर के अंदर ही होती है, बाहर नहीं।

हिंदू पुराणों में प्रलय का वर्णन

हिंदू पुराणों के अनुसार, चार युग बीत जाने पर प्रलय होता है। पहला युग है सतयुग, दूसरा युग है द्वापर, तीसरा है त्रेता और अंतिम युग है कलियुग। इन युगों में मानव का क्रमिक पतन हो रहा है। सतयुग को सर्वश्रेष्ठ और कलियुग को सबसे बुरा बताया गया है। जिस क्रम से संसार का निर्माण होता है, उसी क्रम में प्रलय भी होता है। पंचतत्व इंद्रिय अंगों में विलीन हो जाते हैं। इंद्रियाँ तन्मात्राओं या सूक्ष्म अनुभवों में विलीन हो जाती हैं। पंचतन्मात्राएँ अहंकार में विलीन हो जाती हैं। अहंकार महात्त्व या बुद्धि में विलीन हो जाता है। अंत में, महातत्व प्रकृति में विलीन हो जाता है। आपदा के अंत में, प्रकृति भी भगवान में विलीन हो जाती है।

चार युग मानव जीवन के चार चरणों और चार आश्रमों के रूप में हैं

मनुष्य के बचपन को सतयुग कहा जा सकता है। इसमें मनुष्य सभी मानसिक और शारीरिक विकारों से मुक्त होता है। वह देवता के समान सत्यस्वरूप होता है। फिर किशोरावस्था आती है। इसे द्वापर नाम दिया जा सकता है। इसमें मन में कुछ

विकार उत्पन्न होने लगता है। तीसरा चरण परिपक्वता आयु है, जिसमें एक व्यक्ति दुनियादारी की उलझनों से बहुत उदास हो जाता है। अंतिम चरण बुढ़ापे का है। यह कलियुग की तरह है, जिसमें मन और शरीर की विकृति के कारण अंधकार व्याप्त होता है। इसी प्रकार मानव जीवन के चार आश्रम या निवास भी चार युगों के रूप में हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम को सतयुग कहा जा सकता है, गृहस्थ का निवास द्वापरयुग है, वानप्रस्थ त्रेतायुग है और संन्यास आश्रम कलियुग है। वास्तव में होलोकॉस्ट या प्रलय को देखकर इन अवस्थाओं का बाहर से मिलान किया जा रहा है। वैसे तो शरीर की किसी भी अवस्था में, कोई भी व्यक्ति मन के किसी भी उच्च स्तर पर हो सकता है।

मानव मृत्यु को ही प्रलय के रूप में दर्शाया गया है

जैसा कि हमने पिछली पोस्ट में स्पष्ट किया था कि मनुष्य अपने मन के बाहर की दुनिया को कभी नहीं जान सकता। उसकी दुनिया उसके दिमाग तक सीमित है। इसका मतलब यह है कि तब सांसारिक निर्माण और प्रलय भी मन में हैं। इस मानसिक संसार का वर्णन पुराणों में मिलता है। हम धोखे में पड़ जाते हैं और इसे भौतिक दुनिया में व बाहर समझ लेते हैं। कुंडलिनी जागरण या मानसिक परिपक्वता के बाद मनुष्य का लगाव बाहरी दुनिया में नहीं होता है। वह अद्‌वैत भाव और वैराग्य के साथ रहता है। हम इसे ब्रह्मांड के पूर्ण विकास के बाद इसका स्थायित्व कह सकते हैं। फिर उसके जीवन के अंतिम दिनों में, प्रलय की प्रक्रिया शुरू होती है। कमजोरी के कारण, वह दुनियादारी का काम छोड़ देता है और अपने शरीर के रखरखाव में व्यस्त रहता है। एक तरह से हम कह सकते हैं कि पंचमहाभूत या पाँच तत्व इंद्रियों में विलीन हो जाते हैं। फिर समय के साथ उसकी इंद्रियाँ भी कमजोर होने लगती हैं। कमजोरी के कारण उसका ध्यान इंद्रियों से आंतरिक मन की ओर जाता है। वह अपने हाथ से पानी नहीं पी सकता। दूसरे उसे मुँह में पानी भरकर पिलाते हैं। वह पानी के रस को महसूस करता है। आसपास के परिचारक उसके मुंह में खाना डालकर उसे खाना खिलाते हैं। वह भोजन का स्वाद और गंध महसूस करता है। परिजन उसे अपने हाथों से नहलाते हैं। उसे पानी का स्पर्श महसूस होता है। अन्य लोग उसे विभिन्न

चित्र आदि दिखाते हैं। दूसरे उसे कथा कीर्तन या ईश्वरीय कहानियाँ सुनाते हैं। वह उनकी मीठी और ज्ञान से भरी आवाज़ को महसूस करके आनन्दित होता है। एक तरह से, इंद्रियाँ पंचतन्मात्राओं या पाँच सूक्ष्म आंतरिक अनुभवों में विलीन हो जाती हैं। यहां तक कि बढ़ती कमजोरी के साथ, आदमी को पंचतन्मात्राओं का अनुभव करने में भी कठिनाई होती है। तब उसके प्यारे भाई उसे नाम से बुलाते हैं। इससे उसके अंदर थोड़ी ऊर्जा का प्रवाह होता है, और वह खुद का आनंद लेने लगता है। हम कह सकते हैं कि पंचतन्मात्राएँ अहंकार में विलीन हो गईं। कमजोरी के और बढ़ने के साथ ही उसके अंदर अहंकार का भाव भी कम होने लगता है। नाम से पुकारे जाने पर भी वह फुर्ती हासिल नहीं करता। अपनी बुद्धि के साथ, वह अंदर ही अंदर अपनी स्थिति के बारे में विश्लेषण करना शुरू कर देता है, क्या इसका कारण है, क्या उपाय और क्या भविष्य का परिणाम है। एक तरह से अहंकार महत्ततत्त्व या बुद्धि में विलीन हो जाता है। उसके बाद बुद्धि में भी सोचने की ऊर्जा नहीं रहती है। मनुष्य निर्जीव की तरह हो जाता है। उस अवस्था में वह या तो कोमा में चला जाता है या मर जाता है। हम इसे महत्ततत्त्व के प्रकृति में विलय के रूप में कहेंगे। जैसा कि पिछली पोस्ट में बताया गया है, उस स्तर पर सभी गुण संतुलन में आते हैं। न वे बढ़ते हैं, न घटते हैं। वे वही रहते हैं। वास्तव में, यह विचारशील मस्तिष्क है जो प्रकृति के गुणों को बढ़ाने और घटाने के लिए लहरें प्रदान करता है। यह एक साधारण बात है कि जब मस्तिष्क ही मृत हो गया है, तो गुणों को विचारों का झटका कौन देगा। अज्ञानी लोग मूल प्रकृति जितना ही दूर जा पाते हैं। इस प्रकार के लोग बार-बार जन्म और मृत्यु के रूप में आगे-पीछे आते रहते हैं। शास्त्रों के अनुसार प्रबुद्ध एक कदम आगे बढ़ सकता है। उसके मामले में प्रकृति पुरुष में विलीन हो जाती है। पुरुष पूर्ण और प्रकाशस्वरूप है। उसमें गुण नहीं होते। वह निर्गुण है। वहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता।

कुंडलिनी ही शिव को भीतर से सत्त्वगुणी बनाती है, बेशक वे बाहर से तमोगुणी प्रतीत होते हों

दोस्तो, भगवान शिव के बारे में सुना जाता है कि वे तमोगुणी हैं। तमोगुण मतलब अंधेरे वाला गुण। शिव भूतों के साथ श्मशान में रमण करते हैं। अपने ऊपर उन्होंने चिता की भस्म को मला होता है। साथ में यह भी कहा जाता है कि भगवान शिव परम सतोगुण स्वरूप हैं। सतोगुण मतलब प्रकाश वाला गुण। इस तरह दोनों विरोधी गुण शिव के अंदर दिखाए जाते हैं। फिर इसको जस्टिफाई करने के लिए कहा जाता है कि शिव बाहर से तमोगुणी हैं, पर भीतर से सतोगुणी हैं। आज हम इसे तांत्रिक कुंडलिनी योग के माध्यम से स्पष्ट करेंगे।

कुंडलिनी ही शिव के सत्त्वगुण का मूल स्रोत है

दरअसल शिव तन्त्र के अधिष्ठाता देव हैं। उन्हें हम सृष्टि के पहले तांत्रिक भी कह सकते हैं। यदि हम तांत्रिक योगी के आचरण का बारीकी से अध्ययन करें, तो शिव के संबंध में उठ रही शंका भी निर्मूल हो जाएगी। वामपंथी तांत्रिक को ही आमतौर पर असली तांत्रिक माना जाता है। वे पाँच मकारों का सेवन भी करते हैं। बेशक शिव पंचमकारी नहीँ हैं, पर तमोगुण तो उनके साथ वैसे ही रहता है, जैसे पंचमकारी तांत्रिक के साथ। दुनिया के आम आदमी के अंदर इनके सेवन से तमोगुण उत्पन्न होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वे इससे उत्पन्न ऊर्जा को संभाल नहीं पाते और उसके आवेश में गलत काम कर बैठते हैं। वे गलत काम तमोगुण को और अधिक बढ़ा देते हैं। पंचमकार खुद भी गुणों में तेज हलचल पैदा करते हैं, जिससे स्वाभाविक तौर पर

तमोगुण भी उत्पन्न हो जाता है, आम दुनिया के अधिकांश लोग जिसके प्रभाव में आकर निम्न हरकत कर बैठते हैं। परन्तु एक तंत्रयोगी गुणों की हलचल को अपने कुंडलिनी योग की बदौलत हासिल अद्वैत भाव से शांत कर देते हैं। इससे उन्हें बहुत अधिक कुंडलिनी लाभ मिलता है, क्योंकि अद्वैत के साथ कुंडलिनी अक्सर रहती ही है। इससे कुंडलिनी तेजी से चमकने लगती है। तमोगुण से दबी हुई प्राण शक्ति और नाड़ी शक्ति जब कुंडलिनी को लगती है, तो वह जीवंत होने लगती है। यह वैसे ही होता है जैसे अंधेरे में दीपक या चिंगारी अच्छे से चमकते हैं। तभी तो भगवान शिव की तरह श्मशान में किया गया कुंडलिनी योगाभ्यास शीघ्रता से फलीभूत होता है। वैसे भी देखने में आता है कि तमोगुण की अधिकता में मस्तिष्क में विचारों की हलचल रुक सी जाती है। ऐसा किसी भय से, उदासी से, हादसे के नजदीक गुजरने से, तनाव से, अवसाद से, नशे से, तमोगुणी आमिषादि भोजन से, काम आदि से मन व शरीर की थकान से, आदि अनेक कारणों से हो सकता है। ऐसे समय में मस्तिष्क में न्यूरोनल एनर्जी का संग्रहण हो रहा होता है। इसमें जो बीच-बीच में इक्का-दुक्का विचार उठते हैं, वे बहुत शक्तिशाली और चमकीले होते हैं, क्योंकि उन्हें घनीभूत न्यूरोनल एनर्जी मिल रही होती है। योगी लोग इन्हीं विचारों को कुंडलिनी विचार में तब्दील करते रहते हैं। इससे सारी न्यूरोनल एनर्जी कुंडलिनी को मिलती रहती है। बुरे समय में भगवान या कुंडलिनी को याद करने से उत्पन्न महान लाभ के पीछे यही सिद्धांत काम करता है। इस तमोगुण के दौर के बाद सतोगुण व रजोगुण का दौर आता है। यह विचारों के प्रकाश से भरा होता है। दरअसल संग्रहीत न्यूरोनल एनर्जी बाहर निकल रही होती है। इसमें चमकीले विचारों की बाढ़ सी आती है। आम आदमी तो इनमें न्यूरोनल एनर्जी को बर्बाद कर देता है, पर योगी उन विचारों को कुंडलिनी में तब्दील करके सारी एनर्जी कुंडलिनी को दे रहा होता है। योगी ऐसा करने के लिए अक्सर किसी अद्वैत शास्त्र की मदद लेता है। अद्वैत शास्त्रों में देवता संबंधी दार्शनिक पुस्तकें होती हैं, जैसे कि पुराण, स्तोत्र आदि। शरीरविज्ञान दर्शन भी एक उत्तम कोटि का आधुनिक अद्वैत शास्त्र है। वह अद्वैतशास्त्र को अपनी वर्तमान गुणों से भरपूर अवस्था के ऊपर पिरोता रहता

है। वह इस सच्चाई को समझता रहता है कि उसके जैसी सभी अवस्थाएँ हर जगह व हर किसी में विद्यमान हैं। इससे शान्ति और आनन्द के साथ कुंडलिनी चमकने लगती है। वह कुंडलिनी, योग के माध्यम से सभी चक्रों पर भ्रमण करते हुए सभी को स्वस्थ और मजबूत करती है। पूरा तन और मन आनन्द व प्रकाश से भर जाता है। इस प्रकार जिन चीजों से आम आदमी के भीतर तमोगुण उत्पन्न होता है, उनसे तन्त्रयोगी के भीतर सतोगुण उत्पन्न हो जाता है। सम्भवतः यही वजह है कि दुनिया वालों को भगवान शिव बाहर से तमोगुणी दिखते हैं, पर असल में वे भीतर से सतोगुणी होते हैं। इससे यिन और यांग का मिलन भी हो जाता है, जिससे ज्ञान पैदा होता है। यिन तमोगुण है, और यांग सतोगुण।

कुंडलिनी के लिए वामपंथी तंत्र के यौगिक पंचमकारों की संभावित अहमियत, जिनसे प्रकृति के तीनों गुण संतुलित रहते हैं

मित्रो, पिछले हफ्ते हमने पंचमकार और उनसे उत्पन्न तमोगुण के बारे में बताया था। पंचमकारों का वर्णन हमने पुरानी पोस्टों में भी किया है। दरअसल पंचमकार वामपंथी तांत्रिक के प्रमुख हथियार हैं, कुंडलिनी का शिकार करने के लिए। ये पांच चीजें हैं, जिनके नाम अक्षर म से शुरु होते हैं। ये हैं, मैथुन, माँस, मद्य, मत्स्य एवं मुद्रा। पांचवा पंचमकार, मुद्रा वास्तव में कुंडलिनी योग ही है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि पंचमकार को लेकर इन भौतिक चीजों या भावनाओं के सांसारिक रूपों के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए। ये केवल तभी पंचमकार बनती हैं, जब ये पूरी तरह से एक योग्य गुरु के मार्गदर्शन में आध्यात्मिक भावना व साधना के साथ होती हैं, और अधिकतम आध्यात्मिक लाभ के लिए न्यूनतम राशि में उपयोग की जाती हैं। ऐसा नहीं करने पर, पंचमकार हानिकारक भी हो सकते हैं। पंचमकार शुरू में द्वंद्व या द्वैत पैदा करते हैं। फिर इसे विभिन्न ध्यान तकनीकों और वेदों-पुराणों या शरीरविज्ञान दर्शन जैसे अद्वैतमयी दर्शन-सिद्धांतों के साथ अद्वैत में परिवर्तित किया जा सकता है। दरअसल, अद्वैत का अपना अलग अस्तित्व नहीं है। यह केवल द्वैत का निषेध है। यह द्वैत है, जिसका अपना अस्तित्व है। इसलिए, हम सांसारिक भागीदारी के माध्यम से केवल द्वैत को ही पैदा कर सकते हैं। हम अद्वैत का उत्पादन सीधे नहीं कर सकते हैं, लेकिन केवल द्वैत के निषेध के माध्यम से ही कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, द्वैत सबसे पहले प्राप्त होने वाली आधार वस्तु है। यदि हमारे पास द्वैत नहीं है, तो हम नकारात्मक शब्द 'अ' को उस पर कैसे लागू करेंगे। अद्वैत के संबंध में व्यापक गलतफहमी दिखाई देती है। हम द्वैत की पूर्ण उपेक्षा करते हुए अद्वैतमयी नहीं बने रह सकते हैं। ये दोनों भावनाएँ साथ-साथ चलती हैं। हम इस पोस्ट में किसी चीज या जीवन के किसी विशेष तौर-तरीके की वकालत नहीं कर रहे हैं। हम केवल वैज्ञानिक सत्य को पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

दुनिया की नजरों में पंचमकारों को पापपूर्ण माना जाता है

इसका एक कारण यही है, जो पिछली पोस्ट में बताया था। ये तमोगुण पैदा करते हैं। दूसरा कारण यह है कि इसमें हिंसा कर्म छुपा होता है। कर्म का फल तो मिलता ही है। पर वह कर्म के हिसाब से ही मिलता है, मनमर्जी से नहीं। शास्त्रीय मिथक कथाओं के अनुसार अधिकांश लोग समझ लेते हैं कि उससे मृत्युदंड मिल जाएगा अथवा भयानक नरकों में घोर यातनाएं

झेलनी पड़ेंगी, क्योंकि सभी पाप या हिंसाएं बराबर हैं। पर ऐसा नहीं होता। ये सिर्फ आध्यात्मिक उक्ति ही है, भौतिक या व्यावहारिक नहीं। छुटपुट पापकर्म के छुटपुट फल मिलते रहते हैं, जो आम प्रगतिशील या मेहनतकश जनजीवन में वैसे भी देखे जाते हैं, जैसे बीमार होना, पैर फिसलना, मोच आना, हादसे की संभावना बढ़ जाना आदि। पर ज्यादातर मामलों में बचाव हो जाता है। पंचमकारों से मिली शक्ति से आदमी दुनियादारी के कामों में ज्यादा निमग्न रहने लगता है। इससे स्वाभाविक रूप से जो छुटपुट बीमारियाँ, शारीरिक कष्ट व मानसिक कष्ट पैदा होते हैं, वे ही उनके पाप के फल के रूप में होते हैं। उनसे पंचमकारों का पाप नष्ट होता रहता है, और दुनिया के काम धंधे भी तरक्की करते रहते हैं। इसलिए ऊर्जा का अधिक से अधिक सदुपयोग इस तरह से करना चाहिए कि उसके लिए कम से कम पाप करना पड़े। यही कर्म प्रबंधन है। यही योग है।

आजकल पंचमकारों के बिना कुंडलिनी योग करना मुश्किल प्रतीत होता है

मैं एक ब्लॉग में एक युवक के योग अनुभव के बारे में पढ़ रहा था। वह उसके लिए शुद्ध शाकाहारी बन गया था। एक बार संभवतः वह ऐमजॉन के जंगल में अपने किसी जाने पहचाने व्यक्ति के पास रहने लगता है। वहाँ वह मछली से परहेज करके चावल की ढेरी में एक गड्ढा सा बनाकर उसमें डालने के लिए दाल की मांग करता है। उसके परिचित की हंसी रुकने का नाम ही नहीं लेती। इससे शर्मिंदा होकर वह नॉनवेज योगी बन जाता है। इसका मतलब है कि जैसा देश, वैसा भेष। संतुलित आहार लेना योगी के लिए बहुत जरूरी है, क्योंकि योग के लिए ऊर्जा की सख्त जरूरत होती है। योग का दूसरा नाम संतुलन या संतुलित जीवन भी है। इससे जीवन में संतुलित आहार की अहमियत का पता चलता है। हम भोजन के संतुलन को केवल पोषक तत्वों के संतुलन तक ही सीमित समझते हैं। पर वास्तव में यह संतुलन भोजन की प्रकृति के गुणों तक भी एक्सटेंड होना चाहिए। एक आदमी को शाकाहार से सभी जरूरी पोषक तत्त्व मिल सकते हैं, पर उसे प्रकृति का तमोगुण मांसाहार से ही मिलेगा। कोई चाहे तो स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाए बिना सीमित मदिरा का प्रयोग भी आवश्यक तमोगुण की प्राप्ति के लिए कर सकता है। यह सभी को मालूम है और जैसा कि इस ब्लॉग की पिछली पोस्टों में सिद्ध किया गया है कि जीवन के संतुलन के लिए मन के अंदर प्रकृति के तीनों गुण संतुलन में होने चाहिए। ये गुण एक दूसरे के पूरक तभी बनते हैं, जब संतुलन में होते हैं, अन्यथा ये एक दूसरे के अवरोधक बन जाते हैं। ये सभी जानते हैं कि आहार से ही मन बनता है। एक प्रसिद्ध लोकोक्ति भी है कि "जैसा खाए अन्न, वैसा बने मन"। इससे आहार में प्रकृति के तीनों गुणों के संतुलित मात्रा में होने की अहमियत का पता चलता है। तभी कहते हैं कि बिन खाए भजन न हो गोपाला। आयुर्वेद के वात, पित्त और कफ भी

प्रकृति के क्रमशः सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण हैं। इनके संतुलन से स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है। पतंजलि ने यम और नियम में जो अहिंसा शब्द डाला है, उसका मतलब है कि बिना उच्च प्रयोजन के हिंसा न हो। यदि शरीर को पुष्ट व नीरोग रखने के लिए हल्की-फुल्की हिंसा के रूप में हल्का-फुल्का हेल्दी नॉनवेज जैसे कि मछली, अंडा न लिया जाए तो यह भी शरीर के प्रति हिंसा होगी। उससे भी योग का यम और नियम कहाँ सिद्ध हो पाएगा। मानव शरीर के प्रति हिंसा तो सबसे बड़ी हिंसा होती है। पतंजलि बहुत लम्बी सोच रखते थे, इसलिए शाकाहार-मांसाहार के झमेले में पड़ने की बजाय उन्होंने अहिंसा शब्द जोड़ दिया। समझने वालों के लिए यह बहुत है। अब यदि विज्ञान के हिसाब से शरीर की जरूरत को आंका जाए तो एक आदमी को हफ्ते में केवल दो ही दिन और एक दिन में करीब 70-100 ग्राम मांस की जरूरत होती है। इससे ज्यादा हानिकारक हो सकता है। इससे कम से शरीर को हानि पहुंच सकती है। मैंने बहुत से योगी लोग देखे हैं, जिन्हें 15 दिन बाद, कइयों को 1 महीने बाद, तो कइयों को 3 महीने बाद जरूरत महसूस होती है। कईयों को तो छः महीने के अंतराल पर नानवेज की जरूरत महसूस होती है। अब बताइए कि इससे पोषक तत्वों की क्या कमी पूरी होगी। इससे जाहिर है कि उससे आदमी के मन के तमोगुण की कमी पूरी होती है। इससे, अपने अंधकार प्रकार के आंतरिक स्वभाव से उसे भरपूर व ताजगी प्रदान करने वाली नींद भी आती है, जिससे उसके शरीर व मन की अच्छी मुरम्मत हो जाती है, और उससे वह स्वस्थ हो जाता है। शरीर अपनी जरूरत खुद बताता है। इसकी जरूरत होने पर योग में ध्यान कम लगने लगता है, चुस्ती कम हो जाती है, भूख घट जाती है, पाचन प्रणाली गड़बड़ाने लगती है, शरीर में कम्पन पैदा होने लगते हैं। व्यवहार में गुस्सा व चिड़चिड़ापन आ जाता है, अद्वैतभाव बना कर रखना मुश्किल हो जाता है, मन द्वैत के भंवर के अंदर भटकने लगता है, अवसाद जैसा हो जाता है, शरीर रोगी होने लगता है, डर सा लगने लगता है, सेक्स के प्रति रुचि नहीं रहती आदि बहुत से लक्षण पैदा हो जाते हैं। मन में सही तरीके से अद्वैत भाव बनाए रखने के लिए प्रकृति के तीनों गुणों का संतुलन बहुत जरूरी है। फिर यह सबको पता है कि जहां अद्वैत है, वहाँ कुंडलिनी भी है। वास्तव में आहार की कमी से शरीर और मन के हरेक हिस्से में कुछ न कुछ दुष्प्रभाव जरूर पैदा होता है। बहुत से लोग इन्हें नजरन्दाज करते हैं और बहुत से लोगों को इसका आभास ही नहीं होता। नॉनवेज की खुराक पूरी होने से ये सभी खराब लक्षण एकदम से गायब हो जाते हैं। वैसे भी मछली को सर्वश्रेष्ठ आमिष आहार माना गया है, क्योंकि इसमें बहुत से स्वास्थ्यवर्धक गुण हैं, और इसके कोई दुष्प्रभाव भी नहीं हैं। तभी तो इसे पंचमकारों में विशेष रूप से शामिल किया गया है। इसके सेवन से पापकर्म भी बहुत कम होता है। वैज्ञानिक शोध से भी यह बात सामने आई है कि मछली को दर्द नहीं होता। यह उन्हें जालिम कुदरत से बचने के लिए कुदरत का ही दिया तोहफा है। वैसे तो सभी चीजों व भावों में प्रकृति के तीनों गुण विद्यमान होते हैं, पर किसी विशेष चीज में कोई विशेष गुण ज्यादा बलवान होता है। पंचमकारों को ही लें, तो मैथुन व मत्स्य में रजोगुण, मांस व मदिरा में तमोगुण, और मुद्रा में सतोगुण की अधिकता होती है। आजकल के प्रदूषण और

अति भौतिकता के युग में शरीर की ऊर्जा की मांग बहुत ज़्यादा बढ़ गई है। ऐसे में सम्भवतः यौगिक पंचमकार ही मानव जाति का सही दिशानिर्देशन कर सकते हैं।

कुंडलिनी एक पक्षी की तरह है जो खाली और खुले आसमान में उड़ना पसंद करता है

मित्रो, योग या अध्यात्म को उड़ान के साथ संबद्ध करके दिखाया गया है। आध्यात्मिक शास्त्रों में विमानों का वर्णन अनेक स्थानों पर आता है। कई जगहों पर योगियों को आसमान में उड़ते हुए दिखाया गया है। आत्मा को पंछी की उपमा दी गई है। आज हम इस पर वैज्ञानिक चर्चा करेंगे।
आत्मा और आकाश में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है दोनों ही त्रिआयामी हैं। दोनों ही सर्वव्यापी हैं। आत्मजागृति के दिव्य अनुभव के दौरान आदमी अपने को प्रकाशमयी आनंदमयी, सर्वव्यापक, व चेतनापूर्ण आकाश के रूप में अनुभव करता है। इसी तरह, मृतात्मा से साक्षात्कार के समय भी आदमी अपने को आकाश की तरह अनुभव करता है। हालाँकि उसमें प्रकाश, चेतना व आनन्द के गुण बहुत कम होते हैं। इसलिए वह रूप चमकते काजल की तरह प्रतीत होता है। फिर भी वह रूप सर्वव्यापक होता है।

आदमी का मन हमेशा से ही आसमान में उड़ने को ललचाता रहा है

इसका कारण यही है कि आत्मा आकाश जैसे रूप वाली होती है। हर कोई अपने जैसे गुण स्वभाव वाले से मैत्री करना चाहता है। इसीलिए हरेक आदमी आकाश में भ्रमण करना चाहता है। यही कारण है कि वायुयान में बैठकर आनन्द मिलता है। जब मैं विमान में बैठा था, तो मेरे मन में आनंद के साथ कुंडलिनी क्रियाशील हो गई थी। इसी तरह, मैं एकदिन परिवार के साथ पतंग का मजा लेने एक खाली मैदान में चला गया। बच्चे ऊंचे आसमान में पतंग उड़ा रहे थे, और मैं जमीन पर दरी बिछा कर उस पर लेट गया, ताकि बिना गर्दन मोड़े पतंग को लगातार देख पाता। मैं लगभग डेढ़ घंटे तक पतंग को बिना थके देखता रहा। उस दौरान मेरे मन में आनन्द से भरे शांत विचारों के साथ कुंडलिनी क्रियाशील बनी रही। कई बार तो ऐसा लगा कि मैं खुद ही पतंग पर बैठ कर ऊंचे आसमान में उड़े जा रहा हूँ। कई दिन तक वह आनन्द मेरे मन में बना रहा, और साथ में उमंग भी छाई रही। काम-काज में भी अच्छा मन लगा रहा। इसी तरह, पहाड़ों में भी कुंडलिनी आनंद बढ़ जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पहाड़ भी आकाश की तरह थ्री डायमेंशनल हैं, हालाँकि उससे थोड़ा कम हैं। पहाड़ों में भी आदमी हर प्रकार से गति कर सकता है। वह आगे-पीछे भी जा सकता है, और ऊपर नीचे भी चढ़ सकता है।

आत्मारूपी आकाश के उपलब्ध होते ही कुंडलिनी पक्षी उसमें उड़ान भरने लग जाता है

शरीरविज्ञान दर्शन या अन्य अद्वैतशास्त्र से जब मन में आकाश जैसी शून्यता छाने लगती है, तब कुंडलिनी उसमें एक उड़ते हुए पक्षी की तरह अनुभव होने लगती है। साथ में आकाश में उड़ने के जैसा आनन्द तो होता ही है। उस समय आत्मा तो बैकग्राउंड के अंधकारमयी व शून्य आकाश की तरह होती है, केवल कुंडलिनी ही प्रकाशरूप पक्षी की तरह अभिव्यक्त होती है। इसलिए शास्त्रों में कुंडलिनी को आत्मा या पक्षी के रूप में माना गया है। कुंडलिनी आत्मा का संपीडित या लघु रूप है। जैसे साँप कुंडलिनी मार कर छोटा हो जाता है, उसी तरह आत्मा भी। इसीलिए इसे कुंडलिनी कहते हैं। जब कुंडलिनी आत्मा से जुड़कर सर्वव्यापक हो जाती है, तब उसे ही सांप का कुंडलिनी खोलकर अपने असली और विस्तृत रूप में आना कहते हैं। इसी तरह, आकाश से संबंध होने पर भी मन में आकाश जैसी अद्वैतमयी शून्यता खुद ही छाने लगती है। उससे भी वही कुंडलिनी प्रभाव पैदा होता है, जिससे मन उसी तरह आनन्द से भर जाता है। इसीलिए उपरोक्तानुसार, शास्त्रों में योगियों को आसमान में उड़ते हुए दिखाया गया है, तथा विमानों का बहुतायत में वर्णन किया गया है।

कुंडलिनी ही भ्रमित आत्मा का दीपक है

अद्वैत के ध्यान से मन आकाश की तरह शून्य व निश्चल तो बन जाता है, पर उसका आंनद व प्रकाश गायब हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आनन्द व प्रकाश मन के विचारों के साथ होते है। ये विचारों के साथ ही गायब हो जाते हैं। इन्हीं की भरपाई करने के लिए ही एकाकी चित्र रूपी कुंडलिनी मन में क्रियाशील हो जाती है। यह दीपक की तरह काम करती है, और विचारशून्य मन या आत्मा को आनंदपूर्ण प्रकाश से भर देती है। लम्बे समय के कुंडलिनी योग अभ्यास से एक समय ऐसा भी आता है जब आत्मा का अपना खुद का नैसर्गिक प्रकाश पैदा हो जाता है। फिर तो वहाँ कुंडलिनी दीपक की रौशनी भी फीकी पड़ जाती है। पर ऐसा साधना के सबसे ऊंचे व अंतिम स्तर पर ही होता है। इसे ही असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

कुंडलिनी ही आत्मा की भौतिक प्रतिनिधि है

आत्मा तो आकाश की तरह शून्य होती ही, पर उसके विपरीत चेतनापूर्ण होती है, पर दुनियादारी में रहने से उस पर माया या भ्रम का दुष्प्रभाव पड़ता है। इससे उसका चेतन प्रकाश गायब हो जाता है। जब आदमी अद्वैत भावना से आत्मा में लौटने का प्रयास

करता है, तो वहाँ कुंडलिनी प्रकट हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अद्वैत से उत्पन्न निर्विचार अवस्था से मस्तिष्क में न्यूरोनल एनर्जी इकट्ठी हो जाती है, जो आमतौर के विचारों को बनाती है। उस न्यूरोनल एनर्जी को बाहर निकलने का आसान रास्ता कुंडलिनी के रूप में ही नजर आता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उसके लिए मस्तिष्क को निश्चय नहीं करना पड़ता है कि कुंडलिनी चित्र कैसा है, क्या इसके बारे में विचार करना चाहिए, इसको विचारने के क्या परिणाम होंगे आदि। इसकी वजह है, कुंडलिनी चित्र से लम्बे समय से संबंध बना होना। यह संबंध प्रेम आदि के रूप में प्राकृतिक भी हो सकता है, और योग आदि के रूप में बनावटी भी। वही कुंडलिनी चित्र आत्मा को उसके प्रकाश, चेतना आदि के स्वाभाविक गुण प्रदान करता है। उस समय यिन के रूप में आत्मा होती है, और यांग के रूप में कुंडलिनी। हालांकि ऐसा हमें सांसारिक भ्रम के कारण लगता है। असल में तो यिन के रूप में कुंडलिनी और यांग के रूप में आत्मा होती है। इन दोनों का जुड़ाव ही शिवविवाह है। जब यह पूरा हो जाता है, तो यही कुंडलिनी जागरण या आत्मसाक्षात्कार कहलाता है। उस समय कुंडलिनी की चेतना पूरे आत्म-आकाश में छा जाती है, और दोनों पूरी तरह एक-दूसरे में घुले-मिले प्रतीत होते हैं। कुंडलिनी को आत्मा का भौतिक प्रतिनिधि इसीलिए कहा जा रहा है, क्योंकि वह बेशक एक सीमित व एकाकी चित्र के रूप में है, और भौतिक बाध्यताओं से बंधी है, पर उसमें आत्मा के सभी चेतनामयी गुण विद्यमान हैं। वही आत्मा को उसके अपने असली चेतनामयी गुणों की याद दिलाती है। पर ऐसा अभ्यास से होता है। इसीलिए कुंडलिनी को योग, प्रेम आदि से हमेशा बना कर रखा जाता है।

कुंडलिनी विज्ञान ही अधिकांश धार्मिक मान्यताओं की रीढ़ है

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी-मार्ग

मित्रो, कुंडलिनी विज्ञान सभी धर्मों की रीढ़ है। सभी धार्मिक मान्यताएं इस पर आधारित है। आज मैं हिन्दू धर्म की कुछ परंपरागत मान्यताओं का उदाहरण देकर इस सिद्धान्त को स्पष्ट करूंगा। साथ में, कुंडलिनी योग के कुछ व्यावहारिक बिंदुओं पर भी प्रकाश डालने की कोशिश करूंगा। हालांकि ये मान्यताएं तुच्छ लगती हैं, पर ये कुंडलिनी योग का बहुत बड़ा व व्यावहारिक संदेश देती हैं।

दोनों पैरों की ठोकर से कुंडलिनी को केंद्रीकृत करना

इस मान्यता के अनुसार यदि किसी आदमी के पैर की ऐड़ी को पीछे से किसी अन्य आदमी के पैर से ठोकर लग जाए तो दूसरे पैर को भी उसी तरह ठोकर मारनी पड़ती है। उससे दोनों लोगों का शुभ होता है। दरअसल एक तरफ के पैर की ठोकर से कुंडलिनी शरीर के उस तरफ अधिक क्रियाशील हो जाती है, क्योंकि कुंडलिनी संवेदना का पीछा करती है। जब शरीर के दूसरी तरफ के पैर में भी वैसी ही संवेदना पैदा होती है, तब कुंडलिनी दूसरी तरफ जाने लगती है। इससे वह शरीर के केंद्र अर्थात सुषुम्ना नाड़ी में आ जाती है। इससे आदमी संतुलित हो जाता है, जिससे उसका हर प्रकार से शुभ होता है। दूसरे आदमी को भी इस प्रभाव का लाभ मिलता है, क्योंकि जैसा कर्म, वैसा फल। मैंने यह खुद होते देखा है।

एक या ऑड छींक अशुभ, पर दो या ईवन छींकें शुभ मानी जाती हैं

इसके पीछे भी यही कुंडलिनी सिद्धांत काम करता है। एक छींक की संवेदना से दिमाग का एक ही तरफ का हिस्सा क्रियाशील होता है। कल्पना करो कि बायाँ हिस्सा क्रियाशील हुआ। इसका मतलब है कि उस समय आदमी की सोच सीमित, लीनियर या लॉजिकल थी। क्योंकि दिमाग के दोनों हिस्से आपस में लगातार कंम्यूनिकेट करते रहते हैं, इसलिए यह पक्का है कि वह दाएँ हिस्से को सतर्क कर देगा। जब दूसरी छींक आती है, तो उससे दिमाग का दायाँ हिस्सा क्रियाशील हो जाता है। उससे आदमी की सोच असीमित या इलॉजिकल हो जाती है। इससे कुंडलिनी या अवेयरनेस दिमाग के दोनों हिस्सों में घूमकर दिमाग के बीच में केंद्रित हो

जाती है। इसी केंद्रीय रेखा पर सहस्रार और आज्ञा चक्र विद्यमान हैं। इससे पूर्णता, संतुलन और आनन्द का अनुभव होता है।

मस्तिष्क में अंदरूनी विवाह ही अर्धनारीश्वर का रूप या शिवविवाह है

मस्तिष्क का दायाँ और बायाँ भाग बारी-2 से काम करते रहते हैं। ऐसा उनके बीच के स्थाई संपर्क मार्ग से होता है। इस न्यूरोनल या नाड़ी मार्ग को कॉर्प्स कॉलोसम कहते हैं। जिनमें किसी रोग आदि के कारण नहीं होता, वे लगातार मस्तिष्क के एक ही हिस्से से बड़ी देर तक काम करते रहते हैं। उनमें आपसी तालमेल न होने के कारण वे अपने काम ढंग से नहीं कर पाते। सामान्य व्यक्ति में कुछ देर तक बायाँ मस्तिष्क काम करता है। वह तर्कपूर्ण, सीमित, व व्यावहारिक दायरे में रहकर कुशलता से रोजमर्रा के काम करवाता है। थोड़ी देर में ही वह विचारों की चकाचौंध से थक जाता है। फिर शरीर दाएँ मस्तिष्क के नियंत्रण में आ जाता है। उसकी कार्यशैली आकाश की तरह असीमित, तर्कहीन, व खोजी स्वभाव की होती है। क्योंकि इसमें आदमी को सीमित दायरे में बांधने वाले विचारों की चकाचौंध नहीं होती, इसलिए यह अंधकार लिए होता है। इसमें रहकर जैसे ही आदमी की विचारों की पुरानी थकान खत्म होती है, वैसे ही यह हिस्सा बन्द हो जाता है, और बायाँ हिस्सा फिर से चालू हो जाता है। यह सिलसिला लगातार चलता रहता है। कार्य के आधिपत्य को आपस में परिवर्तित करने का समय अंतराल आदमी की सतर्कता और आध्यात्मिक प्रवृत्ति के अनुसार बदलता रह सकता है। अब बात आती है, मस्तिष्क के दोनों हिस्सों को एकसाथ समान रूप से क्रियाशील करने की। यही कुंडलिनी का केंद्रीय रेखा या सुषुम्ना में आना है। इससे कुंडलिनी शक्ति मतलब प्राण शक्ति दोनों हिस्सों में बराबर बंट जाती है, और पूरे मस्तिष्क को क्रियाशील कर देती है। ऐसा ही कुंडलिनी जागरण के समय भी महसूस होता है, जब किसी विशेष क्षेत्र की बजाय पूरा मस्तिष्क समान रूप में चेतन, क्रियाशील और कम्पायमान हो जाता है। इसे हम अर्धनारीश्वर का आंतरिक मिलन या शिवविवाह भी कह सकते हैं। यह भी कह सकते हैं, शरीर के बाएँ भाग का विवाह दाएँ भाग से हो गया है। हिंदु धर्म में अर्धनारीश्वर नामक शिव के बाएं भाग को स्त्री और आधे दाएँ भाग को पुरुष के रूप में दिखाया गया है। कुंडलिनी चित्र बाएँ मस्तिष्क में रहने का ज्यादा प्रयास करता है, इसीलिए कुंडलिनी को स्त्री रूप दिया गया है। आप खुद देखिए, हर किसी के मन में चकाचौंध से भरे विचारों के पूल के अंदर हमेशा डूबे रहने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृत्ति को दाएँ मस्तिष्क के खाली आकाश में जागरूकता को स्थानांतरित करने के नियमित अभ्यास के माध्यम से दूर किया जाना ही लक्ष्य है। कुंडलिनी योग के माध्यम से इसे केंद्र में लाने की कोशिश की जाती है। कुंडलिनी के केन्द्रीभूत होने से ही एक आदमी पूर्ण मानव बनता है। इससे उसमें तार्किक व्यावहारिकता

भी रहती है, और साथ में अतार्किक भावप्रधानता व खोजीपना भी। इसका अर्थ है कि वहाँ अद्वैत उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि अद्वैत के बिना दो विरोधी गुणों का साथ रहना सम्भव ही नहीं है। इसी तरह, सीधे तौर पर शरीरविज्ञान दर्शन या पुराणों से अद्वैत भाव बना कर रखने से मन में कुंडलिनी की स्पष्टता बढ़ जाती है। मन में दो विरोधी गुणों को एकसाथ बना कर रखने के लिए या कुंडलिनी योग से कुंडलिनी को बना कर रखने के लिए बहुत अधिक प्राण ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसीलिए मैंने पिछली पोस्ट में योग के लिए संतुलित आहार व संतुलित जीवन पर बहुत जोर दिया है। शुरु-2 में मैं कुंडलिनी योग करते समय मस्तिष्क में सहस्रार चक्र व आज्ञा चक्र के स्तर पर कुंडलिनी को सिर में चारों ओर ऐसे घुमाता था, जैसे एक किसान गोलाकार खेत में हल चला रहा हो। उससे मेरा पूरा मस्तिष्क क्रियाशील हो जाता था, और आनन्द के साथ कुंडलिनी केन्द्रीभूत हो जाती थी। मैंने यह भी देखा कि एक नाक से जल खींचकर दूसरे नाक से निकालने पर भी कुंडलिनी को केन्द्रीभूत होने में मदद मिलती है। इसे जलनेती कहते हैं। इसके लिए जल गुनगुना गर्म और हल्का नमकीन होना चाहिए, नहीं तो सादा और ठंडा जल नाक की म्यूकस झिल्ली में बहुत चुभता है।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ ही कुंडलिनी जागरण के लिए मूलभूत नाड़ियाँ हैं

कुंडलिनी योग के अभ्यास के दौरान पीठ में तीन नाड़ियों की अनुभूति होती है। नाड़ियाँ वास्तव में सूक्ष्म संवेदना मार्ग हैं, जो केवल अनुभव ही की जा सकती हैं। भौतिक रूप में तो मुझे ये शरीर में नजर आती नहीं। हो सकता है कि ये भौतिक रूप में भी हों। यह एक रिसर्च का विषय है। एक नाड़ी पीठ के बाएं हिस्से से होकर ऊपर चढ़ती है, और बाएँ मस्तिष्क से होते हुए आज्ञा चक्र पर समाप्त हो जाती है। दूसरी नाड़ी भी इसी तरह पीठ के व मस्तिष्क के दाएँ हिस्से से गुजरते हुए आज्ञा चक्र पर ही पूर्ण हो जाती है। एक इसमें इड़ा और दूसरी पिंगला नाड़ी है। इन दोनों के बिल्कुल बीच में और ठीक रीढ़ की हड्डी के बीच में से तीसरी नाड़ी पीठ व मस्तिष्क के बीचोंबीच होती हुई सहस्रार तक जाती है। यह सुषुम्ना नाड़ी है। सामान्य आरेखों के विपरीत, मुझे इड़ा और पिंगला पीठ में अधिक किनारों पर मिलती हैं। यह एक कम अभ्यास का प्रभाव हो सकता है। दरअसल, योग में दार्शनिक सिद्धांतों से ज्यादा भावना या अनुभव मायने रखता है। कुंडलिनी जागरण इसी नाड़ी से चढ़ती हुई कुंडलिनी से होता है। यदि कुंडलिनी इड़ा या पिंगला नाड़ी से होकर भी ऊपर चढ़ रही हो, तब भी उसे रोकना नहीं चाहिए, क्योंकि कुंडलिनी हर हालत में फायदेमंद ही होती है। उसे जबरदस्ती सुषुम्ना में धकेलने का भी प्रयास करना चाहिए, क्योंकि कुंडलिनी जबरदस्ती को ज्यादा पसंद नहीं करती। कुंडलिनी अपने प्रति समर्पण से खुश होती है। जब वह इड़ा या पिंगला से चढ़ रही हो, तब उसके ध्यान के साथ मूलाधार या स्वाधिष्ठान चक्र व आज्ञा चक्र का भी एकसाथ

ध्यान करना चाहिए। इससे वह एकदम सुषुम्ना में आ जाती है, या थोड़ी देर के लिए पीठ के दूसरे किनारे की नाड़ी में चढ़ने के बाद सुषुम्ना में चढ़ने लगती है। इससे कुंडलिनी सहस्रार में प्रकाशित होने लगती है। इसके साथ, शरीर व मन के संतुलन के साथ आनन्द की प्राप्ति भी होती है। कुंडलिनी को सहस्रार से नीचे आज्ञा चक्र को नहीं उतारा जाता, इसीलिए सुषुम्ना नाड़ी का अंत सहस्रार चक्र में चित्रित किया जाता है। वास्तव में कुंडलिनी को सहस्रार में रखना व उधर जागृत करना ही कुंडलिनी योग का सर्वप्रमुख ध्येय है। इसीसे सभी आध्यात्मिक गुण प्रकट होते हैं। सहस्रार चक्र पिंड को ब्रह्मांड से जोड़ता है। यह सबसे अधिक आध्यात्मिक चक्र है, जो एक तरफ आत्मा से जुड़ा होता है, और दूसरी तरफ परमात्मा से। सहस्रार में कुंडलिनी के दबाव को झेलने की बहुत क्षमता होती है। ऐसा लगता है कि कुंडलिनी से सहस्रार की खारिश मिट रही है, और मजा आ रहा है। फिर भी यदि वहां असहनीय दबाव लगे, तो कुंडलिनी को आज्ञा चक्र तक व आगे की नाड़ी से शरीर में नीचे उतार सकते हैं। हालांकि, यह इडा या पिंगला के माध्यम से नीचे लाने की तुलना में अधिक कठिन और गड़बड़ वाला दिखाई देता है। हालाँकि उल्टी जीभ को नरम तालु से छुआ कर रखने से इसमें मदद मिलती है। इसीलिए इड़ा और पिंगला का अंत आज्ञा चक्र में चित्रित किया गया है, पर सुषुम्ना नाड़ी का अंत सहस्रार चक्र में दिखाया गया है। यदि आप मूलाधार और आज्ञा चक्र पर एकसाथ ध्यान लगाओ, तो कुंडलिनी का संचार इड़ा नाड़ी से होता है। यदि आप स्वाधिष्ठान चक्र और आज्ञा चक्र का एकसाथ ध्यान करो, तो कुंडलिनी का संचरण पिंगला नाड़ी से होता है। चित्र में भी ऐसा ही दिखाया गया है। इसका अर्थ है कि आज्ञा चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र, तीनों का एकसाथ ध्यान करने से कुंडलिनी का संचरण सुषुम्ना नाड़ी से ही होगा या वह सीधी ही सहस्रार तक पहुंच जाएगी। ऐसा चित्र में दिखाया भी गया है। आप देख सकते हैं कि सुषुम्ना नाड़ी की भागीदारी के बिना ही कुंडलिनी सहस्रार चक्र तक पहुंच गई है। इड़ा और पिंगला से कुंडलिनी एकसाथ आज्ञा चक्र तक आई। वहाँ से वह बाएँ और दाएँ मस्तिष्क से ऊपर चढ़ कर सहस्रार पर इकट्ठी हो जाती है। ऐसा महसूस भी होता है। दोनों तरफ के मस्तिष्क में दबाव से भरी मोटी लहर ऊपर जाती और सहस्रार में जुड़ती महसूस होती है। तभी चित्र में इन दोनों लघु नाड़ियों को मोटी पट्टी के रूप में दिखाया गया है। जब कुंडलिनी को आगे की नाड़ी से नीचे उतारना होता है, तब इन्हीं पट्टीनुमा नाड़ियों से इसे सहस्रार से आज्ञा चक्र तक उतारा जाता है, और वहाँ से नीचे। आपने भी देखा होगा, जब आदमी मानसिक रूप से थका होता है, तो वह अपने माथे को मलता है, और अपनी आँखों को भींचता है। इससे उसे माथे के दोनों किनारों से गशिंग या उफनते हुए द्रव की पट्टी महसूस होती है। उससे वह मानसिक रूप से पुनः तरोताजा हो जाता है। ये इन्हीं नाड़ियों की क्रियाशीलता से अनुभव होता है। आप इसे अभी भी करके अनुभव कर सकते हो। वास्तविक व त्वरित दैनिक अभ्यास के दौरान कोई नाड़ी महसूस नहीं होती। केवल ये चार चक्र महसूस होते हैं, और कुंडलिनी सहस्रार चक्र में महसूस होती है। इड़ा नाड़ी अर्धनारीश्वर देव के स्त्री भाग का प्रतिनिधित्व करती है। पिंगला नाड़ी उनके आधे और पुरुष भाग का प्रतिनिधित्व

करती है। सुषुम्ना नाड़ी दोनों भागों के मिलन या विवाह का द्योतक है। मूलाधार से मस्तिष्क तक सबसे ज्यादा ऊर्जा का वहन सुषुम्ना नाड़ी करती है। तभी तो तांत्रिक योग के समय सहस्रार का ध्यान करने से मूलाधार एकदम से संकुचित और शिथिल हो जाता है। दैनिक लोकव्यवहार में आपने भी महसूस किया होगा कि जब मस्तिष्क किसी और ही काम में व्यस्त हो जाता है, तो कामोत्तेजना एकदम से शांत हो जाती है। बेशक वह ऊर्जा सुषुम्ना से गुजरते हुए नहीं दिखती, पर सहस्रार तक उसके गुजरने का रास्ता सुषुम्ना से होकर ही है। सुषुम्ना से ऊर्जा का प्रवाह तो यौगिक साँसों के विशेष और लम्बे अभ्यास से अनुभव होता है। वह भी केवल कुछ क्षणों तक ही अनुभव होता है, जैसा आसमानी बिजली गिरने का अनुभव क्षणिक होता है। पर इसको अनुभव करने की आवश्यकता भी नहीं। महत्वपूर्ण तो कुंडलिनी जागरण है, जो इसके अनुभव के बिना ही होता है। यदि आप सीधे ही फल तक पहुंच पा रहे हो, तो पेड़ को देखने की क्या जरूरत है। सम्भवतः इसी से यह कहावत बनी हो, “आम खाओ, पेड़ गिनने से क्या लाभ”। इड़ा और पिंगला से भी ऊर्जा आज्ञा चक्र तक ऊपर चढ़ती है, पर सुषुम्ना जितनी नहीं।

कुंडलिनी योग का निरूपण करती हुई श्रीमद्भागवत गीता

श्रीकृष्णेन गीता
मित्रों, एक मित्र ने मुझे कुछ दिनों पहले व्हाट्सएप पर ऑनलाइन गीता भेजना शुरु किया। एक श्लोक सुबह और एक शाम को प्रतिदिन भेजता है। उसमें मुझे बहुत सी सामग्री मिली जो कुंडलिनी और अद्वैत से सम्बंधित थी। कुछ ऐसे बिंदु भी मिले जिनके बारे में समाज में भ्रम की स्थिति भी प्रतीत होती है। वैसे तो गीता के संस्कार मुझे बचपन से ही मिले हैं। मेरे दादाजी का नाम गीता से शुरु होता था, और वे गीता के बहुत दीवाने थे। मैंने भी गीता के ऊपर विस्तृत टीका पढ़ी थी। पर पढ़ने और कढ़ने में बहुत अंतर होता है।

गीता के चौथे अध्याय के 29वें श्लोक में तांत्रिक कुंडलिनी योग का वर्णन

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥४-२९॥

इस श्लोक की पहली पंक्ति का शाब्दिक अर्थ है कि कुछ योगी अपान वायु में प्राणवायु का हवन करते हैं। प्राण वायु शरीर में छाती से ऊपर व्याप्त होता है। अपान वायु स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र के क्षेत्रों में व्याप्त होता है। जब आज्ञा चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र पर एकसाथ ध्यान किया जाता है, तब स्वाधिष्ठान चक्र पर प्राण और अपान इकट्ठे हो जाते हैं। इससे स्वाधिष्ठान चक्र पर कुंडलिनी चमकने लगती है। योग में स्वाधिष्ठान की जगह पर मणिपुर चक्र को भी रखते हैं। फिर प्राण और अपान का हवन समान वायु में होता है। फिर भी इसे अपान में प्राण का हवन ही कहते हैं, क्योंकि अपान वहाँ से प्राण की अपेक्षा ज्यादा नजदीक होता है। कई बार एक ही चक्र का, सहस्रार का या आज्ञा चक्र का ध्यान किया जाता है। फिर हल्का सा ध्यान स्वाधिष्ठान चक्र का या मूलाधार चक्र का किया जाता है। इससे ऊपर का प्राण नीचे आ जाता है, और वह अपान बन जाता है। एक प्रकार से अपान प्राण को खा जाता है, वैसे ही जैसे अग्नि समिधा या हविष्य को खा जाती है। इसीलिए यहाँ अपान में प्राण का हवन लिखा है। राजयोगी प्रकार के लोग सांसारिक आधार को अच्छी तरह से प्राप्त करने के लिए इस भेंट को अधिक चढ़ाते हैं, क्योंकि उनके वैचारिक स्वभाव के कारण उनके शीर्ष चक्रों में बहुत ऊर्जा होती है।
इस श्लोक की दूसरी पंक्ति का शाब्दिक अर्थ है कि कुछ दूसरे लोग प्राण में अपान का हवन करते हैं। जब आज्ञा चक्र, अनाहत चक्र और मूलाधार या स्वाधिष्ठान चक्र का एकसाथ ध्यान

किया जाता है, तब अनाहत चक्र पर प्राण और अपान इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि आज्ञा चक्र के साथ अनाहत चक्र पर भी प्राण ही है, इसीलिए कहा जा रहा है कि अपान का हवन प्राण अग्नि में करते हैं। इसमें भी कई बार दो ही चक्रों का ध्यान किया जाता है। पहले मूलाधार या स्वाधिष्ठान चक्र का ध्यान किया जाता है। फिर हल्का सा ध्यान सहस्रार या आज्ञा चक्र की तरफ मोड़ा जाता है। इससे नीचे का अपान एकदम से ऊपर चढ़ कर प्राण में मिल जाता है। इसे ही अपान का प्राण में हवन लिखा है। ध्यान रहे कि कुंडलिनी ही प्राण या अपान के रूप में महसूस होती है। तांत्रिक प्रकार के लोग इस प्रकार की भेंट अधिक चढ़ाते हैं, क्योंकि उनके नीचे के चक्रों में बहुत ऊर्जा होती है। इससे उन्हें कुंडलिनी सक्रियण और जागरण के लिए आवश्यक मानसिक ऊर्जा प्राप्त होती है।

तीसरी और चौथी पंक्ति का शब्द है कि प्राणायाम करने वाले लोग प्राण और अपान की गति को रोककर, मतलब प्रश्वास और निश्वास को रोककर ऐसा करते हैं। योग में यह सबसे महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में यही असली और मुख्य योग है। अन्य क्रियाकलाप तो केवल इसके सहायक ही हैं। प्रश्वास अर्थात अंदर साँस भरते समय प्राण मेरुदंड से होकर ऊपर चढ़ता है। उसके साथ कुंडलिनी भी। निःश्वास अर्थात साँस बाहर छोड़ते समय प्राण आगे की नाड़ी से नीचे उतरता है, मतलब वह अपान को पुष्ट करता है। इसके साथ कुंडलिनी भी नीचे आ जाती है। फिर प्रश्वास के साथ दुबारा पीछे की नाड़ी से ऊपर चढ़ता है। यह चक्र चलता रहता है। इससे कुंडलिनी एक जगह स्थिर नहीं रह पाती, जिससे उसका सही ढंग से ध्यान नहीं हो पाता। प्राण को तो हम रोक नहीं सकते, क्योंकि यह नाड़ियों में बहने वाली सूक्ष्म शक्ति है। हाँ, हम प्राणवायु या साँस को रोक सकते हैं, जिससे प्राण जुड़ा होता है। इस तरह साँस प्राण के लिए एक हैन्डल का काम करता है। जब साँस रोकने से प्राण स्थिर हो जाता है, तब हम उसे या कुंडलिनी को ध्यान से नियंत्रित गति दे सकते हैं। साँस लेते समय हम उसे ध्यान से ज्यादा नियंत्रित नहीं कर सकते, क्योंकि साँसे उसे इधर-उधर नचाती रहती हैं। अंदर जाती हुई साँस के साथ प्राण और कुँडलिनी पीठ की नाड़ी से ऊपर चढ़ते हैं, और बाहर जाती हुई साँस के साथ आगे की नाड़ी से नीचे उतरते हैं। साँस को रोककर प्राण और कुंडलिनी दोनों रुक जाते हैं। कुंडलिनी के रुकने से मन भी स्थिर हो जाता है, क्योंकि कुंडलिनी मन का ही एक प्रायोगिक अंश जो है। **पूरे मन को तो हम एकसाथ काबू नहीं कर सकते, इसीलिए कुंडलिनी के रूप में उसका एक एक्सपेरिमेंटल टुकड़ा या सैम्पल टुकड़ा लिया जाता है।** इसी वजह से तो कुंडलिनी योग के बाद मन की स्थिरता व शांति के साथ आनन्द महसूस होता है। प्राण एक ही है। केवल समझाने के लिए ही जगह विशेष के कारण उसे झूठमूठ में विभक्त किया गया है, जिसे प्राण, अपान आदि। प्राण और अपान को किसी चक्र पर, कल्पना करो मणिपुर चक्र पर आपस में भिड़ाने के लिए साँस को रोककर मुख्य ध्यान मणिपुर चक्र पर रखा जाता है, और साथ में तिरछा ध्यान आज्ञा चक्र और मूलाधार पर भी रखा जाता है। इससे ऊपर का प्राण नीचे और नीचे का अपान ऊपर आकर मणिपुर चक्र पर आपस में भिड़ जाते हैं। इससे वहाँ कुंडलिनी उजागर हो जाती है। हरेक चक्र पर इन दोनों को एक बार बाहर साँस छोड़कर

व वहीँ रोककर भिड़ाया जाता है, और एक बार साँस भरकर व वहीं रोककर भिड़ाया जाता है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि साँस को अपनी सामर्थ्य से अधिक देर तक नहीं रोकना चाहिए। अपनी बर्दाश्त की सीमा को लांघने से मस्तिष्क को हानि पहुंच सकती है।
बीच वाले चक्र पर हाथ रखकर ध्यान लगाने में मदद मिलती है। इसी तरह, सिद्धासन में बैठने पर एक पैर की एड़ी के दबाव से मूलाधार पर दबाव की संवेदना महसूस होती है, और दूसरे पैर से स्वाधिष्ठान चक्र पर। इस संवेदना से भी चक्र के ध्यान में मदद मिलती है। पर याद रखो कि पूर्ण सिद्धासन से कई बार घुटने में दर्द होती है, खासकर उस टांग के घुटने में जिसकी ऐड़ी स्वाधिष्ठान चक्र को स्पर्श करती है। इसलिए ऐसी हालत में अर्ध सिद्धासन लगाना चाहिए। इसमें केवल एक टांग की एड़ी ही मूलाधार चक्र को स्पर्श करती है। दूसरी टांग पहली टांग के ऊपर नहीं बल्कि जमीन पर नीचे आराम से टिकी होती है। घुटनों के दर्द की लंबी अनदेखी से उनके खराब होने की संभावना भी बढ़ जाती है।

गीता के चौथे अध्याय के 30 वें श्लोक में राजयोग का निरूपण

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।सर्वेऽप्येते यज्ञविदोयज्ञक्षपितकल्मषाः॥४-३०॥

इस श्लोक का शाब्दिक अर्थ है कि नियमित आहार-विहार वाले लोग प्राणों का प्राणों में ही हवन करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं॥30॥

नियमित आहार-विहार वाले योगी राजयोगी होते हैं। ये तांत्रिक पंचमकारों का आश्रय नहीं लेते। इसलिए इनके शरीर के निचले भागों में स्थित चक्र कमजोर होते हैं, वहाँ पर प्राणशक्ति या अपान की कमी से। ये मस्तिष्क से हृदय तक ही, शरीर के ऊपर के चक्रों में कुंडलिनी का ध्यान करते हैं। ये मुख्यतया ध्यान का त्रिभुज बनाते हैं। उस त्रिभुज का एक बिंदु सहस्रार चक्र होता है, दूसरा बिंदु आगे का आज्ञा चक्र होता है, और तीसरा बिंदु पीछे का आज्ञा चक्र होता है। इसमें एक बिंदु पर खासकर आगे के आज्ञा चक्र पर सीधा या मुख्य ध्यान लगा होता है, और बाकि दोनों चक्रों पर तिरछा या गौण ध्यान। बिंदुओं को आपस में बदल भी सकते हैं। इसी तरह त्रिभुज दूसरे चक्रों को लेकर भी बनाया जा सकता है। तीनों बिंदुओं का प्राण त्रिभुज के मुख्य ध्यान बिंदु पर इकट्ठा हो जाता है, और वहाँ कुंडलिनी चमकने लगती है। इन त्रिभुजों में टॉप का बिंदु अधिकांशतः सहस्रार चक्र ही होता है। दरअसल, त्रिभुज या खड़ी रेखा को चारों ओर से आस-पास के क्षेत्रों से प्राण को अपनी रेखाओं केंद्रित करने के लिए बनाया गया है। कोई एक साथ बड़े क्षेत्र का ध्यान नहीं कर सकता। त्रिभुज पर स्थित प्राण की अधिक सघनता के लिए इसके तीन शंक्वाकार बिन्दुओं का चयन किया जाता है। इन तीन बिन्दुओं में से एक बिंदु पर मुख्य ध्यान केन्द्रित करके प्राण को उस एक बिन्दु पर

केन्द्रित किया जाता है। अंत में, हमें कुंडलिनी के साथ-साथ उस एक बिंदु पर अत्यधिक एकाग्र या सघन प्राण मिलता है, जिससे वहाँ कुंडलिनी चमकने लगती है। इसी तरह, सीधी रेखा, कल्पना करो मूलाधार, मणिपुर और आज्ञा चक्र बिंदुओं को आपस में जोड़ने वाली रेखा के साथ भी ऐसा ही होता है। पहले रेखा के चारों ओर के शरीर का प्राण रेखा पर केंद्रित किया जाता है। फिर रेखा का प्राण इन तीनों चक्र बिंदुओं पर केंद्रित किया जाता है। फिर तीनों बिंदुओं का प्राण उस चक्र बिंदु पर इकट्ठा हो जाता है, जिस पर मुख्य ध्यान लगा होता है। अन्य दोनों बिंदुओं पर गौण या तिरछा ध्यान लगा होता है। यह एक अद्भुत आध्यात्मिक मनोविज्ञान है।

ईसाई धर्म में प्राण-अपान संघ

जीवित यीशु ने उत्तर दिया और कहा: “धन्य है वह मनुष्य जिसने इन बातों को जाना। वह स्वर्ग को नीचे ले आया, उसने पृथ्वी को उठा लिया और उसे स्वर्ग में भेज दिया, और वह बीच का बन गया, क्योंकि यह कुछ भी नहीं है। मुझे लगता है कि स्वर्ग प्राण है जिसे ऊपर वर्णित अनुसार नीचे लाया गया है। इसी तरह, पृथ्वी अपान है जो ऊपर उठाया गया है। मध्य दोनों का मिलन है। वहां उत्पादित “कुछ भी नहीं” कुंडलिनी ध्यान से उत्पन्न मन की स्थिरता ही है, जो अद्वैत के साथ आती है। अद्वैत के साथ मन की स्थिरता “कुछ भी नहीं” के बराबर ही है। प्राण को स्वर्ग इसलिए कहा गया है क्योंकि यह शरीर के ऊपरी चक्रों में व्याप्त रहता है, और ऊपरी चक्रों का स्वभाव स्वर्गिक लोकों के जैसा ही है, और ऐसा ही अनेक स्थानों पर निरूपित भी किया जाता है। इसी तरह अपान को पृथ्वी इसलिए कहा है क्योंकि यह शरीर के निचले चक्रों विशेषकर मूलाधार में व्याप्त रहता है। इन निचले चक्रों को घटिया या नारकीय लोकों की संज्ञा भी दी गई है। मूलाधार को पृथ्वी की उपमा दी गई है, क्योंकि इसके ध्यान से आदमी अच्छी तरह से जमीन या भौतिक आयाम से जुड़ जाता है, अर्थात यह आदमी को आधार प्रदान करता है। इसीलिए इसका नाम मूल और आधार शब्दों को जोड़कर बना है। धरती भी जीने के लिए और खड़े रहने के लिए सबसे बड़ा आधार प्रदान करती है। इस कोडेक्स के स्रोत तक निम्नलिखित लिंक पर पहुँचा जा सकता है-

The Gaian Mysteries Of Gnosis – The Bruce Codex

कुंडलिनी ही आध्यात्मिक मुक्ति के लिए पर्याप्त प्रतीत होती है

मित्रों, मैंने पिछली पोस्ट में ऑनलाइन गीता से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण पोस्ट डाली थी। उसमें कुंडलिनी योग का पूरा रहस्य किस तरह गीता के दो श्लोकों में छिपा हुआ है, यह बताया गया था। आज मैं इस पोस्ट में गीता में छिपा दूसरा योग रहस्य साझा कर रहा हूँ।

गीता के पांचवें अध्याय के 18 वें व 19 वें श्लोक में आध्यात्मिक मुक्ति का रहस्य छिपा हुआ है

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥५-१८॥
ऐसे ज्ञानी जन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में, गाय में, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को समान देखते हैं॥18॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥५-१९॥
जिनका मन सम भाव में स्थित है, उनके द्वारा यहाँ संसार में ही लय(मुक्ति) को प्राप्त कर लिया गया है; क्योंकि ब्रह्म निर्दोष और सम है, इसलिए वे ब्रह्म में ही स्थित हैं॥19॥

उपरोक्त दोनों श्लोकों से स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिक मुक्ति के लिए न तो कुंडलिनी जागरण की आवश्यकता है और न ही आत्मज्ञान की। मुक्ति तो केवल समदर्शिता या अद्वैत से ही मिलती है। तो फिर लोग अद्वैत को छोड़कर आध्यात्मिक जागृति की तरफ ही क्यों भागते हैं। यह इसलिए क्योंकि जागृति के बाद अद्वैतभाव को बना कर रखना थोड़ा आसान हो जाता है। पर ऐसा थोड़े समय, लगभग 3-4 सालों तक ही होता है। उसके बाद आदमी अपने आध्यात्मिक जागरण को काफी भूलने लग जाता है। यदि विभिन्न आध्यात्मिक तरीकों से उच्च कोटि के अद्वैत को निरंतर बना कर रखा जाए, तो वह जागरण के तुल्य ही है। विभिन्न कुंडलिनी साधनाओं से यदि कुंडलिनी को क्रियाशील रखा जाए तो अद्वैत भाव निरंतर बना रहता है, क्योंकि जहाँ कुंडलिनी होती है, वहाँ अद्वैत रहता ही है। **कुंडलिनी जागरण के समय पूर्ण अद्वैत भाव व आनन्द की अनुभूति भी यही सिद्ध करती है कि जहाँ कुंडलिनी है, वहाँ अद्वैत या समदर्शिता और आनन्द भी है।** इससे यह भी सिद्ध होता है कि बेशक गीता में कुंडलिनी का नाम न लिया गया हो, पर गीता एक कुंडलिनीपरक शास्त्र ही है।

कुंडलिनी या कुंडलिनी जागरण में से किसको ज्यादा अहमियत देनी चाहिए

कुंडलिनी को ही ज्यादा अहमियत देनी चाहिए। क्योंकि यदि कुंडलिनी क्रियाशील बनी रहती है, तो कुंडलिनी जागरण की ज्यादा आवश्यकता नहीं। यदि वह हो जाए तो भी अच्छा, और यदि न होए तो भी अच्छा। वैसे भी समय आने पर कुंडलिनी जागरण अपने आप हो ही जाता है, यदि कुंडलिनी साधना निरंतर बना कर रखी जाए। पर यदि आदमी कुंडलिनी साधना को छोड़कर दिग्भ्रमित हो जाए, और कुंडलिनी जागरण के चित्र-विचित्र क्रियाओं के पीछे भागने लगे, तो इसकी पूरी संभावना है कि उसे न तो कुंडलिनी मिलेगी और न ही कुंडलिनी जागरण। वैसे भी, कुंडलिनी जागरण के बाद भी कुंडलिनी साधना को निरंतर रूप से जारी रखना ही पड़ता है। तो फिर क्यों न जागरण से पहले भी उसे निरन्तर जारी रखा जाए। इससे जाहिर होता है कि असली शक्ति तो कुंडलिनी क्रियाशीलता में ही है। कुंडलिनी क्रियाशीलता मतलब कुंडलिनी भाव के साथ आदमी की जगत में पूर्ण व्यावहारिक व मानवीय

क्रियाशीलता बनी रहना। जागरण तो केवल कुंडलिनी साधना के प्रति अटूट विश्वास पैदा करता है, और निरन्तर उसे बनाकर रखवाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कुंडलिनी जागरण कुंडलिनी की आध्यात्मिक शक्ति का साक्षात वैज्ञानिक प्रमाण है। कुंडलिनी जागरण की दूसरी कमी यह है कि उसे प्राप्त करने के लिए आदमी का स्वस्थ व जवान होना बहुत जरूरी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुंडलिनी जागरण के लिए बहुत अधिक प्राणशक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इसका मतलब है कि दुनियादारी में डूबे हुए, वृद्ध और बीमार लोगों को कुंडलिनी जागरण होने की संभावना बहुत कम होती है। पर वे कुंडलिनी साधना का लाभ उठा सकते हैं। एक तथ्य और है कि कुंडलिनी जागरण उस समय होता है, जिस समय आदमी को न तो उसे प्राप्त करने की इच्छा हो, औऱ न ही उसके प्राप्त होने की उम्मीद हो। इसलिए कुंडलिनी साधना से कुंडलिनी क्रियाशीलता बनाए रखना ही पर्याप्त है। उपरोक्त सभी तथ्यों व सिद्धांतों को शरीरविज्ञान दर्शन नामक पुस्तक में वैज्ञानिक, व्यावहारिक व अनुभवात्मक तौर पर समझाया गया है।

कुंडलिनी के बिना विपश्यना या साक्षीभाव साधना या संन्यास योग करना कठिन व अव्यवहारिक प्रतीत होता है

दोस्तों, आजकल मेरे मानस पटल पर गीता के बारे में नित नए रहस्य उजागर हो रहे हैं। दरअसल पूरी गीता एक कुंडलिनी शास्त्र ही है। इसे युद्ध के मैदान में सुनाया गया था, इसीलिए इसमें विस्तार न होकर प्रेक्टिकल बिंदु ही हैं। व्यावहारिकता के कारण ही इसमें एक ही बात कई बार और कई तरीकों से बताई लगती है। मेरा **शरीरविज्ञान दर्शन अब मुझे पूरी तरह गीता पर आधारित लगता है।** हालांकि मैंने इसे स्वतंत्र रूप से, बिना किसी की नकल किए और अपने अनुभव से बनाया था।

कुंडलिनी ही सभी प्रकार की योग साधनाओं व सिद्धियों के मूल में स्थित है

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः। सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥५ -७॥
अपने मन को वश में करने वाला, जितेन्द्रिय, विशुद्ध अन्तःकरण वाला और सभी प्राणियों को अपना आत्मरूप मानने वाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता है॥ 7॥
उपरोक्त सभी गुण अद्वैत के साथ स्वयं ही रहते हैं। **अद्वैत कुंडलिनी के साथ रहता है।** इसलिए इस श्लोक के मूल में कुंडलिनी ही है।

आजकल के वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण युग में हरेक आध्यात्मिक उक्ति का वैज्ञानिक व तर्कपूर्ण दार्शनिक आधार होना जरूरी है

नैव किंचित्करोमीतियुक्तो मन्येत तत्त्ववित्।पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥५-८॥
तत्व को जानने वाला यह माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ । देखते हुए, सुनते हुए, स्पर्श करते हुए, सूँघते हुए, खाते हुए, चलते हुए, सोते हुए, साँस लेते हुए ॥8॥
सीधे तौर पर ऐसा मानना आसान नहीं है कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूं। ऐसा मानने के लिए कोई वैज्ञानिक या दार्शनिक आधार तो होना ही चाहिये। ऐसा ही उत्तम आधार शरीरविज्ञान दर्शन ने प्रदान किया है। किसी दिव्य प्रेरणा से इसे बनाने की नींव मैंने तब डाली थी, जब क्षणिक व स्वप्नकालीन आत्मज्ञान के बहकावे में आकर मैं अपने काम से जी चुराने लग गया था। मैं अनायास ही संन्यास योग की तरफ बढ़ा जा रहा था। इससे मैं आसपास के संबंधित लोगों से भौतिक रूप से पिछड़ने लग गया था। इस दर्शन ने मुझे दुनियादारी की तरफ धकेला और मेरे कर्मयोग को सफल किया। इसमें वैज्ञानिक तौर पर सिद्ध किया गया है कि **जो कुछ भी आदमी कर रहा है, वह सब हमारे शरीर में भी वैसा ही हो रहा है। जब हमारे शरीर में रहने वाले देहपुरुष अपने को कर्ता नहीं मानते तो हम अपने को कर्ता क्यों मानें।** आदमी अपने अवचेतन मन के दायरे में समझे कि उस दार्शनिक पुस्तक के सूक्ष्म रूप की वर्षा हर समय उस पर हो रही है। अवचेतन मन से मैं इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि प्रत्यक्ष या चेतन मन तो

दुनियादारी के काम में व्यस्त रहता है, उसे क्यों परेशान करना। उससे त्वरित व चमत्कारिक लाभ होते मैंने स्वयं देखा है। ऐसा चिंतन करते ही आनन्द के साथ कुंडलिनी प्रकट हो जाती है, और आदमी रिलेक्स फील करता है। इसका मतलब है कि इस श्लोक के आधार में भी कुंडलिनी ही है। इससे हम यह भी समझ सकते हैं कि दरअसल आदमी के मन की कुंडलिनी ही कर्ता और भोक्ता है, आदमी खुद नहीं।
यदि शरीरविज्ञान दर्शन के ऐसे चिंतन से मस्तिष्क में दबाव व जड़त्व सा लगे, तो दूसरा तरीका आजमाना चाहिए। इसमें शरीरविज्ञान दर्शन की ओर जरा सा ध्यान दिया जाता है, फिर समयानुसार हरेक परिस्थिति को इसका आशीर्वाद समझ कर स्वीकार कर लेना चाहिए, और प्रसन्न रहना चाहिए।।

सांख्ययोग या संन्यास योग विपासना या विटनेसिंग के समकक्ष है और कर्मयोग कुंडलिनी योग के समकक्ष

संन्यासः कर्मयोगश्चनिःश्रेयसकरावुभौ। तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥५-२॥

श्री कृष्ण भगवान कहते हैं- कर्म संन्यास और कर्मयोग- ये दोनों ही परम कल्याण के कराने वाले हैं, पर इन दोनों में भी कर्मयोग कर्म-संन्यास से (करने में सुगम होने के कारण) श्रेष्ठ है॥ 2॥
कर्मयोग व कुंडलिनी योग, दोनों में कुंडलिनी अधिक प्रभावी होती है। इसमें संसार में परिस्थितियों के अनुसार प्रवृत्त रहते हुए कुंडलिनी को ज्यादा अहमियत दी जाती है। यह श्रेष्ठ है, क्योंकि इससे दुनियादारी भी अच्छे से चलती है। **बहुत से सर्वोत्तम प्रकार के राजा व प्रशासक कर्मयोगी हुए हैं।** संन्यास योग में विचारों के प्रति साक्षीभाव रखकर उन्हें विलीन किया जाता है। अधिकांशतः बुद्धिस्ट लोग इसी तरीके को अपनाते हैं, इसीलिए वे दुनिया से दूर रहकर मठों आदि में अपना ज्यादातर समय बिताते हैं। कई आधुनिक लोग भी अपनी थकान मिटाने के लिए इस तरीके का अल्पकालिक प्रयोग करते हैं।
यह श्लोक अर्जुन जैसे उन लोगों को देखते हुए बना था, जो अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को छोड़कर साक्षीभाव साधना के नाम पर अकर्मक बनना चाहते थे। इस श्लोक ने ऐसे लोगों की आंख खोल दी। उन्हें इस श्लोक के माध्यम से बताया कि **सबसे ज्यादा आध्यात्मिक लाभ कर्म करने से प्राप्त होता है, ज्ञानसाधना के नाम पर कर्म छोड़ने से नहीं।** ज्ञानसाधना इतनी आसान नहीं है। हर कोई बुद्ध नहीं बन सकता। यदि ज्ञानसाधना असफल हो जाए तो नरकप्राप्ति की जो बात शास्त्रों में कही गई है, वह सत्य प्रतीत होती है। वैसे तो कर्मयोग असफल नहीं होता। पर यदि किसी कुचक्र से विरले मामले में हो भी जाए तो भी कम से कम स्वर्ग मिलने की संभावना तो है ही, क्योंकि इसमें आदमी ने अच्छे कर्म किए होते हैं।

जो आध्यात्मिक लाभ विटनेसिंग साधना से प्राप्त होता है, वही कुंडलिनी साधना से भी प्राप्त होता है

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानंतद्योगैरपि गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स : पश्यति॥५-५॥
ज्ञानयोगियों द्वारा जो गति प्राप्त की जाती है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त की जाती है इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को (फल से) एक देखता है, वही ठीक देखता है॥5॥
इस श्लोक का मतलब है कि जो मुक्ति संन्यास योग या विपश्यना से मिलती है, वही कर्मयोग या कुंडलिनी योग से भी मिलती है। मुक्ति से यहाँ तात्पर्य बन्धनकारी विचारों से मुक्ति है। केवल यही आभासिक अंतर है कि विपश्यना या विटनेसिंग से वह मुक्ति ज्यादा प्रतीत होती है। क्योंकि **विपश्यना-योगी के अंदर व बाहर, कहीं भी विचारों का**

तूफान नहीं होता, एक शांत झील की तरह। जबकि कर्मयोगी, समुद्र की तरह बाहर से तूफानी, पर अंदर से शांत होते हैं। यह श्लोक गीता का सर्वोत्तम श्लोक है। अध्यात्म का सम्पूर्ण रहस्य इसमें छिपा है। इसे मैंने खुद अनुभव किया है। कर्मयोग से ही मैं सांख्ययोग तक पहुंचा। यह अलग बात है कि मैं अब भी कर्मयोग को ही महत्त्व देता हूँ। साधारण लोगों को दोनों प्रकार के योग अलग-अलग दिखाई देते हैं, पर दोनों अंदर से एकसमान है, और एकसमान फल प्रदान करते हैं। कर्मयोग ज्यादा प्रभावी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जो विचारों की आनन्दमयी शून्यता संन्यास योग से प्राप्त होती है, वही कर्मयोग से भी प्राप्त होती है। इन दोनों में कर्मयोग की अतिरिक्त विशेषता यह है कि बेशक इसमें अंदर से मन की आनंदमयी व कुंडलिनीमयी शून्यता हो, पर बाहर से दुनियादारी के सभी काम सर्वोत्तम ढंग से होते रहते हैं। यह समुद्र की प्रकृति से मेल खाता है, बाहर से तूफानी, जबकि अंदर से शांत।
कई लोग कर्मयोग और संन्यास योग, दोनों के मिश्रण का प्रयोग करते हैं। वे काम के मौकों पर कर्मयोग पर ज्यादा ध्यान देते हैं, और काम के अभाव में संन्यास योग पर। मैंने भी इस तरीके को आजमाया था। पर मुझे लगता है कि पूर्ण कर्मयोग ही सर्वश्रेष्ठ है। वास्तव में काम की कमी कभी हो ही नहीं सकती।

दुनियादारी में उलझे व्यक्ति के लिए विटनेसिंग साधना के बजाय कुंडलिनी साधना करना अधिक आसान है

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः। योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्मनचिरेणाधिगच्छति॥५-६॥

परन्तु हे वीर अर्जुन! कर्मयोग के बिना (कर्म-) संन्यास कठिन है और कर्मयोग में स्थित मुनि परब्रह्म को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥ 6॥
इस श्लोक का अभिप्राय है कि **जब कर्मयोग या कुंडलिनी योग से कुंडलिनी जागरण हो जाता है, तभी हम विचारों का असली संन्यास कर सकते हैं।** यदि कुन्डलिनी क्रियाशील भी बनी रहे, तो भी काम चल सकता है। कुंडलिनी जागरण दुनियादारी का उच्चतम स्तर है। इससे मन दुनिया से पूरी तरह तृप्त और संतुष्ट हो जाता है। इसलिए इसके बाद विचारों का त्याग करना बहुत आसान या यूँ कह सकते हैं कि स्वचालित या स्वाभाविक ही हो जाता है। इसके बिना, मन दुनिया में ही रमा रहना चाहता है, क्योंकि उसे इसका पूर्ण रस नहीं मिला होता है। इसीलिए तो बहुत से बौद्ध भिक्षु व अन्य धर्मों के संन्यासी दुनिया से दूर रहकर एकांत में साधना करना अधिक पसंद करते हैं। इसीसे वे अपने मन को दुनिया के प्रलोभन से बचाकर रख पाते हैं। इससे विपश्यना या विटनेसिंग या संन्यास योग या सांख्ययोग के लिए कुंडलिनी क्रियाशीलता व कुंडलिनी जागरण के महत्त्व का साफ पता चलता है। **विपासना, विपश्यना, विटनेसिंग, साक्षीभाव, संन्यास योग, सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं**।

श्रीमद्भागवत गीता की विस्मयकारी व्यावहारिकता

मुझे लगता है कि गीता के आध्यात्मिक सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से अपने दैनिक जीवन में लागू किया जाना चाहिए, अन्यथा मात्र इसे पढ़ने या इसके दैनिक जप करने से कोई विशेष फायदा प्रतीत नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति कर्मयोग के रहस्य को व्यावहारिक रूप से समझता है, तो उसे बहुत ज्यादा पढ़ने की जरूरत नहीं है।

कुंडलिनी ही रति है और कुंडलिनी के द्वारा कामवासना को शांत किया जाना ही रति-कामदेव का विवाह है

दोस्तों, मुझे प्रतिदिन रहस्यात्मक साहित्य पढ़ने की आदत है। इससे मेरा दायाँ मस्तिष्क क्रियाशील रहता है, क्योंकि रहस्यात्मक कथाओं में लॉजिक लगाना कठिन होता है। हमारा दायाँ मस्तिष्क भी एक सिरफिरे आदमी की तरह मस्त मलंग स्वभाव वाला होता है। हिन्दू पुराणों के कथा-कथानक भी एक पहेली की तरह होते हैं। यदि उन्हें बूझ गए, तो उससे बायाँ मस्तिष्क क्रियाशील हो जाता है, और यदि नहीं तो दायाँ मस्तिष्क। मतलब कि वे हर परिस्थिति में फायदा ही करते हैं।ऐसे ही एक कथानक के रहस्य को मैं इस हफ्ते पहचान सका हूँ। मैं प्रतिदिन शिवपुराण का केवल एक पृष्ठ पढ़ता हूँ, मूल संस्कृत में और हिंदी में। मूल संस्कृत का मजा ही कुछ और है। इस हफ्ते मुझे एक महत्वपूर्ण तांत्रिक रहस्य हाथ लगा है। इसे मैं यहाँ साझा कर रहा हूँ।

ब्रह्मा द्वारा कामदेव को श्राप देना व रति को उत्पन्न करके उसका विवाह कामदेव से करना

जब ब्रह्मा ने कामदेव की उत्पत्ति की, तब कामदेव को अपने ऊपर गर्व हो गया। वह अपनी शक्ति का परीक्षण ब्रह्मा पर ही करने लगा। इससे ब्रह्मा कामविह्वल होकर अपनी ही पुत्री के श्रृंगार का गुणगान करते हुए उस पर आसक्त हो गए। दरअसल ब्रह्मा द्वारा रचित यह सुंदर सृष्टि ही उसकी वह पुत्री है। कामदेव यहाँ भोगेच्छा का प्रतीक भी है। फिर शिव ने उन्हें रोका। जब उन्हें कामदेव की हरकत का बोध हुआ तो उसे यह कह कर श्राप दे दिया कि यदि उसे अपनी शक्ति का परीक्षण ही करना था तो उनकी पुत्री के सामने ही क्यों किया। वह श्राप था कामदेव का शिवजी के द्वारा भस्म किए जाने का। भगवान शिव तंत्रयोग के सर्वोच्च शिरोमणि हैं, उनके आगे काम भस्मीभूत ही है। फिर ब्रह्मा ने अपने शरीर के पसीने से अपनी रति नाम की एक अन्य पुत्री को उत्पन्न किया। वह सृष्टि में सबसे सुंदर थी। उसका विवाह ब्रह्मा ने कामदेव के साथ कर दिया। कामदेव तो उसके सौंदर्य को देखकर अपनी मोहिनी विद्या को जैसे भूल ही गया।

कामदेव मनुष्य के मन की वासना है और रति कुंडलिनी है

शास्त्रों में भी आता है कि यहाँ तक कि अपनी बेटी और बहन से भी नितांत अकेले में नहीं मिलना चाहिए , क्योंकि यह काम बहुत प्रबल है। तो इसमें आश्चर्य नहीं कि ब्रह्मा अपनी पुत्री पर आसक्त हो गए थे। उस काम को वश में करने के लिए उन्होंने कठिन योगाभ्यास किया। उनके पसीने की बूंदें इसी अथक कुंडलिनी-योगाभ्यास की प्रतीक हैं। उसी अथक कुंडलिनी योग से जो कुंडलिनी क्रियाशील या जागृत हुई, वही रति नाम से कही जा रही है। कुंडलिनी को रति नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि यह योग में निरंतर रत रहने से ही मिलती है। रत शब्द एक प्रमुख आध्यात्मिक शब्द है, जैसे ध्यान रत, भक्ति रत आदि। इसका अर्थ लीन भी है। कुंडलिनी किसी के प्यार में या ध्यान में लीन होकर ही मिलती है। रति क्रीड़ा नाम भी इसीसे बना है। क्योंकि कामक्रीड़ा से मन और उसका सबसे प्रिय अंश कुंडलिनी, दोनों प्रफुल्लित होते हैं, इसीलिए कुंडलिनी को रति नाम दिया गया है। यह रूपक के रूप में समझाया गया है, क्योंकि पुराने जमाने में रहस्यात्मक विद्याओं को सीधे तौर पर सार्वजनिक नहीं किया जाता था। इसीलिए ऐसी

कई विद्याओं को गुह्य विद्या भी कहते हैं। कामदेव-रति के कथानक से इस बात का भी पता चलता है कि सृष्टि रचयिता ईश्वर कुंडलिनी योगविद्या के बल से ही अपनी सुंदर रचना के मोहक आकर्षण से अछूता बना रहता है।

कुंडलिनी ने रति के रूप में देवताओं व ऋषियों की काम वासना को अपने नियंत्रण में रखा

जब देवताओं व ऋषियों को इस रहस्य का पता चला कि कुंडलिनी से कामवासना को नियंत्रण में रखा जा सकता है, तब उन्होंने नियमित योगाभ्यास करना शुरु कर दिया। इसीलिए उन्होंने रति के रूप में कुंडलिनी को सबसे सुंदर माना है, क्योंकि कामदेव केवल सुंदर भौतिक वस्तुओं की ओर ही जीव को आकृष्ट करवाता है। रति के आगे कामदेव हार गया। इसका मतलब है कि रति या कुंडलिनी सबसे सुंदर है। वह इतनी सुंदर है कि उसके बहकावे में आकर कई लोग अच्छी खासी गृहस्थी व चमक-दमक वाली दुनिया छोड़कर संन्यासी बन जाते हैं। उसने कामदेव का धंधा ही बंद कर दिया। कामदेव का रति से विवाह करने का अर्थ है कि जैसे एक शादीशुदा आदमी एक स्त्री से बंध कर अन्य स्त्रियों पर नजरें नहीं डालता, उसी तरह वह भी रति नामक कुंडलिनी के द्वारा बाँध दिया गया। इस रहस्य का थोड़ा स्पष्टीकरण भी एक श्लोक के माध्यम से वहीं पर किया गया है, जिसमें लिखा गया है कि कामदेव अपनी प्रियतमा रति को अपने हृदय में ऐसे छुपा कर रखता था, जैसे एक योगी अपनी ब्रह्मविद्या को अपने हृदय में छिपा कर रखता है। अब वास्तविक ब्रह्मविद्या कुंडलिनी ही तो है, क्योंकि वही ब्रह्म तक ले जाती है। योगी को सभी लोग भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में देखते हैं, कभी ख़ुशी में, कभी गम में, कभी अवसाद में, तो कभी प्रफुल्लित अवस्था में। पर वे लोग उसके मन की उस कुँडलिनी को पहचान ही नहीं पाते, जो उसकी इन सभी अवस्थाओं में एक जैसी ही बनी रहती है। इसी तरह रति से विवाहित कामदेव के साथ हमेशा रति बनी रहती है। रति से काम के विवाह का यह मतलब भी है कि एकपत्नीव्रत के साथ सामाजिक पत्नी के साथ तांत्रिक योगाभ्यास करना। तन्त्रयोग साहित्य के अनुसार भी कई वर्षों तक केवल कर्मयोग व साधारण कुंडलिनी योग का अभ्यास करना पड़ता है। उस दौरान रति नामक कुंडलिनी का जन्म होता है, वह बढ़ती है, और यौनावस्था में पहुंच जाती है, मतलब बहुत मजबूत हो जाती है। फिर वह काम के साथ विवाह के योग्य हो जाती है। कुंडलिनी के काफी परिपक्व हो जाने पर ही साधारण कुंडलिनी योग को यौनयोग के साथ मिश्रित रूप में करने का विधान है। यही रति और काम का विवाह है। यदि जल्दबाजी में समयपूर्व ही काम के साथ रति का बालविवाह कर दिया जाए, तो लाभ की अपेक्षा हानि भी हो सकती है। ऐसा तंत्रशास्त्र में साफ तौर पर चेताया गया है। यदि काम-रति के दाम्पत्य युगल से युक्त व्यक्ति काम के आवेश में आ जाए, तो लोग उसे साधारण कामासक्त मान लेते हैं। वे काम के साथ खड़ी उस रति को नहीं देख पाते, जो हमेशा कल्याणकारी होती है। बहुत से तंत्रयोगी इसी कारणवश प्रताड़ित हो जाते हैं। वे भोलेपन में आकर काम-रति का प्रदर्शन करने लगते हैं, पर लोग केवल काम को ही देख पाते हैं, उसके साथ खड़ी रति नामक कुंडलिनी को नहीं।

दरअसल काम के दायरे में सभी भोग लालसाएँ आ जाती हैं। इसलिए रति नामक कुंडलिनी सबसे विवाह करके उनसे जुड़ जाती है। काम के अर्थ में केवल यौन लालसा को इसलिए लिया जाता है, क्योंकि यह सभी भोग लालसाओं में सबसे प्रभावशाली और मुख्य है।

तंत्रयोगी रति को पैदा करने के लिए कामदेव की ही सहायता लेते हैं

इसे कहते हैं, दुश्मन को दुश्मन के ही तीर से मारना। कामदेव का तीर जगत्प्रसिद्ध है। तंत्रयोगी पंचमकारों की सहायता से अपनी कुंडलिनी को अतिरिक्त मजबूती प्रदान करते हैं। वे दरअसल कामशक्ति को कुंडलिनी शक्ति में रूपांतरित कर देते हैं।

काम-रति विवाह की वैज्ञानिक व्याख्या

काम के आवेश में मस्तिष्क की ओर रक्त संचार बढ़ जाता है। इसीलिए मन प्रफुल्लित हो जाता है। यदि कोई आदमी कुंडलिनी योगी है, तो जाहिर है कि उसके मस्तिष्क का अधिकांश हिस्सा कुंडलिनी ने अधिगृहीत किया हुआ है। ऐसे में यदि मस्तिष्क में रक्त संचार बढ़ेगा, तो इससे सबसे ज्यादा लाभ कुंडलिनी को ही मिलेगा। क्योंकि कुंडलिनी एक प्रकार से हाई डेफिनिशन रिसोल्यूशन का एक मानसिक चित्र ही है, इसलिए वह बहुत ज्यादा प्राण ऊर्जा का उपभोग कर लेता है। इससे काम का वेग अनायास और जल्दी ही आनन्द के साथ शांत हो जाता है।

कुंडलिनी साधना के लिए सन्ध्या या संगम का महत्त्व

रति दक्ष की पुत्री और ब्रह्मा की पौत्री है

मित्रों, पिछली पोस्ट कुछ छोटी थी, इस बार लॉन्गरीड आर्टिकल पढ़ने के लिए तैयार हो जाइए। पिछली पोस्ट में मैंने रति को ब्रह्मा की पुत्री कहा था। वास्तव में वह दक्ष की पुत्री है। बात एक ही है, क्योंकि दक्ष ब्रह्मा का मानस पुत्र है। दक्ष का मतलब होता है निपुण। जब आदमी अपने मन में दुनियादारी में निपुणता अर्थात कर्मयोग का संकल्प लेकर उसे अपनाता है, तो उसके मन में एक कुंडलिनी पैदा हो जाती है। यही दक्ष के पसीने से अर्थात कर्मयोग से रति अर्थात कुंडलिनी का जन्म है। यही मैंने पिछली पोस्ट में भी लिखा है कि कुंडलिनी को पहले कर्मयोग से पैदा करके विकसित करना पड़ता है, तब जाकर ही इसका समर्पित तंत्रयोग के साथ सफलतापूर्वक गठजोड़ बनाया जा सकता है।

धर्म विवेक बुद्धि का प्रतीक है

कथा के अनुसार धर्म ने ब्रह्मा को संध्या के प्रति कामवासना से रोकना चाहा, पर वे नहीं रुके। तब धर्म ने शिव से ब्रह्मा को रोकने के लिए गुहार लगाई। धर्म या विवेक या बुद्धि भी ब्रह्मा का मानस पुत्र ही है। है तो यह भी विचार रूप ही, बेशक बुद्धि को मन से बड़ा कहा जाता हो। यह वास्तव में अच्छे और बुरे का ज्ञान है। पर कामवासनाओं से पीड़ित आदमी अक्सर इसकी बात नहीं सुनता। जब धर्म यह देखता है कि उससे बात नहीं बन रही, तब वह कुंडलिनी रूप शिव को याद करता है। वह उसी समय प्रकट होकर आदमी को गलत काम करने से रोकता है। तभी तो कहते हैं कि ईश्वर या कुंडलिनी बुद्धि से भी परे है। जहाँ बुद्धि या दिमाग भी हार जाता है, वहाँ कुंडलिनी को याद करके लाभ मिलता है। यदि प्रतिदिन के योगाभ्यास से हमेशा ही कुंडलिनी को याद रखा जाए, तब तो कहने ही क्या।

संध्या काल अद्वैत का प्रतीक है

संध्या स्त्री संध्या काल (डस्क और डान) का ही रूपक है, इसकी ओर इशारा वहीँ एक श्लोक से किया गया है, जिसमें लिखा गया है कि कामदेव रति के साथ ऐसे सुशोभित हो रहा था, जैसे संध्या काल में बादल के साथ चमकती बिजली। संध्या शब्द संस्कृत के संधि शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है, जोड़। संध्या में सभी विपरीत भाव जुड़े होते हैं। इस तरह से संध्या ईश्वर या अद्वैत के समतुल्य है। संध्या के समय दिन-रात के संतुलित होने से आदमी भी संतुलित हो जाता है। दरअसल संध्याकाल में दिन और रात के अंश बराबर होते हैं। संध्याकाल में आदमी का बायाँ व दायाँ मस्तिष्क समान चलने लगते हैं। उसके यिन और यांग बराबर हो जाते हैं। उसके दोनों नथुनों से बराबर साँस चलने लगती है। पिछली पोस्ट में जो मैंने प्राण और अपान को जोड़ने की योग तकनीक का वर्णन किया था, वह भी संध्या के तुल्य ही है। दरअसल जहाँ भी दो परस्पर विपरीत भाव आपस में जुड़ते हैं, वहाँ संध्या बन जाता है। उस शांत स्थिति में सभी काम विशेषकर आध्यात्मिक काम ज्यादा सफल होते हैं। संध्याकाल पूजापाठ से इतना ज्यादा जुड़ा है कि पूजा करने को संध्या करना ही कहा जाता है। इसी तरह ग्रहण काल भी एक संध्या काल है। उसमें किए काम कई गुना फल देते हैं। इसलिए कहते हैं कि ग्रहण काल में अच्छे व आध्यात्मिक काम ही करने चाहिए। पुराने समय में राजा लोग एकदम से राज्य छोड़कर तप के लिए वन चले जाया करते थे। वनवास का कुछ दिनों का शुरुआती समय भी उनके लिए महान संध्या काल की तरह होता था। उस समय वे कुंडलिनी साधना करके शीघ्रता से अपनी कुंडलिनी को जगा दिया करते थे। इसी तरह योगसाधना से बने प्रकाशमान चित्त में जो तांत्रिकों के द्वारा

पंचमकारों से उत्पन्न अंधकार प्रविष्ट कराया जाता है, उससे भी उत्तम कोटि का बनावटी संध्या काल बनता है। उसमें वे बहुत सी सिद्धियां प्राप्त करते हैं, कुंडलिनी जागरण भी जिनमें एक है। इलाहाबाद के संगम में गंगा और यमुना नदियां मिलती हैं। ये दोनों नदियां परस्पर विपरीत गुणों वाली हैं। इससे बहुत अच्छा संध्या स्थान बनता है। इसिलए संगम को बहुत पवित्र माना जाता है। योगी लोग योग साधना के लिए गहन पहाड़ों व वनों में इसीलिए जाते हैं क्योंकि वहाँ उन्हें संगम का आभास होता है। कई धर्मों में कन्या को इसीलिए पूजा जाता है क्योंकि कन्या में स्त्री और पुरुष दोनों का संगम होता है।

सांयकालीन संध्या के समय भ्रमण से आनन्द तो मिलता है, पर कुंडलिनी विकास केवल योगी का ही होता है

आदमी के सौंदर्य में वृद्धि हो जाने के कारण वह संध्या काल में आसानी से काम का शिकार बन सकता है। इसकी मुख्य वजह यह है कि यौन प्रेमी के मन में अपने यौन साथी के रूप की कुंडलिनी बसी होती है। संध्या के समय वह प्रबल रूप में चमकने लगती है। उस समय यदि ऐसा व्यक्ति आचारहीन लोगों की संगति में हो, तो वह यौन कुंडलिनी से प्रेरित कामवासना के प्रभाव में आकर गलत कदम उठा सकता है। उससे उसके मन की कुंडलिनी को भी भारी क्षति पहुंच सकती है। परंतु यदि वह सदाचारी मित्रों व लोगों की संगति में हो, तो उनके प्रभाव में रहते हुए वह गलत कदम उठा ही नहीं पाता। वह कुंडलिनी को वश में कर लेता है, कुंडलिनी के वश में नहीं होता। इससे उसकी कुंडलिनी उत्तरोत्तर वृद्धि करती हुई उसे कुंडलिनी जागरण या सीधे ही आत्मज्ञान तक ले जाती है। इसीलिए संध्या के समय में आध्यात्मिक माहौल में रहने के लिए कहा जाता है। वैसे भी लोग संध्या के समय मॉल पर टहलने निकलते हैं। इधर-उधर के फालतू विचार उमड़ने से आनन्द तो मिलता है, पर उससे सांसारिक द्वैत रूप भ्रम में ही वृद्धि होती है। योगी लोग ऐसे समय में आसानी से पहचाने जा सकते हैं। उनके चेहरे पर कुंडलिनी के प्रभाव से विशेष चमक और शान्ति झलकती है। संध्या के समय मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों के बराबर व दक्षता से चलने से मानसिक शक्ति चरम पर होती है।

संध्या कालीन काम से यदि आम आदमी भ्रम में पड़ता है, तो तंत्रयोगी कुंडलिनी को मजबूत करता है

वास्तव में ब्रह्मा एक आम आदमी ही है। हरेक चीज की उत्पत्ति आदमी के मन में ही होती है। बाहर कुछ नहीं है। ये पर्वत,महासागर, चाँद, सितारे, सब मन की ही उपज हैं। इसी तरह संध्या का समय भी मन में ही बना। संध्या के समय कामभावना जागृत होने का मतलब है, संध्या के ऊपर आसक्त होना। संध्या ने बाद में लज्जा महसूस करते हुए तप करते हुए देहत्याग का विचार किया। इसका मतलब है कि वह अपने असली पवित्र काल के रूप को खोने जा रही थी। फिर ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं ने उसकी शादी आध्यात्मिक ऋषि वसिष्ठ से करवा दी। मतलब कि संध्या काल फिर से आध्यात्मिक काम के लिए निर्धारित हो गया। तांत्रिक क्रियाएं इसमें अपवाद हैं। बेशक वे बाहर से भौतिक व सकाम लगें, पर अंदर से वे आध्यात्मिक ही होती हैं। इसीलिए तांत्रिक क्रियाएं भी ज्यादातर संध्या काल में ही की जाती हैं। कामदेव को ब्रह्मा ने भस्म होकर नष्ट हो जाने का श्राप दिया, क्योंकि उसने संध्या काल में ऋषियों और देवताओं को परेशान किया था। तो यह आम आदमी के लिए डर वाली बात है, क्योंकि वे काम के सहारे ही तो जीते हैं। वैसे भी, पूरे दिनभर के कामकाज से आदमी सन्ध्या के समय थका हुआ सा रहता है। इसी तरह सुबह उठकर नींद से पैदा हुई सुस्ती जैसी रहती है। यही संध्या को मिला शिव का वरदान है कि उसे काम परेशान नहीं करेगा। मतलब कि उस समय उनकी भौतिक कामनाएं व यौन कामनाएं नष्ट जैसी हो जाती हैं। एकप्रकार से काम थका हुआ सा होता है, पूरा नष्ट नहीं हुआ होता है। काम का पूर्ण नाश तो तंत्रयोगी ही कर पाते हैं। इसलिए तंत्रयोगियों के लिए यह काल वरदान है, क्योंकि वे अन्ततः काम को नष्ट करके ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। वे अपनी तन्त्र विद्या से पहले काम

को पैदा करते हैं, फिर उससे मजबूत बनी कुंडलिनी से उसी काम को नष्ट कर देते हैं। वे काम की शक्ति अपनी कुंडलिनी को देते हैं। आम आदमी काम से उत्पन्न शक्ति को कुंडलिनी में रूपांतरित करने की तकनीक नहीं जानते, इसलिए वह शक्ति रंग-बिरंगे विचारों से भ्रम पैदा करती है। दूसरा अर्थ इससे यह निकलता है कि शिव वरदान के रूप में अपने आप को ही दे देते हैं। शिव मस्त मलंग और शून्य रूप हैं, उनके पास अपने सिवाय देने को है ही क्या। पर जब शिव मिल जाते हैं, तो सबकुछ खुद ही मिल जाता है। शिव कुंडलिनी रूप रति के रूप में हैं। इसलिए कुंडलिनी योग से काम खुद ही नष्ट हो जाता है।

कुंडलिनी काम से शक्ति लेकर अंत में काम को ही नष्ट कर देती है, फिर काम को पुनर्जीवित भी कर देती है

अब काम को ही देख लो। वह रति के प्रति इतना मोहित हो गया कि उसे अपने प्रति ब्रह्मा द्वारा दिए गए श्राप की सुध भी नहीं रही, और वह देवताओं के उकसावे में आकर रति से विवाह करने को राजी हो गया। यह उसके भस्म होने की शुरुआत थी, क्योंकि अंततः रति रूपी कुंडलिनी ने काम को नष्ट तो करना ही है। अब कुंडलिनी को ही शिव नाम दिया गया हो, तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि शिव और शक्ति तत्वतः एक ही हैं। शिव ने काम को भस्म किया, मतलब कुंडलिनी ने काम को भस्म किया। अब यदि कोई कहे कि यह कैसे हो सकता है कि रति भी कुंडलिनी है और शिव भी कुंडलिनी है। तो इसका स्पष्टीकरण यह है कि रति दरअसल मन का भाव है, पर शिव वास्तविकता है। वैसे तो दोनों ही मन के भाव हो सकते हैं, पर मैं इन दोनों की आपसी सापेक्षता के हिसाब से बात कर रहा हूँ। मतलब कि सापेक्ष रूप से शिव रति की अपेक्षा ज्यादा वास्तविक है। इसी तरह रति शिव की अपेक्षा ज्यादा भावप्रधान है। यदि शिव मंदिर में रखी मूर्ति के रूप में हैं, तो रति मन में लग रहे उनके ध्यान के रूप में। रति मतलब लगाव। अब शिवपुराण में शिव से ही लगाव होगा, किसी अन्य देवता से नहीं। शिवपुराण में हर जगह शिव का ही ध्यान करने की सलाह दी गई है। इसी तरह जब शिव-शक्ति का विवाह मतलब कुंडलिनी जागरण होता है, तब काम को पुनः जीवित हो जाने का वरदान मिला है। इसका मतलब है कि जागृति के बाद फिर से आदमी दुनिया में रम जाता है, हालाँकि ज्ञान व अनासक्ति के साथ। जागरण के बाद आदमी को कुछ पाने की चिंता तो होती नहीं, इसलिए वह खुलकर जीना शुरु करता है।

कामदेव के पुष्पबाण आदमी को प्यार-प्यार में ही घायल कर देते हैं

इस कथानक में यह वृतान्त रोचक है कि ब्रह्मदेव के मन से उत्पन्न कामदेव के पास पाँच फूलों के बाण या अस्त्र थे। ब्रह्मा या ब्रह्मदेव यहाँ सभी लोगों या जीवों के सामूहिक रूप का पर्याय है, और कामदेव सभी जीवों की सामूहिक कामवासनाओं का पर्याय है। तभी काम और ब्रह्मा के साथ देव शब्द लगा है। यदि एक आदमी की कामवासना की बात होती, तो सिर्फ काम ही कहते। इस तरह से तत्वतः तो काम और कामदेव एक ही हैं। कामदेव के ये पाँच बाण हैं, हर्षन मतलब खुश करना, रोचन मतलब पसंद करवाना, मोहन मतलब मोहित करवाना या एक के ही चक्कर में पागल बनवाना, शोषण मतलब शक्ति को सोखना, और मारण मतलब मरवाना। अब यह हैरानी की बात है कि अंतिम तीनों जानलेवा हथियार भी फूलों के ही हैं। तभी तो इन हथियारों से घायल आदमी प्यार-प्यार में ही बहुत कुछ गवां देता है, और उसे इसका आभास तक नहीं होता। इससे प्राचीन ऋषियों की व्यावहारिकता, दूरदर्शिता और सूक्ष्मदर्शिता का पता चलता है। इतने अच्छे रूपक बनाने वाले कोई वनवासी नहीं हो सकते, जैसी कि आम भ्रांत धारणा है। वे दुनियादारी में सबसे ज्यादा कढ़े हुए और गढ़े हुए होते थे।

काम के साथ भावनाओं का अंबार भी चलता है, जिससे आदमी आनंदमयी मस्ती में डूबा रहता है

फिर लिखा है कि जैसे ही ब्रह्मा ने उत्तेजित होकर कामभाव से संध्या की तरफ देखा, वैसे ही उनके शरीर से उन्चास भाव पैदा हो गए। आम आदमी के साथ भी तो ऐसा ही होता है। कामोत्तेजित होने के बाद वह रंग-बिरंगे भाव दिखाने लगता है। वह यारों का यार, बापों का बाप, पुत्रों का पुत्र और पता नहीं क्या-क्या बनने लगता है। वह चारों ओर छा जाता है। ऐसे कौन से भाव हैं, जो उसके अंदर पैदा नहीं होते। मातृ भाव, भगिनी भाव, गुरु भाव, बुजुर्ग भाव, बाल भाव, नवयुवक भाव, पशु-पक्षी भाव, वृक्ष-लता भाव, पर्वत भाव आदि-आदि। ये भाव संध्या के समय ज्यादा उमड़ते हैं, क्योंकि उस समय मन में शांति छाई होती है। भावों में तो बुराई नहीं है, पर आसक्ति में बुराई है। जिस घर में संध्या योग होता है, वहाँ ये कामजनित भाव कुंडलिनी के साथ मिश्रित होकर आसक्ति और दुर्भावना को नष्ट कर देते हैं। केवल शुद्ध प्रेम बचा रहता है। कुंडलिनी और प्रेमभाव एकदूसरे को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहते हैं। इसलिए प्रेम करने में बुराई नहीं है, यदि उसे शुद्ध और आध्यात्मिक बनाया रखा जाए। बल्कि वह प्रेम तो सबसे बड़ा योग है। प्रेम में दीवाना होकर आदमी भावविभोर होकर आनन्दित हो जाता है। इसे आजकल हाईपर या हॉट या रंगीन होना कहते हैं। यही तो काम का आकर्षण है। इसको बहुत सुंदर शैली में व्यवहारिकता, आधुनिकता व वैज्ञानिकता के साथ समझाया गया है, पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में। बहुत सुंदर रूपक कथाएँ हैं पुराणों में। मुझे लगता है कि कथा सुनाते समय मूल कथा के साथ उसमें दिए गए रूपक के रहस्य को भी डिकोड करके सुनाना चाहिए। इससे श्रोताओं को अधिक लाभ मिलेगा।

संध्या के द्वारा शिव से मांगे गए वरदान काम भाव से बचाव के लिए थे, शुद्ध प्रेमभाव से बचाव के लिए नहीं

ये मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि कई लोग काम के डर से संध्या के समय आपस में बातें भी नहीं करते। सन्ध्या के द्वारा लज्जित होकर तप करने का अर्थ है, लंबे समय तक आध्यात्मिक लोगों द्वारा संध्या के समय आध्यात्मिक साधनाएं करना। इसकी जरूरत इसलिए पड़ी क्योंकि उन लोगों ने काम को अपनाया था, शुद्ध प्रेम को नहीं। शुद्ध प्रेम तो अपने आप में तप ही है। संध्या के द्वारा तीन वरदान मांगे गए, जो शिव के द्वारा पूरे किए गए। पहले वरदान, पैदा होते ही किसी जीव में कामवासना पैदा न होने का अर्थ है कि जिस घर मे संध्या वंदन होता है, उस घर मे पैदा हुए बच्चों में उच्च कोटि के आध्यात्मिक संस्कार होते हैं। उनमें जन्म से ही अपने आप ही कुंडलिनी बनी होती है। वह कुंडलिनी उन्हें कामवासना से बचा कर रखती है। या यूँ कहो कि उनकी कुंडलिनी कामभाव को प्रेमभाव में रूपांतरित करती रहती है। दरअसल संध्या के पैदा होते ही कामदेव के प्रभाव से उसपर ब्रह्मा और उनके पुत्र आसक्त हो गए थे। संध्या का समय बहुत छोटा होता है। इसका अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। यह दो प्रकार के विपरीत समयों के संयोग से बनता है। इसलिए इसके बड़े और जवान होने का प्रश्न ही नहीं होता, क्योंकि यह पैदा होते ही विलीन होने लगता है। दूसरा वरदान कि मेरे कुल में कोई भी कामासक्त न होए, इसका भी यही अर्थ है कि बेशक संध्या वंदन करने वाले लोगों के घरों के सदस्य किसी कारणवश कामभाव का प्रदर्शन करें, पर वे कामासक्त नहीं होते, मतलब कामदेव के प्रभाव में आकर किसीके ऊपर लट्टू नहीं हो जाते। तीसरा वरदान कि मेरे कुल की सभी स्त्रियां पतिव्रता होएं, इसका अर्थ है कि जो लोग संध्यावंदन करते हैं, उनकी कुंडलिनी बहुत विकसित और मजबूत होती है। इसी कुंडलिनी के कारण ही वे अपनी पत्नियों को पूर्ण संतुष्ट रख पाते हैं। यह तो वैज्ञानिक व तांत्रिक रूप से सत्य है कि यौन संतुष्टि और यौन क्रीड़ाओं पर पूरा नियंत्रण कुंडलिनी से ही प्राप्त होता है। एक वरदान शिव ने संध्या को यह भी दिया कि जो उसकी ओर काम भाव से देखेगा, वह नपुंसक हो जाएगा और उसकी शक्ति नष्ट हो जाएगी। इसका भी यही तात्पर्य है कि जो सन्ध्या के समय भोगों को आसक्ति से या उन्हें कुंडलिनी के बिना भोगेगा, वह मोहमाया के भ्रम में पड़कर अपनी आत्मा के अंधकार को बढ़ाएगा। कुंडलिनी के प्रति रति ही कामभाव या आसक्ति भाव को नियंत्रण में रखती है। सन्ध्या शब्द यहाँ ऐसे सभी समयों के लिए इंगित किया हुआ प्रतीत होता है, जिस समय

आदमी सन्तुलित होता है, उसकी इड़ा और पिंगला नाड़ी बराबर चलती है, मन की कुंडलिनी मजबूत होती है, और मन में गहरी शांति छाई होती है।

प्रेम और काम एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं

हर जगह प्रेम करते रहने से काम भाव में वृद्धि होती है। वह काम भाव जीवनसाथी के साथ मिलकर परिपक्व होकर प्रेम को और अधिक बढ़ाता है। तंत्रयोगी उस कामजनित प्रेम को कुंडलिनी प्रेम में रूपांतरित करते रहते हैं। तंत्रयोगी का केवल एक ही जीवनसाथी या यौनसाथी इसलिए होता है, ताकि कामजनित प्रेम उसकी कुंडलिनी को आसानी से हासिल होता रहे। अय्याश किस्म के आदमी का कामजनित प्रेम बहुत से यौनसाथियों में विभक्त हो जाता है, जिससे वह कुंडलिनी को नहीँ मिल पाता। इसीलिए कहते हैं कि एकपत्नीव्रत सबसे बड़ा व्रत है।इसके अलावा, यह यौन ऊर्जा है जिसकी कुंडलिनी के लिए जरूरत पड़ती है, न कि शारीरिक आकर्षण। बल्कि अतिरिक्त शारीरिक आकर्षण तो व्यक्ति को ऊर्जा के वास्तविक स्रोत से विचलित कर सकता है।

कुंडलिनी ही आदमी की असली सेवियर या रक्षक है

शिव के द्वारा संध्या के ऊपर कामासक्त ब्रह्मा को रोकने का अर्थ है कि आदमी को उस समय कुंडलिनी बचा लेती है। शिव यहाँ कुंडलिनी का प्रतीक है। वैसे भी कुंडलिनी आदमी को बुरे काम करने से रोकती ही है। यदि अनजाने या बहुत मजबूरी में कभी गलत काम हो भी जाए, तो कुंडलिनी उसका प्रायश्चित या पश्चाताप भी करवाती है। शिवपुराण में सभी के लिए शिव का ध्यान करना जरूरी बताया गया है। तो स्वाभाविक है कि ब्रह्मा भी शिव का ध्यान करते थे। इससे शिव उनकी कुंडलिनी बन गए, और कुंडलिनी रूप में वे ही ब्रह्मा को गलत काम से रोकने के लिए प्रकट हुए।

शिवपुराण एक तन्त्र पुराण ही है

शिवपुराण में सभी बातें और कथाएँ तन्त्र से सम्बंधित ही हैं। यह अलग बात है कि अधिकांश लोग उन्हें समझ नहीं पाते, क्योंकि वे रूपकों के रूप में हैं। ऐसा तन्त्र के दुरुपयोग को रोकने के लिए किया गया था। पुराण वेदों से निकलते हैं। इसका मतलब है कि तन्त्र का प्राचीनतम मूल स्रोत वेद ही हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष नियमावली के साथ व्यावहारिक तन्त्र बौद्धों में ही दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि हिंदुओं में तन्त्र की व्यावहारिक प्रथा लुप्त हो गई हो। अभी भी हिन्दुओं में यह प्रचलित है, पर इसे बहुत गुप्त रखा जाता है, जिससे आम लोगों को इसका पता ही नहीं चलता। बौद्धों में भी इसे छिपा कर रखा जाता था। पर आज के इस मरते ग्रह को देखकर कोई पुनर्जीवन देने वाली विद्या छिपाना मानवता के साथ धोखा होगा, ये बात उन्होंने समझ ली है।

उपरोक्त काम व प्रेम से सम्बंधित सिद्धांतों का अनुभवात्मक साक्ष्य

दोस्तों, मैं बहुत से लोगों से गहरा प्रेम करता था। कई। पर अपना जीवन मैंने संयमपूर्वक ही जिया। अब अपनी बड़ाई में ज्यादा भी क्या कहना, पर यदि इससे किसी को लाभ मिलता हो तो इसमें बुरा भी कुछ नहीं है। जैसा भी मैंने इस पोस्ट में बताया है, वह सब मेरे साथ घटित हुआ। यह सब मेरा अपना अनुभवात्मक वर्णन है, कोई पढ़ा-पढ़ाया नहीं। इन्हीं अनुभवों के बीच में मेरा वह क्षणिक आत्मज्ञान व कुंडलिनी जागरण भी शामिल था, जिसका वर्णन होमपेज पर

है। बेशक ये कुछ क्षणों के अनुभव थे, पर कुछ न होने से कुछ तो होना बेहतर है। और वैसे भी आत्म जागृति के अनुभव से ज्यादा महत्त्व तो आत्मजागृति से भरी जीवन दिनचर्या का है।

कुंडलिनी एक सर्वोत्तम गुरु व बिंदु के रूप में है, जो सर्वलिंगमयी देह और कुम्भक प्राणायाम के साथ बहुत पुष्ट होती है

दोस्तों, मेरी पिछली पोस्ट के कथन के सही होने का एक ओर प्रमाण मिल गया। शिवपुराण के अगले ही अध्याय में है कि अग्नि में भस्म होने के बाद संध्या नामक नारी सूर्यमंडल में प्रविष्ट हो गई। उसके वहाँ दो टुकड़े हो गए। ऊपर वाले टुकड़े से सुबह का संध्याकाल बना, और नीचे वाले भाग से शाम का सांध्यकाल बना। फिर लिखा है कि रात और सूर्योदय के बीच का दिन का समय प्रातः संध्या का होता है, और सूर्यास्त व रात्रि के बीच का समय सायंकालीन संध्या का होता है। मैंने पिछली पोस्ट में यह भी लिखा था कि कुंडलिनी कामभाव से बचा कर रखती है। इस पोस्ट में मैं यह बताऊँगा कि कुंडलिनी ऐसा कैसे करती है।

कुन्डलिनी सेक्सुअल एनर्जी को अपनी ओर आकर्षित करती है

कुन्डलिनी शरीर की एनर्जी को खींचती है। मैंने सेक्सुअल शब्द इसलिए जोड़ा क्योंकि यही एनर्जी शरीर में सर्वाधिक प्रभावशाली है। यह एक चुम्बक की तरह काम करती है। यदि आप किसी चक्र पर कुन्डलिनी का ध्यान करते हो, तो प्राण ऊर्जा खुद ही नाड़ी लूप में घूमने लग जाएगी, और कुन्डलिनी को मजबूत बनाएगी। कई लोग प्राण ऊर्जा को पहले घुमाते हैं, कई लोग कुन्डलिनी का ध्यान चक्र पर पहले करते हैं। दोनों का निष्कर्ष एक ही निकलता है।

वीर्य का तेज कुन्डलिनी को देने से कुन्डलिनी जीवंत हो जाती है

वीर्य का तेज मूलाधार चक्र में होता है। तेज का मतलब चमक व तीखापन होता है। यह बिल्कुल पारे की तरह होता है। तभी तो पारे का शिवलिंग बहुत शक्तिशाली होता है। एक पिछली पोस्ट में मैंने बताया था कि कैसे एक **पारद शिवलिंग** के पास ध्यान करने से मेरी कुन्डलिनी चमक गई थी।

बिंदु व बिंदु चक्र क्या है

बिंदु उसी वीर्य की बूंद को कहते हैं। बिंदु का शाब्दिक अर्थ भी बूंद ही होता है। बिंदु चक्र सहस्रार व आज्ञा चक्र के बीच में होता है, माथे के बीच से थोड़ा ऊपर पीछे तक। इसे बिंदु चक्र इसलिए कहते हैं क्योंकि यह सबसे अधिक वीर्य शक्ति प्राप्त करता है। ब्राह्मण लोग यहाँ चोटी बांधते हैं।

ज्योतिर्लिंग की ज्योति शिव के बिंदु से ही है

हिंदुओं में बारह ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध हैं। ये शरीर के बारह चक्रों को इंगित करते हैं। वास्तव में 12 चक्र होते हैं। आठवां बिंदु चक्र होता है। नवां, दसवां, ग्यारवां व बारवां चक्र थोड़ी-थोड़ी ऊंचाई के अंतराल पर सिर के ऊपर होते हैं। ये ज्योतिर्लिंग चक्रों की तरह देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर बने हैं। **वास्तव में देश भी एक शरीर की तरह काम करता है।** इसका पूरा विस्तार पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में है। इन स्थानों पर जो ज्योति है, वह बिंदु के तेज का प्रतीक है। वह बिंदु शिव के लिंग से उत्पन्न होता है। तभी इनका नाम ज्योतिर्लिंग है। बिंदु ने शिवलिंग को शिवचक्रों के साथ जोड़ दिया है। एक प्रकार से कह सकते हैं कि लिंग सभी चक्रों पर स्थापित हो गया है। इसे ही सर्वलिंगमय देह कहते हैं। एक **सर्वलिंग स्तोत्र** भी है। इसमें देश में स्थित अनगिनत प्रसिद्ध शिवलिंग स्थानों के नाम हैं। यह पूरे शरीर में बिंदु के तेज के व्याप्त होने के बारे में संकेत देता है।

चक्र कुन्डलिनी पर बिंदु तेज का आरोपण सांस रोककर नहीं करना चाहिए

बिंदु तेज के ध्यान के समय साँसें बहुत तेजी से चलने लगती हैं। रक्तचाप भी बढ़ जाता है। उस समय सम्भवतः कोई तेज शारीरिक व मानसिक क्रियाकलाप हो रहा होता है। मानसिक क्रियाकलाप तो कुन्डलिनी की चमक के रूप में प्रत्यक्ष दिखता ही है। यह ऐसे ही है, जैसे बिंदुपात के समय होता है। दिल की धड़कन भी उस समय बढ़ जाती है। यह अभ्यास साँस रोककर नहीं करना चाहिए। साँस रोकने से हृदय को क्षति पहुंच सकती है। यह ऐसे ही है जैसे कोई बिंदुपात के समय सांस रोकने का प्रयास करे। इससे दम घुटने का और भारी थकान का अनुभव होता है। इसलिए साँस रोककर किसी चक्र पर कुन्डलिनी ध्यान करने के बाद जब सांस सामान्य हो जाए, तभी रिलैक्स होकर चक्र कुन्डलिनी पर बिंदु तेज के आरोपण का ध्यान कर सकते हैं। दिल के रोगी, श्वास रोगी, उच्च रक्तचाप के रोगी भी इस अभ्यास को न करें। यदि करें, तो कम करें, सावधानी व सलाह से करें। **कुन्डलिनी चिंतन का सबसे सरल और सुरक्षित तरीका अद्वैत का चिंतन ही है।**

बिंदु कुन्डलिनी-रूप ही है

बिंदु और मन आपस में जुड़े होते हैं। दोनों का स्वभाव चमकदार और शक्तिरूप है। तभी तो जब बिंदु क्रियाशील होता है, तब मन में सुंदर और चमकदार विचार आते हैं। इसी बिंदु-क्रियाशीलता के लिए ही प्राणी प्रजनन की ओर आकर्षित होते हैं। कुन्डलिनी भी उसी मन का प्रमुख हिस्सा है। इसलिए वह भी बिंदु से शक्ति प्राप्त करती है। वास्तव में **मन का सर्वोच्च शिखर कुंडलिनी जागरण ही है**। इसीलिए संक्षेप में कहा जाता है कि जीव कुंडलिनी जागरण के लिए ही सभी क्रियाकलाप, मुख्य रूप से कामदेव संबंधी क्रियाकलाप करता है। **कुंडलिनी एक मानसिक चित्र है, जो एकप्रकार से पूरे मन का प्रतिनिधि या सैम्पल पीस है।** एक मानसिक चित्र का मतलब यह नहीं कि वह एक स्थिर चित्र ही है। यदि शिव के रूप का मानसिक चित्र है, तो वह पार्वती के साथ भी घूम सकता है, तांडव नृत्य भी कर सकता है, श्मशान में साधना भी कर सकता है, और अन्य जो कुछ भी। इसे प्रतिनिधि इसलिए कहा जा रहा है, क्योंकि इसको वश में करने से पूरा मन वश में हो जाता है, और इसको पूरी तरह हासिल करने से पूरा मन या यूँ कहो कि सबकुछ हासिल हो जाता है। मन में ही सबकुछ है। इसको पूरी तरह हासिल करने से सब कुछ हासिल हो जाता है। कुंडलिनी जागरण या इसे पूर्ण समाधि कह लो, यही कुंडलिनी या मन का पूरी तरह से हासिल होना है। इतनी सुंदर, व्यावहारिक, वैज्ञानिक और अनुभवात्मक परिभाषा आपको कुन्डलिनी की कहीं नहीं मिलेगी। चाहे आप किसी भी पुस्तक में या अन्य प्लेटफार्म पर ढूँढ लो। मुझे भी नहीं मिली थी। इसलिए मैं अंदाजा लगाकर ही कुन्डलिनी साधना करता रहा। जब कुन्डलिनी जागरण हुआ, तब पता चला। पतंजलि के ध्यान और समाधि के बारे में पता था, उसीको लेकर अभ्यास किया। पर कुन्डलिनी के बारे में कहीं नहीं मिला। इसको रहस्य बना कर रखा हुआ

था, और इसके बारे में जितने मुंह, उतनी बातें। तब पता चला कि कुन्डलिनी जागरण और पूर्ण समाधि एक ही चीज है। **पतंजलि ने जो किसी देवता या गुरु के चित्र या किसी भी प्रिय वस्तु के चित्र का मन में ध्यान करने को कहा है, वह कुंडलिनी ही है।** पुराने जमाने में तो इसे रहस्य बना कर रखने की प्रथा थी, ताकि इसका दुरुपयोग न हो। आज तो मुक्त समाज है। इसी से इस समर्पित कुन्डलिनी वैबसाइट को बनाने की प्रेरणा मिली। इससे जाहिर होता है कि किस हद तक **भ्रम** विद्यमान है, जैसा पहले मुझे भी था।

चक्रों पर लिंग की अनुभूति

यह अनुभूति तब होती है जब आदमी ने काफी व भारी परिश्रम किया हो, और उसने पेट से योग वाली साँसें काफी ली हों। केवल पेट से साँसें लेने से ही सबकुछ नहीं हो जाता। उसके साथ यह भी ध्यान करना पड़ता है कि साँस भरते समय अंदर जाती हवा के साथ प्राण नीचे जा रहा है, और पेट के आगे की तरफ फूलने से पिछले नाभि चक्र पर जो गड्ढा बनता है, वह अपान को नीचे से ऊपर खींच रहा है। इससे मणिपुर चक्र पर प्राण और अपान आपस में टकराते हैं, और सिकुड़न के साथ संवेदना पैदा करते हैं। प्राण-अपान की टक्कर के बारे में मैंने पिछली एक पोस्ट में बताया है। बाहर जाती हुई साँसों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे प्राण-अपान की टक्कर कमजोर पड़ती है। **वह संवेदना और सिकुड़न फिर पीठ से मस्तिष्क तक चढ़ती हुई सभी चक्रों को तरोताजा करती है।** वह फिर आगे से नीचे उतरकर आगे के चक्रों, विशेषकर नीचे वाले चक्रों को तरोताजा करती है। इससे ताजगी के अहसास के साथ एक गहरी साँस अंदर जाती है, और फिर साँसें शांत हो जाती हैं। खाली धौंकनी की तरह साँसें भरेंगे, तो इससे तो थकान ही बढ़ेगी। बेशक फायदा तो होगा, पर कम होगा। वैसे भी, परिस्थिति के अनुसार ही सांसें चलती हैं। **आदमी गलती करके खुद भी अच्छा सीखता रहता है।** कुछ न करने से अच्छा तो गलती करते रहो, पर गलती नुकसानदेह नहीं होनी चाहिये। पर कई बार जोर-जोर की साँसें बन्द ही न होने पर आदमी इमरजेंसी हॉस्पिटल सेक्शन में इस डर से चला जाता है कि कहीं उसके फेफड़े खराब होने से ऑक्सीजन का लेवल डाऊन तो नहीं हो रहा। मेरे साथ भी एकबार ऐसे ही हुआ था। वास्तव में वह किसी तनाव से व धौंकनी की तरह साँस लेने से होता है। ऐसा लगता है कि साँसों से संतुष्टि ही नहीं हो रही। कहीं भी कुन्डलिनी प्रकट होने पर, यदि उसके ध्यान के साथ एनर्जी लूप का भी ध्यान करो, तो जैसे ही कुन्डलिनी, लूप में घूमने लगती है, वैसे ही लूप में एनर्जी का संचार बढ़ जाता है। **एनर्जी कुन्डलिनी के साथ चलती है। वास्तव में, ज्यादातर मामलों में थकान के लिए ऑक्सीजन की कमी जिम्मेदार नहीं होती, बल्कि प्राण ऊर्जा का एक चक्र पर इकट्ठा होना होता है। इसे ही चक्र का ब्लॉक होना भी कहते हैं।** उस प्राण ऊर्जा को लूप चैनल में चलाने के लिए एक अच्छी सी गहरी सांस भी काफी होती है। एक औऱ नई बात बताऊँ। हम अंगड़ाई प्राण ऊर्जा को रिलोकेट करने और उसे गति देने के लिए ही लेते हैं। इसीलिए अंगड़ाई लेने से थकान दूर होने का अहसास होता है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि **हरेक तथ्य की गहराई में जाना चाहिए**। ऊपर से ही आधी-अधूरी बात समझने से लाभ की बजाय हानि भी हो सकती है। यही इस **कुन्डलिनी समर्पित वेबसाइट** का मकसद है। चक्र-लिंग की अनुभूति के लिए एक शर्त यह भी है कि उसका प्रतिदिन का कुन्डलिनी योगाभ्यास अनवरत जारी रहना चाहिए। यह अनुभूति तब ज्यादा बढ़ जाती है, अगर इसके साथ आनन्दमयी रतिक्रीड़ा के साथ बिंदु संरक्षण भी हो। 4-5 दिनों के आराम के बाद ऐसा करने से इस सर्वलिंगमयी अनुभूति की संभावना ज्यादा होती है। यह चक्रों पर मुख्यतः नाभि चक्र, अनाहत चक्र व विशुद्धि चक्र पर तीखी व आनन्दमयी अनुभूति होती है। यह चक्र पर एक आनन्दमयी तेज सिकुड़न की तरह प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि जैसे चक्रों पर बिंदुपात हो रहा हो। वास्तव में चक्र कोई भौतिक संरचना नहीं हैं। ये शरीर में वे स्थान हैं, जहां शक्ति घनीभूत हो जाती है, और एक आनन्दमयी संवेदना प्रकट करती है। आप चक्रों को शक्ति के जमावड़े अड्डे कह सकते हैं। वैसे भी, सारा खेल संवेदना का ही तो है। साधना से संवेदना को स्थानांतरित किया जा सकता है, और किसी भी चक्र पर संवेदना को पैदा किया जा सकता है।

प्राण और अपान आपस में जितनी तेजी व शक्ति से भिड़ेंगे, उनका मिश्रण उतना ही ज्यादा मजबूत होगा। जितना

ज्यादा उनका परस्पर मिलन होगा, उतना ज्यादा कुंडलिनी लाभ प्राप्त होगा। प्राण सत्त्वगुण का और अपान तमोगुण का प्रतीक है। ये दोनों गुण भी इसी तरह मिश्रित होना चाहते हैं। कुछ साल पहले की बात है। मुझे कुछ वीआईपी लोगों के साथ 1-2 दिनों के लिए रहना पड़ा। मन से तो नहीं चाहता था, क्योंकि वे ज्यादा ही खाने-पीने वाले थे। पर मजबूरी थी। हालांकि ऐसी चीजों के सीमित व नियंत्रित प्रयोग को मैं बुरा नहीं मानता। उनके खाने-पीने के दौरान मुझे उनके साथ बैठना पड़ा। वे तो अनलिमिटेड नॉनवेज खाकर और ड्रिंक करके नशे में धुत्त थे। उससे उस समय जैसे उनकी छुपी हुई तीसरी आंख खुल गई हो। वे मेरे मुंह के बारीक से बारीक भाव को भी आसानी से पढ़ रहे थे। मेरा बुझा हुआ सा मन उन्होंने पकड़ लिया। हल्की-फुल्की बातों को भी उन्होंने अपने खिलाफ समझ लिया। उस समय तो नशे में कुछ नहीं बोले, पर वे काफी समय तक मन में उसकी टीस रखते रहे। दरअसल नशे से और नॉनवेज से आदमी के अंदर बहुत ज्यादा तमोगुण छा जाता है। ऐसे में उसको बाहर से उतना ही ज्यादा सतोगुण देना पड़ता है। उससे जब तमोगुण और सतोगुण का मिलन होता है, तो वह बहुत ज्यादा आनन्द और आध्यात्मिक उन्नति अनुभव करता है, और सतोगुण प्रदान करने वाले का हमेशा के लिए मुरीद बन जाता है। यह लाभ सतोगुण वाले आदमी को भी मिलता है, क्योंकि उसे तमोगुणी से तमोगुण मिलता है। अर्थात दोनों प्रकार के लोगों से परस्पर एकदूसरे का हित स्वयं ही होता है। **इसीलिए हिंदु समाज में वर्णव्यवस्था थी।** वहाँ ब्राह्मण का गुण सतोगुण होता था, क्षत्रिय का रजोगुण, वैश्य का मिलाजुला और शूद्र का तमोगुण होता था। आज तो आदमी लगातार गुण बदलता रहता है। कभी सतोगुण, कभी रजोगुण और कभी तमोगुण आवश्यकतानुसार धारण कर लेता है। इसलिए हर किसी के वास्तविक गुण के बारे में संशय रहता है। इससे गुण मिलाप अच्छे से नहीं हो पाता, जिससे आध्यात्मिक उन्नति कम होती है। एक बात दिमाग में आई है। मुझे लगता है कि **गुण मिलान जैसा कि हिंदू विवाह से पहले किया जाता है,** यह वही बात है। यदि दोनों के गुण एक-दूसरे के साथ मिल जाते हैं, तो एक सुखद वैवाहिक जीवन का आगमन होता है, अन्यथा गुणों के टकराव के कारण वैवाहिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। यह सतोगुण रोमांचित रह के, शालीनता दिखा के, और भी सारे दैवीय गुणों का प्रदर्शन करके प्रदान किया जा सकता है। साथ में उदारता और समर्पण का मानसिक भाव भी होना चाहिए। अहंकार व संकुचित भाव नहीं होना चाहिए। इससे तो वह उल्टा ज्यादा नाराज हो जाएगा। उसे लगेगा कि यह अपना सतोगुण अपने तक ही सीमित रखना चाहता है, मेरे तमोगुण से नहीं मिलाना चाहता। इसके विपरीत, यदि उसके सामने तमोगुण वाले भाव जैसे अवसाद, अरुचि, घृणा आदि दिखाए जाएं, तो उसका तमोगुण और ज्यादा बढ़ जाएगा। इससे वह खुद भी गंभीर अवसाद में जा सकता है। उनके साथ अन्य लोग जो खा-पी कर भी झूठमूठ में ही उनके सामने सतोगुण की एक्टिंग कर रहे थे और उन्हें बढ़िया से मक्खन लगा रहे थे, उनकी बल्ले-बल्ले। ऐसा मेरे साथ कॉलेज में भी कई बार होता था। इससे जाहिर होता है कि दुनिया प्यार से व मिलजुलकर ही अच्छी चलती है। हिन्दू पौराणिक **समुद्रमंथन** इसका अच्छा उदाहरण है।
मैं कभी पुरुष भाव और महिला भाव दोनों को मन में संतुलित रखता था। तब पुरुष जगत ने मुझे प्रताड़ित किया। अंत में मैंने स्त्री भाव मन से हटा दिया, और विरोधियों को करारा जवाब दिया। नतीजा, मेरा आधा चला गया था। अधूरापन। शादी के बाद मुझे मेरा वो खोया हुआ आधा मिल गया। मैं खुश हूं। चिंता मत करो। आप अकेले पूर्ण हो सकते हैं, या दूसरों की मदद ले सकते हैं। चुनना आपको है। एक ही बात है। हालांकि **गुणवत्ता साझाकरण** पहली नज़र में अधिक कुशल तरीका प्रतीत होता है।

कुन्डलिनी सर्वोत्तम गुरु है, जो योग में दिशानिर्देशन करती है

मुझे कुम्भक प्राणायाम का किताबी ज्ञान कभी समझ नहीं आया। मुझे तो यह भी ढंग से पता नहीँ था कि **सांस रोकने को कुम्भक कहते हैं।** कुन्डलिनी ने ही मुझे चक्रों पर सांस रोकने के लिए बाध्य किया, क्योंकि उससे वह बहुत तेजी से चमकती थी। आनन्द छा जाता था। मन हल्का और साफ हो जाता था। मैंने एक पिछली पोस्ट में इसका वर्णन किया है, जहां मैं इसे साँस रोककर प्राण और अपान की टक्कर का नाम दे रहा हूँ। हो सकता है कि उस टक्कर का भी कोई लिटेरल नाम हो। बोलने का मतलब है कि खुद अपने हिसाब से करना चाहिए। फिर जब मैंने कुम्भक नाम को गूगल पर सर्च किया तो पहले ही सर्च पेज पर किताबी ज्ञान तो बहुत मिला, पर किसीका अपना

व्यावहारिक अनुभव नहीं था। उदाहरण के लिए वहां लिखा था कि साँसों को झटके से नहीं छोड़ना चाहिए। मैंने तो ऐसा कभी नहीं सोचा। हम क्या दौड़ लगाते हुए साँसों को झटके से नहीं छोड़ते। फेफड़े इतने नाजुक भी नहीं होते। किताबी ज्ञान में कई बातें होती हैं, जिनसे भ्रम की स्थिति पैदा हो सकती है। यदि झटकों के डर से कोई कुम्भक ढंग से नहीं कर पाया, तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इसी तरह, मैं ध्यान लगाते समय जरूरत के हिसाब से हिलता डुलता भी हूँ, ताकि बैठने में आसानी हो और कुंडलिनी पर अच्छे से ध्यान लग सके। **किताबी ज्ञान** में तो खम्भे की तरह बिल्कुल स्थिर रहने को कहा है। हो सकता है कि कोई स्थिर न रह पाने की वजह से ध्यान ही न लगा पाता हो, यह सोचकर कि स्थिरता के बिना ध्यान हो ही नहीं सकता। ऐसी कई बातें हैं, जिनसे **भ्रम** पैदा हो सकता है। इसलिए पूरा और स्पष्ट लिखना या कहना जरूरी है। योग के मामले में लचीलापन होना जरूरी है। फिर भी अध्ययन से लाभ तो मिलता ही है, चाहे वह किसी भी गुणवत्ता का हो। कुछ न होने से कुछ होना बेहतर है। आज मैंने इसी सतही ज्ञान को पढ़कर योग करते हुए साँस को धीमा व गहरा किया तो बहुत लाभ मिला, बेशक समय कुछ ज्यादा लगा। निष्कर्ष यह निकलता है कि कुन्डलिनी अपने हिसाब से खुद योग सिखाती रहती है। पढ़ने को भी वही प्रेरित करती है। **इसलिए यदि कुन्डलिनी का सही मतलब पता चल जाए तो आधे से अधिक योग का सफर तय हो जाता है।** यही इस वेबसाइट का मूल उद्देश्य है।

हे! पर्वतराज करोल [भक्तिगीत-कविता]



King Mount Karol 【Parvatraj Karol】 rising with Sun {photo by Jaswinder kaur}

हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल।

सुबह-सवेरे जब भी उठता
तू ही सबसे पहले दिखता।

सुबह-सवेरे जब भी उठता
तू ही सबसे पहले दिखता।
सूरज का दीपक मस्तक पर
ले के जग को रौशन करता।
सूरज का दीपक मस्तक पर
ले के जग को रौशन करता।
सूरज को डाले जल से तू
सूरज को डाले जल से तू
सूरज संग नहाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल।

काम बोझ से जब भी थकता
सर ऊपर कर तुझको तकता।
काम बोझ से जब भी थकता
सर ऊपर कर तुझको तकता।
दर्शन अचल वदन होने से
काम से हरगिज़ न रुक सकता।
दर्शन अचल वदन होने से
काम से हरगिज़ न रुक सकता।
कर्मयोग का पावन झरना
कर्मयोग का पावन झरना
पल-पल तूने बहाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।

हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल।

बदल गए सब रिश्ते नाते
बदल गया संसार ये सारा।
बदल गए सब रिश्ते नाते
बदल गया संसार ये सारा।
मित्र-मंडली छान के रख दी
हर-इक आगे काल के हारा।
मित्र-मंडली छान के रख दी
हर-इक आगे काल के हारा।
खुशकिस्मत हूँ तेरे जैसा
खुशकिस्मत हूँ तेरे जैसा
मीत जो मन का पाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल।

सबसे ऊंचे पद पर रहता
कहलाए देवों का दे -वता।
सबसे ऊंचे पद पर रहता
कहलाए देवों का दे -वता।
उठकर मूल अधार से प्राणी
रोमांचित मस्तक पर होता।
उठकर मूल अधार से प्राणी
रोमांचित मस्तक पर होता।
सब देवों ने मिलकर तेरा
सब देवों ने मिलकर तेरा
प्यारा रूप बनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।

हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल।

जटा बूटियाँ तेरे अंदर
नाग मोरनी मानुष बंदर।
जटा बूटियाँ तेरे अंदर
नाग मोरनी मानुष बंदर।
गंगा नद नाले और झरने
नेत्र तीसरा भीषण कन्दर।
गंगा नद नाले और झरने
नेत्र तीसरा भीषण कन्दर।

चन्द्र मुकुट पर तोरे सोहे
बरबस ही मोरा मन मोहे।
चन्द्र मुकुट पर तोरे सोहे
बरबस ही मोरा मन मोहे।
उपपर्वत नीचे तक जो है
नंदी वृष पर बैठे सोहे।
उपपर्वत नीचे तक जो है
नंदी वृष पर बैठे सोहे।

बिजली सी गौरा विराजे
कड़कत चमकत डमरू बाजे।
बिजली सी गौरा विराजे
कड़कत चमकत डमरू बाजे।
आंधी से हिलते-डुलते वन
नटराजन के जैसे साजे।
आंधी से हिलते-डुलते वन
नटराजन के जैसे साजे।

बाघम्बर बदली का फूल
धुंध बनी है भस्म की धूल।
बाघम्बर बदली का फूल
धुंध बनी है भस्म की धूल।
गणपत जल बन बरसे ऊपर
ऋतु मिश्रण का है तिरशूल।
गणपत जल बन बरसे ऊपर

ऋतु मिश्रण का है तिरशूल।

मन-भावन इस रूप में तेरे
मन-भावन इस रूप में तेरे
शिव का रूप समाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
जब जग ने ठुकराया
तू-ने अपनाया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल
तेरा अद्भुत साया।
हे! पर्वतराज करोल।
-हृदयेश बाल🙇🙇bhishm

कुन्डलिनी या ध्यान-बिंदु के लिए विज्ञानवादी सोच, गहन अन्वेषण, अभ्यास, धैर्य, प्रेमपूर्ण संपर्कों, अध्ययन-चर्चाओं, और गुरु-देवताओं-महापुरुषों-अवतारों औरमन में बने उनके मानसिक चित्रों की आवश्यकता

दोस्तों, मैंने पिछली पोस्ट में कहा था कि साँसें कैसे लेनी चाहिए। इसीको थोड़ा और जारी रखते हैं। मुझे लगातार समर्पित योग करते हुए लगभग चार साल हो गए हैं। उससे पहले भी मैं लगभग 15 सालों से हल्का फुल्का योग प्रतिदिन करता आ रहा हूँ। अब जाकर मुझे लगता है कि मैं साँस लेना सीखा हूँ। वैसे अभी भी सीख ही रहा हूँ। सीखना कभी खत्म नहीं होता। कहना तो आसान है कि सांस लेने को ही योग कहते हैं। पर इसमें लम्बे अभ्यास की आवश्यकता होती है। अब समझा हूँ कि साँस भरने के बाद सांस को कुछ देर रोकने के लिए क्यों कहते हैं। पहले तो मैं इसे फिजूल का काम समझता था। दरअसल जब साँस भरने से प्राण और अपान का आपस में टकराव हो रहा होता है, तो उस टकराव को चरम तक पहुंचने के लिए थोड़ा सा वक़्त लगता है। उस समय साथ में टकराव का चिंतन भी होता रहे, तो और ज्यादा लाभ मिलता है। उससे कुंडलिनी ऊर्जा शक्तिशाली झटके के साथ ऊपर को चढ़कर आगे से नीचे उतरकर एनर्जी लूप में घूमने लगती है। वह एकदम से तरोताजा कर देती है। इसी तरह, साँस को धीरे-धीरे और लंबे समय तक अंदर भरें, ताकि प्राण और अपान अच्छे से आपस में मिल जाए। सांस को भी धीरे धीरे करके बाहर छोड़े, क्योंकि कुंडलिनी ऊर्जा को नीचे उतरते हुए समय लगता है। कुन्डलिनी भौतिक नाड़ियों में भौतिक द्रव्यों के साथ ही तो चलती है। इसलिए नाड़ियों के प्रवाह को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने के लिए समय तो लगेगा ही। इसी तरह साँस पूरा छोड़ने के बाद जितनी देर सम्भव हो, उतनी देर सांस को रोककर रखें। इससे कुंडलिनी पूरा नीचे उतरकर स्वाधिष्ठान चक्र पर जमा हो जाती है, और जैसे ही मूलाधार को संकुचित करते हैं, वह मूलाधार को उतरकर पीठ से सहस्रार को चढ़ जाती है। वहाँ से वह साँस भरते समय प्राण के साथ लगभग हृदय चक्र तक नीचे उतरती है। वहां वह नीचे से आ रहे अपान से टकराकर तेज चमकने लगती है। फिर जब सांस छोड़ते समय छाती व पेट नीचे को उतरते हैं, तो वह भी नीचे उतरकर स्वाधिष्ठान चक्र पर पहुंच जाती है। फिर से वही पिछली प्रक्रिया रिपीट होती है। इस तरह से एक ऑटोमेटिक मशीन की तरह यह कुंडलिनी चक्र चलता रहता है, और आदमी आनन्द में मग्न रहता है। उलटी जीभ को नरम तालु से टच करके रखने से प्रवाह ज्यादा अच्छा हो जाता है। पेट व छाती को ऊपर नीचे जाते देखते हुए ध्यान करने में अतिरिक्त सहायता मिलती है। कई लोग तो कुन्डलिनी को नाभि और मूलाधार के बीच में ही घुमाते रहते हैं। कई बार ऐसी परिस्थितियां या शरीर के ऐसे पोस्चर होते हैं, जिसमें पेट से न चलकर साँस छाती से चलती है। उस समय साँस भरने पर छाती फूलती है, जो कुंडलिनी मिश्रित अपान को नीचे से ऊपर खींचती है। अंदर जाती हुई साँस के साथ कुंडलिनी मिश्रित प्राण ऊपर से नीचे छाती तक उतर जाता है। छाती में दोनों के टकराव से वहाँ कुंडलिनी ज्यादा स्पष्ट हो जाती है, और साथ में थकान से पैदा तनाव भी दूर हो जाता है। इसी तरह, कई बार अंदर जाती साँस से छाती और पेट दोनों एकसाथ आगे को फूलते हैं। इससे भी कुंडलिनी ऊर्जा पर अच्छा खिंचाव बनता है।

कुंडलिनी सुषुम्ना से ही ऊपर चढ़ती है, यद्यपि अन्य नाड़ियाँ भी इसमें सहयोग करती हैं

जब मेरी पीठ से कुंडलिनी ऊर्जा ऊपर चढ़ती है, तो मैं उसे रोकता नहीं, बेशक वह किसी भी नाड़ी पर या स्थान पर हो। दरअसल पीठ की केंद्रीय रेखा ही सुषुम्ना नाड़ी है। यह पीठ की अन्य दोनों मुख्य किनारे की रेखाओं या नाड़ियों से भी जुड़ी होती है। और भी कोई भी नाड़ी रेखा या बिंदु हो, सबसे जुड़ी होती है। वास्तव में सभी नाड़ियाँ आपस में नाड़ी जालों से जुड़ी होती हैं। तभी तो जब मुझे पीठ में कहीं भी कुंडलिनी ऊर्जा का आभास होता है , तो मैं उस अनुभव को रोकता नहीं हूँ। केवल इसके साथ अगले आज्ञा चक्र पर और मूलाधार संकुचन पर तिरछी नजर बना कर रखता हूँ। ऐसा करने से धीरे से कुंडलिनी फिसलकर सुषुम्ना में आ जाती है, और ऊपर सहस्रार तक जाकर वहाँ से नीचे जाती है और फिर लूप में घूमने लग जाती है। बस ऐसा ध्यान बना रहना चाहिए। कई बार क्या होता है कि यदि कुंडलिनी ऊर्जा पीठ या सिर में बाईं तरफ हो , तो उपरोक्त ध्यान करने से वह पहले दाईं तरफ जाती है , फिर संतुलित होकर बीच वाली सुषुम्ना में फिट हो जाती है। हालांकि ऐसा थोड़े समय ही रहता है, क्योंकि ऊर्जा का वेग जल्दी से घटता रहता है। इसको कुण्डलिनी जागरण समझ कर भ्रमित नहीं होना चाहिए। यह तो साधारण सी ऊर्जा की गति है, हालाँकि जागरण में भी ऐसा ही घटनाक्रम होता है, पर वह चरम पर होता है। ऐसी ऊर्जा की गति सभी में चली रहती है। पर सब इसे नहीं पहचानते, और न ही इस पर ध्यान देते हैं। इसी से तो आदमी जिंदा रहता है। सम्भवतः प्राणविद्या भी इसी प्राण के प्रवाह से मृत जीव को जिंदा कर सकती है। मैंने एक पुराने दोस्त से सुना था कि उसने इलाहाबाद के कुम्भ मेले में एक तन्त्रयोगी को एक मृत पक्षी को प्राणविद्या से जिंदा करते देखा था। इसके सच झूठ का तो पता नहीं पर हिंदु पुराणों में इससे संबंधित बहुत सी कथाएं हैं। संजीवनी विद्या भी शायद यही प्राण विद्या रही होगी, जिससे राक्षसगुरु शुक्राचार्य देवताओं से लड़े युद्ध में मरे राक्षसों को जिंदा किया करते थे। ऐसी रूपक कथाओं के आधार में कोई न कोई वैज्ञानिक तथ्य जरूर होता है। ये लोगों को योग की तरफ आकर्षित करने के लिए बनाई होती हैं। पर कई लोग इसका उल्टा मतलब लेकर विज्ञान और योग को नकारने लग जाते हैं। ऐसे ही जम्हाई लेना भी ऐसा ही ऊर्जा का प्रवाह है। तभी उससे थकान दूर होती है। आदमी कैसे हाथ ऊपर उठाकर, पीठ व गर्दन को सीधा करके, नाभि की सीध में गड्ढा बनाकर, मुँह खोलकर, आंखें भींचकर, आज्ञाचक को सिकोड़कर कुंडलिनी ऊर्जा को पीठ में ऊपर चढ़कर मस्तिष्क तक पहुंचने में मदद करता है। यही फर्क है कि योगी इसकी गहराई में जाता है कि यह क्या है, कैसे हुआ, क्यों हुआ और इससे कैसे अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। न्यूटन से पहले भी बहुत से लोगों ने पेड़ से सेब गिरते देखा था, पर उसकी गहराई में न्यूटन ही गया। आम आदमी इसे साधारण समझ कर छोड़ देता है। योगी भी एक वैज्ञानिक होता है, खासकर मनोवैज्ञानिक। जम्हाई तरोताजा करने वाला कुदरत का नायाब तोहफा है।

संगम के समय संगम के साथ संगम करने वाले दोनों घटकों पर ध्यान देने की आवश्यकता

पिछली पोस्ट में मैं संध्या आदि संगम कालों और स्थानों के बारे में बात कर रहा था। उन पर ऐसे ही ध्यान देना पड़ता है जैसे प्राण और अपान के टकराव पर, तभी लाभ मिलता है। ऐसे तो मुर्गा संध्या से पहले ही उठ जाता है, उसे संध्या का लाभ क्यों नहीं मिलता। क्योंकि उसकी संध्या में श्रद्धा नहीं है। आदमी यदि तकनीकी पहलू को न समझे , तो कम से कम श्रद्धा तो होनी ही चाहिए। दरअसल संध्या के मध्यम प्रकाश पर ध्यान की स्थिति में दिन की पूरी चमक और रात के पूरे अंधेरे पर भी ध्यान जाता रहना चाहिए, तभी संध्या में दिन और रात की आपस में टक्कर होगी, और आपस में मिश्रित होकर कुंडलिनी की चमक के साथ आंनद पैदा करेंगे। इसी तरह इलाहाबाद के संगम के पानी में बहुत से मेंढ़क और मछलियां रहती हैं, उनकी तो मुक्ति नहीं होती। वहाँ भी ऐसे ही होता है। यह हरेक संगम

के बारे में तो है ही, साथ में हरेक धार्मिक रीत के बारे में भी है। इससे पता चलता है कि धर्म के वैज्ञानिक तकनीकी पहलू का ज्ञान कितना जरूरी है। यही ज्ञान ढूंढना इस वेबसाइट का काम है।

योग को खुद योग ही बेहतर सिखाता है

योग-आसनों के बारे में मुझे इस हफ्ते कुछ नए व्यावहारिक अनुभव मिले। मिले तो पहले भी थे, पर इतने स्पष्ट नहीं थे। पहले मैं जल्दी-जल्दी और उथले साँस लेता था। इस बार प्राणायाम की तरह गहरे और धीरे लिए। एकप्रकार से प्राणायाम भी आसनों के साथ होने लगा। एकसाथ दो लाभ। पहले मैं एक पोज़ में 20–30 बार छोटी, जल्दी और उथली साँसें लेता था। पर अब सिर्फ 2-3 बार ही ले पाया। इतना ज्यादा फर्क था। समय के साथ योग खुद अपने आप को सिखाता है। इसलिए जैसे ठीक लगे, वैसे करते रहना चाहिए। हालाँकि मैंने कहीं ब्लॉग में पढ़ा था कि योग गुरु अय्यंगर योग आसनों के साथ ही प्राणायाम भी सिखाते थे। अब पूरी सच्चाई का पता चला। फिर भी सावधान रहना पड़ता है। अपनी सुखपूर्वक सामर्थ्य को नहीं लांघना चाहिए। मेरा ज्यादातर समय योग अभ्यास में ही बीत जाता है। मेरे लिए यह जरूरी भी है। मैं इसके बिना स्वस्थ नहीं रह सकता। मुझे एनकाइलॉजिंग स्पॉन्डिलाइटिस, एक ऑटोइम्यून डिसीज है। इसमें आदमी हमेशा हरकत में रहना चाहिए। शरीर के जोड़ों खासकर छाती और पीठ के जोड़ों को जाम होने से बचाने के लिए व थकान पर काबू पाने के लिए नियमित व्यायाम होता रहना चाहिए। अवसाद, व अन्य मानसिक दोषों से बचाव के लिए कुंडलिनी ध्यान, प्राणायाम से लाभ मिलता है। यही इसका मुख्य उपचार है। इसीके बहाने मैं थोड़ा बहुत योग सीख पाया। मन को मनाने के लिए कोई बहाना अच्छा रहता है।

कुन्डलिनी, कर्मयोग और विज्ञान आपसी अंतरंग रिश्ते से जुड़े हैं

लोग अक्सर बोलते हैं कि अध्यात्म विज्ञान का विषय नहीं है। मैं कहता हूँ कि बिल्कुल है। कुंडलिनी जागरण तक तो बहुत ज्यादा है, पर उसके बाद भी काफी है। कुन्डलिनी जागरण के बाद व्यक्तिगत विज्ञान की जगह सार्वभौमिक या ब्रह्मांडीय विज्ञान ले लेता है। इससे उसे अनायास ही अनुकूल परिस्थितियां मिलने लगती हैं, और खुद ही उसका भला होने लगता है। ऐसा कुन्डलिनी की ईश्वरीय शक्ति के कारण होता है। हालाँकि इसकी भी अपनी सीमाएं और बाध्यताएं हैं। इससे व्यक्तिगत विज्ञान का बोझ थोड़ा हल्का हो जाता है। कुन्डलिनी को प्राप्त करने के लिए और उसे क्रियाशील रखने के लिए कर्मयोग की जरूरत पड़ती है। कर्मयोग उतना ही अच्छा होगा, जितनी अधिक काम की गुणवत्ता व विशेषता होगी। विज्ञान ही कर्मों को गुणवत्ता, विशेषता व उच्चता प्रदान करता है। इसलिए अध्यात्म और विज्ञान साथ-साथ ठीक चलते हैं। मैं खुद विज्ञान का एक सनकी खिलाड़ी हुआ करता था। जहाँ कोई विज्ञान की कल्पना नहीं करता था, मैं वहाँ भी विज्ञान को फिट कर लेता था। मेरे अध्यापक मुझे मजाक में कहते कि दोस्त तू तो हर जगह विज्ञान लड़ा देता है। क्योंकि विज्ञान कुंडलिनी के लिए जरूरी है, इसीलिए विज्ञानपरक खासकर पाश्चात्य प्रकार वाली सभ्यता के लोग कुंडलिनी जिज्ञासु होते हैं। पर उनमें से अधिकांश लोग स्वास्थ्य संबंधी बाहरी योग के विज्ञान को ही समझते हैं। वे ध्यान के विज्ञान को कम समझते हैं। वे जितना दिमाग और एनर्जी बाहरी विज्ञान पर लगाते हैं, उसका थोड़ा भी हिस्सा अगर भीतरी विज्ञान पर लगाएं, तो सारे महान कुंडलिनी योगी बन जाएं। पर अब मनोविज्ञान के रूप में धीरे धीरे कुंडलिनी विज्ञान को समझ रहे हैं। इसीलिए तो ध्यान का कोई संतुष्टिजनक अनुवाद अंग्रेजी में नहीं मिलता। मेडिटेशन या कंसन्ट्रेशन शब्द से काम चलाना पड़ता है। दरअसल मेडिटेशन ध्यान को सुगम बनाने वाली पद्धति है, असली ध्यान नहीं। इसी तरह, कंसन्ट्रेशन का मतलब भौतिक वस्तुओं पर और थोड़े समय तक मन को केंद्रित करना है, एकमात्र मानसिक कुंडलिनी पर नहीं, और बहुत लंबे समय या पूरे जीवन भर एक ही मानसिक चित्र पर नहीं। इसलिए ध्यान शब्द को अंग्रेजी के शब्दभंडार में शामिल किया जाना चाहिए। संस्कृत का केवल एक ध्यान शब्द ही सारे योग को समेटे हुए है। यह है, तो योग है। यदि यह नहीं है, तो योग नहीं है। योग की बाकी चीजें तो

केवल ध्यान की सहायक भर ही हैं। ध्यान और कुंडलिनी को पर्यायवाची शब्द मान सकते हैं। प्रथम विश्व योगदिवस के आसपास एक ब्लॉग में पढ़ रहा था जिसमें एक भौतिकवादी सज्जन बड़े गर्व से कह रहे थे कि आजकल के भौतिकवादी लोग, खासकर पाश्चात्य प्रकार वाली सभ्यता के लोग योग के बाहरी अंगों तक ही सीमित रहेंगे। वे ध्यान की गहराई तक नहीं जाएंगे। तो अब मैं सोचता हूँ कि फिर उनका कुंडलिनी जागरण कैसे होगा। ध्यान के बिना हो ही नहीं सकता। बीच-2 में तो विरले लोगों को कुदरती संयोग से खुद भी ध्यान लग जाता है। पर बड़े पैमाने पर जागृति प्राप्त करने के लिए कृत्रिम रूप से ध्यान लगाना ही पड़ेगा। कुआं प्यासे के पास नहीं जाता, प्यासे को कुएँ के पास जाना पड़ता है। यदि प्यासा आदमी कुएँ के पास न जाए, तो आदमी की जान को ही खतरा है, कुएँ को कुछ नहीं होगा। इसी तरह यदि लोग ध्यान को न अपनाए, तो लोगों का नुकसान है, ध्यान का नहीं। इसलिए लाइफस्टाइल ही ध्यान वाला बनाना पड़ेगा। प्राचीन वैदिक परम्परा में ऐसा लाइफस्टाइल था। लगता तो ऐसा जीवन चरित्र अजीब है, पर सत्य भी यही है। सत्य को नकारा नहीं जा सकता।

कुन्डलिनी को बिंदु मानने से उसका ध्यान आसान हो जाता है

पिछली पोस्ट में मैंने बिंदु को कुंडलिनी रूप बताया था। कुंडलिनी का ध्यान बिंदु के रूप में इसलिए किया जाता है ताकि मूलाधार क्षेत्र में स्थित बिंदु की शक्ति कुंडलिनी को मिलती रहे। इससे महसूस होता है कि कुंडलिनी मूलाधार क्षेत्र पर स्थित मुख्य बिंदु स्थान से किसी नाड़ी के माध्यम से जुड़ गई है, बेशक कुंडलिनी कहीं पर भी क्यों न हो। ऐसा लगता है कि बिंदु ऊर्जा ऊपर चढ़ती हुई कुन्डलिनी को पुष्ट कर रही है। इसे ही आसुत यौन ऊर्जा भी कहते हैं। इससे यौनलिप्सा शांत हो जाती है, क्योंकि उसकी ऊर्जा को कुंडलिनी ने सोख लिया होता है। वैसे तो बिंदु की शक्ति पूरे मस्तिष्क को मिलती है, पर कुंडलिनी का ही ध्यान बिंदु के रूप में इसलिए किया जाता है, ताकि कुंडलिनी चित्र सबसे अधिक प्रभावी बना रहे, और दूसरे विचार इसके आगे दबे रहें। बिंदु एक द्रव पदार्थ है, इसलिए इसका प्रवाह अच्छा होता है। यह कुन्डलिनी के प्रवाह को भी बढ़ा देता है। साथ में मैं बता रहा था कि यदि कुंडलिनी का सही अर्थ समझ में आ गया, तो योग का आधे से अधिक सफर तय हो जाता है। जिस किसी बिरले खुशकिस्मत आदमी को अच्छे प्रेम संपर्क मिलते हैं, उसके मन में खुद ही कुंडलिनी चित्र बन जाता है। वह बेशक दुनियादारी में लाभ दिलाए और मन का चैन दे, पर उसे जगाना बहुत मुश्किल होता है। कई बार यौन प्रेमी के मजबूत चित्र के संयोग और वियोग से सीधा आत्मज्ञान भी मिल सकता है, बिना कुंडलिनी जागरण के। पर ऐसा बहुत ही विरले मामले में होता है। जगाने के लिए तो किसी पसंदीदा व काल्पनिक देवता, पुराने और ब्रह्मलीन गुरु आदि के मानसिक रूप के चित्र को कुंडलिनी बनाकर उसका नियमित ध्यान करना पड़ता है। यह आसान होता है, क्योंकि उनका प्रत्यक्ष भौतिक रूप विद्यमान नहीं होता, इसलिए वह ध्यान में बाधा नहीं पहुंचाता। कई वाममार्गी तांत्रिक अपने मन में इनके चित्र को मजबूत बनाने के लिए यौनसाथी का सहारा लेते हैं। कइयों को यह सहारा पिछले जन्मों के अच्छे कर्मों के कारण खुद ही मिल जाता है। दुनियादारी के प्रेम संपर्कों से आदमी को लोगों के चित्रों को मन में खुशी से रखने की आदत पड़ी होती है, जिससे उसे योग करते हुए कुंडलिनी ध्यान आसान लगता है। यह ऐसे ही होता है, जैसे यदि हम साँस रोककर अनाहत चक्र पर कुंडलिनी ध्यान कर रहे हों, तो हम मस्तिष्क के विचारों को नहीं रोकते, बल्कि उसके ध्यान के साथ मूलाधार चक्र का भी ध्यान करते हैं। इससे मस्तिष्क की शक्ति खुद ही नीचे उतरकर अनाहत चक्र पर कुण्डलिनी के रूप में चमकने लगती है। हृदय पर हाथ रखकर वहाँ कुंडलिनी का ध्यान आसान हो जाता है, और सिद्धासन में पैर की एड़ी से मूलाधार चक्र का। इसी तरह, हरेक चक्र पर ध्यान करते समय वहाँ हाथ या अंगुली लगाकर उसे आसान किया जा सकता है।

पतंजलि योगसूत्रों की सार्वभौमिक प्रामाणिकता

कुन्डलिनी खोजने के पीछे मेरा कोई स्वार्थ नहीं छिपा था। मुझे उसकी जरूरत भी नहीं लगती थी, क्योंकि मैं पहले से ही भरपूर आनन्द के साथ अद्वैत भाव वाला जागृत जीवन जी रहा था। हुआ यह कि संयोगवश मुझे कुछ अतिरिक्त

समय मिल गया। मेहनती तो मैं था ही, हर समय कुछ न कुछ करता रहता था। उस अतिरिक्त समय में मैंने अध्यात्म के बारे में पढ़ना शुरु किया। पतंजलि योग मुझे समझ आ गया था, पर इश्क-विश्क के और प्राकृतिक रूप वाला। मैं यह नहीं समझ पा रहा था कि बनावटी योगाभ्यास से किसीका मजबूत चित्र मन में कैसे बनाया जा सकता है। प्यार-मुहब्बत में तो वह खुद ही बन जाता है। इसलिए मैंने और भी योग की पुस्तकें पढ़ीं, ऑनलाइन योग मंचों पर चर्चाएं कीं, और साथ में योगाभ्यास भी करता रहा। एक बार तो मैं निराश होकर पतंजलि योगसूत्रों की प्रामाणिकता पर ही प्रश्नचिह्न लगाने लग गया था। फिर मंच पर एक अमेरिका में बसे भारतीय मूल के एक वृद्ध सज्जन ने मुझे थोड़े गुस्से में टोकते हुए बोला था, "आप ये कैसे कह सकते हैं? सैंकड़ों सालों से लोग उस पुस्तक से फायदा उठाते आए हैं। आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए"। मैंने झूठा स्पष्टीकरण देते हुए अपना बचाव किया था कि मैंने पतंजली के ऊपर संदेह नहीं किया था, पर मैं उनके बारे में कह रहा था, जो पतंजली योगसूत्रों की गलत व्याख्या करते थे। इससे वे संतुष्ट हो गए। शायद इस चर्चा ने भी मुझे इस पुस्तक की तह तक जाने में मदद की हो। तंत्र की पुस्तकें भी पढ़ीं, और उसका भी सहारा लिया। फिर भी मैं मस्त रहता था। कुन्डलिनी का पता चले तो भी ठीक, न पता चले तो भी ठीक। पर मेहनत रँग लाई, और उसका पता चल गया। बेशक मैं उसे ज्यादा देर नहीं झेल पाया। यदि झेल लेता तो शायद आप लोगों को कुछ बताने लायक रहता ही नहीं। सब एक दिव्य योजना का हिस्सा है। फिर मुझे पता चला कि पतंजलि योगसूत्रों में बिल्कुल पूरा का पूरा सही लिखा है। यद्यपि उसे व्यावहारिक रूप से आम आदमी के लिए समझना मुश्किल है। इसलिए इसमें थोड़ी मदद कर देता हूँ। यह भी पता चला कि आम समाज में योग के बारे में किताबी ज्ञान ज्यादा फैलता है, योगाभ्यास नहीं। पर योग का अधिकांश हिस्सा व्यावहारिक योगाभ्यास ही है।

कुंडलिनी जागरण मुख्य ध्येय होना चाहिए, ऊर्जा जागरण या सुषुम्ना जागरण नहीं

मुझे लगता है कि अधिकांश लोग जो कुन्डलिनी जागरण का दावा करते हैं, वह वास्तव में ऊर्जा जागरण या सुषुम्ना जागरण होता है। इसीलिए वे कुन्डलिनी का वर्णन कम, और ऊर्जा का वर्णन ज्यादा करते हैं। कुन्डलिनी जागरण तो बिना सुषुम्ना जागरण के भी हो सकता है। हालांकि ऊर्जा तो सुषुम्ना से होकर ही ऊपर चढ़ती है, पर वह बैकग्राउंड में रहती है, अनुभव में नहीं आती। एकदम से जो ऊर्जा की नदी उनकी पीठ से होकर मूलाधार से सहस्रार तक उनके अनुभव में आती है, वह सुषुम्ना जागरण ही है। जब इतनी ऊर्जा मस्तिष्क में एकसाथ आएगी, तो कोई न कोई चित्र तो वहाँ चमक से कौंधेगा ही। ऐसा ही चित्र एकबार मेरे मस्तिष्क में भी चमका था, जब मेरा क्षणिक सुषुम्ना जागरण हुआ था। इसका विस्तृत वर्णन मैंने एक पुरानी पोस्ट में किया है। वह चित्र एक स्थानीय मन्दिर का था। वह बहुत जीवन्त चित्र था, पर जागरण जैसा नहीं। फिर कुन्डलिनी चित्र भी चमका, पर वह भी जागरण जितना नहीं था। जागरण के दौरान आदमी कुंडलिनी चित्र के साथ अपना पूर्ण जुड़ाव महसूस करता है, और साथ में महान आनंद व अद्वैत का अनुभव होता है। ज्यादातर लोग ऊर्जा साधना ज्यादा करते हैं, और कुन्डलिनी साधना कम। हालाँकि ये दोनों आपस में जुड़े हैं, पर मुख्य ध्येय तो कुन्डलिनी ही होना चाहिए। कुंडलिनी ही वह मानवीय चित्र है, जो एक सच्चे मित्र की तरह हमेशा साथ देता है। लोक में तो देता ही है, परलोक में भी देता है, क्योंकि यह सूक्ष्म है, जिसकी पहुंच हर जगह है। यही प्रेम और मानवता को बढ़ावा देता है। क्या आपने किसी प्रकाशमान ऊर्जा की नदी को, प्रकाश के चित्र-विचित्र डिसाईनों को किसी का मित्र बन कर सान्त्वना देते देखा है। मन की किसी मनुष्याकृति से पूर्ण जुड़ाव के बिना इस तरह के प्रकाश के अनुभव ऊर्जा जागरण या नाड़ी जागरण या सुषुम्ना जागरण के लक्षण हैं। मेरे को लगता है कि इन चीजों से पूर्ण जुड़ाव या पूर्ण समाधि बहुत कम अनुभव होता है , यदि हो भी जाए तो विशेष लाभ नहीं मिलता। हाँ, इतना जरूर है कि इससे कुंडलिनी साधना में बहुत मदद मिलती है, यदि कोई मदद लेना चाहें तो। मुझे लगता है कि इन चीजों के साथ प्रत्यक्ष और पूर्ण विलय या पूर्ण समाधि के अनुभव के दुर्लभ मामले हैं, और अपूर्ण विलय के साथ कोई तत्काल लाभ नहीं दिखता है। यद्यपि अद्वैतता के कारण प्रत्येक जागृति में अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित वस्तुओं के साथ पूर्ण विलय होता है, लेकिन विलय की मुख्य और प्राथमिक वस्तु तो पसंदीदा मानव रूप ही

होना चाहिये, इसमें से सबसे अच्छा ईश्वर रूप है, और दूसरे स्थान पर गुरु रूप है। कृत्रिम ध्यान प्रयासों के बिना अचानक ज्ञानोदय में, जागृति के समय मन में जो कुछ भी विचार या चित्र प्रवाहित होते हैं, उन संबंधित वस्तुओं के साथ आत्मा का प्राथमिक विलय होता है। यदि वह आत्मज्ञान किसी व्यक्ति की सहायता से हुआ है, वह प्रेम सम्बन्धी हो सकता है, तो वह मन में बाद में, कुंडलिनी ध्यान के सभी लाभ देते हुए कुंडलिनी के रूप में विकसित होता है। हालांकि, शक्तिपात आदि के द्वारा, स्वयं के प्रयासों के बिना इस प्रकार का अचानक जागरण कम शक्तिशाली और कम स्थिर प्रतीत होता है। वास्तव में, संबद्ध वस्तुएं या विचार मुख्य लक्ष्य नहीं हैं। ये मुख्य ध्येय नहीं हैं। मुख्य ध्येय तो मनुष्याकृति कुंडलिनी ही है। क्योंकि आदमी का सच्चा साथी आदमी ही होता है, इसलिए मानवरूप में देवता को ही ज्यादातर मामलों में कुंडलिनी बनाया जाता है। योग्य गुरु या महापुरुष या कृष्ण आदि अवतार भी कुंडलिनी बनाए जा सकते हैं। एक खास सम्प्रदाय का एक खास देवता इसलिए होता है, क्योंकि एक ही देवता के सामूहिक ध्यान करने से एक-दूसरे को ध्यान का बल मिलता है। जैसे कि शैव सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय, गणपति के उपासक समाज समूह आदि। राज योग में कोई चक्र नहीं होते हैं, और ऊर्जा चैनल भी नहीं होते हैं। मन में केवल कुंडलिनी ध्यान किया जाता है। वहाँ भी कुण्डलिनी जागरण और कुण्डलिनी सक्रियता इसी प्रकार होती है।इसीलिए कुन्डलिनी का विशद वर्णन करना बहुत जरूरी हो गया था। इसी जरूरत को देखते हुए यह वेबसाइट संसारपटल पर आई।

कुंडलिनी इंजिन के ईंधन और ऊर्जा स्पार्क प्लग की चिंगारी की तरह है, जो जागृति-विस्फोट पैदा करते हैं, और जिनके लिए ध्यान, शिवबिन्दु, मानवरूप देवमूर्ति, शिवलिंग, ज्योतिर्लिंग, साँस रोकने, मस्तिष्क दबाव, स्वयं शिक्षा, सकारात्मक सोच,अनवरत अभ्यास, निष्कामता, लगन, धैर्य, व व्यवस्थित दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण है

मित्रो, पिछली पोस्ट में मैं कुंडलिनी जागरण और उसमें अनुभव होने वाले जुड़ाव के बारे में बात कर रहा था। वह जुड़ाव कुंडलिनी से शुरु होना चाहिये। इसका अर्थ है कि आदमी को सर्वप्रथम कुंडलिनी के साथ अपना पूर्ण जुड़ाव महसूस होना चाहिए, पूर्ण आनन्द व अद्वैत के साथ। उस पैदा हुए अद्वैत से तो फिर सभी चीजों के साथ अपना जुड़ाव महसूस होगा। हालाँकि यह जुड़ाव सेकंडरी होगा, प्राथमिक तो कुंडलिनी के साथ ही माना जाएगा। ऐसा होने से ही कुंडलिनी चित्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन पाएगा, और स्थाई तौर पर क्रियाशील रहेगा। इसका मतलब आप यह समझो कि ऊर्जा साधना/चक्र साधना/नाड़ी साधना आप करते रहो, क्योंकि ये साधनाएं वक्त पड़ने पर कुंडलिनी के काम आएँगी। पर जगाने का प्रयास मानवरूप कुंडलिनी का ही करो। ऊर्जा को कुंडलिनी के पीछे चलना चाहिए, कुंडलिनी को ऊर्जा के पीछे नहीं। इस बारे में मैं अपना अनुभव बताता हूँ। मैं प्रतिदिन कुंडलिनी ध्यान के साथ ऊर्जा साधना करता था। एकदिन अच्छा अवसर मिलते ही मुझे एकदम से अचानक ही कुंडलिनी की बहुत तेज याद आई, और मैं उसमें खोने लगा। तभी मेरी ऊर्जा भी कुंडलिनी का साथ देने के लिए मूलाधार से पीठ से होकर ऊपर चढ़ी और मस्तिष्क में पहुंच गई। मुझे ऐसा लगा क्योंकि मेरा मूलाधार क्षेत्र पूरी तरह से शिथिल हो गया था, हालांकि वह ऊर्जा इतनी तेजी से ऊपर चढ़ी कि उसे महसूस करने का मौका ही नहीं मिला। इसलिए भी मैं ऊर्जा के पीठ से ऊपर चढ़ने का अंदाजा लगा रहा हूँ, क्योंकि मैं लगभग एक महीने से तांत्रिक विधि से कुंडलिनी को पीठ से ऊपर चढ़ाने का अच्छा अभ्यास कर रहा था। इसलिए भी क्योंकि उस समय वहाँ पर महिलाओं का नाच गाना हो रहा था। उससे भी मूलाधार की ऊर्जा उद्दीप्त हुई। यौन माध्यम से उद्दीप्त ऊर्जा पीठ से ही ऊपर चढ़ती है। वह ऊर्जा मस्तिष्क में पहुंच कर कुंडलिनी से जुड़ गई जिससे कुंडलिनी जागरण हो गया। बोलने का मतलब है कि कुंडलिनी तो खुद ही जागृत होने जा रही थी। उसे केवल ऊर्जा की अतिरिक्त आपूर्ति चाहिए थी। यह इसी तरह है जैसे कि गैस इंजन में पहुंच गई थी , बस उसे धमाका करने के लिए स्पार्क प्लग से एक चिंगारी की जरूरत थी। यदि चिंगारी न मिले तो इंजन में शक्ति का धमाका न होए। इसी तरह, यदि मैं ऊर्जा साधना न कर रहा होता तो कुंडलिनी को ऊर्जा न मिलती, और वह बिना जागृत हुए ही मस्तिष्क से नीचे लौट आती। ऐसा कुंडलिनी का ऊपर-नीचे आने-जाने का चक्र सबके अंदर चलता रहता है, बस ऊर्जा की चिंगारी नहीं दे पाते अधिकांश लोग। कइयों के साथ ऐसा होता है कि ऊर्जा की नदी तो मस्तिष्क में पहुंच जाती है, पर वहाँ कुंडलिनी नहीं होती। उससे मन में बहुत स्पष्टता के साथ चित्र कौंधते हैं, पर

जागते नहीं। यह ऐसे ही है कि इंजन में गैस नहीं है, पर स्पार्क लगातार मिल रहे हैं। उससे चिंगारी की थोड़ी चमक तो पैदा होएगी, पर धमाके जितनी विशाल चमक नहीं। इसलिए मुख्य लक्ष्य कुंडलिनी को ही बनाओ, पर ऊर्जा साधना भी करते रहो। यह ऐसा है कि आपने कुंडलिनी की इतनी गहरी याद पैदा करनी है कि आप उसमें कुछ पलों के लिए खो जाओ। यही कुंडलिनी जागरण है। ऐसा समझो कि गुरु या देवता की याद इतनी गहरी पैदा करनी है, जितनी गहरी एक प्रणय प्रेम में डूबे हुए एक प्रेमी को अपनी प्रेमिका की खुद ही पैदा हो जाती है। पर गुरु या देवता की गहरी याद आपके अंदर खुद पैदा नहीं होगी, क्योंकि वहां पर यौन आकर्षण नहीं है। इसलिए आपको यौन आकर्षण जैसा मजबूत आकर्षण पैदा करने के लिए तांत्रिक तकनीकों का सहारा लेना पड़ेगा। इसके लिए उपरोक्त ऊर्जा साधनाएं आपके काम आएँगी। फिर आप कहेंगे कि फिर यौन प्रेमी को ही क्यों न कुंडलिनी बना लिया जाए। पर यह श्रेष्ठ तरीका नहीं है। पहली बात, यौन विकार के कारण यौन कुंडलिनी को जगाना असम्भव के समान है। दूसरी बात, कोई नहीं चाहेगा कि अगला जन्म स्त्री का मिले, क्योंकि स्त्री को पुरुष से ज्यादा कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। आदमी जैसा सोचता है, वह अगले जन्म में वैसा ही बन सकता है। यह अलग बात है कि आजकल के वैज्ञानिक युग में स्त्री व पुरुष समान हैं, बल्कि कई जगह तो स्त्री पुरुष से ज्यादा मजे में है। पर ऐसा युग हमेशा नहीं रहेगा। आज के जैसी वैज्ञानिक सुविधाओं का युग तो असीमित काल का मात्र एक नगण्य जैसा अंश प्रतीत होता है। ये सुविधाएं भी हर जगह उपलब्ध नहीं होतीं। ये दृश्य सत्य पर आधारित मेरे अपने अनुभवात्मक विचार हैं, इसमें लैंगिक भेदभाव वाली कोई बात नहीं है, और न होनी चाहिए। ये पर्सनल ब्लॉग है, ख्याति या पैसे के लिए नहीं। वैसे भी, दुनिया में नजर भी आता है और तंत्र सम्प्रदायों में भी यह मान्यता है कि स्त्री केवल पुरुष की सहायता ही कर सकती है कुन्डलिनी जागरण में, स्वयं जागृत नहीं हो सकती। यदि वह यह सहायता करती है, तो अगले जन्म में वह पुरुष बन कर जागृत हो जाती है। वैसे तो तन्त्र सम्प्रदायों में भी बहुत सी महान तांत्रिक महिलाएं हुई हैं, जिन्होनें अपने पुरुष साथी को भी जागृत किया है, और वे खुद भी जागृत हुई हैं। विशेष प्रयास करने वाले अपवाद के मामले तो हर जगह ही मिल जाते हैं। देवी माता का ध्यान तो बहुत से योगी करते ही आए हैं। योगी रामकृष्ण परमहंस माँ काली के उपासक थे। उन्हें ध्यान में काली माता स्पष्ट भौतिक रूप में दिखती थीं। वे उनसे खेलते , बातें करते। पर एक साधारण स्त्री और देवी स्त्री में फर्क है। शायद इसीलिए स्त्री को गुरु बनाए जाने के बारे में शास्त्रों में बहुत कम बताया गया है। वैसे परिवर्तन व विभिन्नता संसार का नियम है। आदमी को जैसे भी उपयुक्त लगे, वैसे ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। साथ में कहा था कि संयोगवश या शक्तिपात आदि से जो बिना प्रयासों के जागृति प्राप्त होती है , वह अल्प व अस्थायी होती है। अल्प का मतलब कि उससे पूर्ण संतुष्टि नहीं मिलती। ऐसा मन करता है कि एकबार और जागृति मिल जाए। उससे बना कुण्डलिनी चित्र भी कुछ वर्षों के बाद मिटने लगता है। हालांकि ऐसी जागृति आदमी को पूर्ण जागृति को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। इससे आदमी योग अभ्यास करने लगता है।

बिंदु शक्ति मूलाधार से सहस्रार की तरफ निर्देशित की जाती है

कुंडलिनी को बिंदु की शक्ति मूलाधार से स्वयं ही मिलती है। यदि किसी को बिंदु नाम से कुंडलिनी का अपमान लगे, तो शिवबिन्दु व ज्योतिर्लिंग या शिवलिंग नाम से ध्यान किया जा सकता है। इससे कुंडलिनी का अपमान भी नहीं होगा, और आदमी को शिव का स्वरूप भी मिलेगा। एकसाथ दो लाभ। एक और बढ़िया तरीका है कि अद्वैत के चिंतन को ही शिवबिंदु का नाम दे दो। इससे जैसे ही कुंडलिनी मन में आएगी, उसे एकदम से बिंदु की शक्ति मिल जाएगी। वैसे भी इस अद्वैतपूर्ण शरीर का मालिक शिव ही है। आदमी तो झूठमूठ का अहंकार करके इसका मालिक बन जाता है। इस तथ्य को शरीरविज्ञान दर्शन पुस्तक में वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया गया है। कुंडलिनी चक्रों पर शिवबिन्दु के ध्यान से सभी 12 चक्र शिव के बारह ज्योतिर्लिंग बन जाते हैं। ज्योतिर्लिंग शब्द में ज्योति का अर्थ कुंडलिनी की चमक से है। यही 12 ज्योतिर्लिंगों का आध्यात्मिक रहस्य है। इसीलिए मूलाधार को संकुचित करते रहने व वहाँ सिद्धासन में पैर की ऐड़ी का दबाव देने को कहते हैं। दरअसल बिंदु शक्ति को ले जाने वाली वज्र नाड़ी स्वाधिष्ठान चक्र व मूलाधार चक्र से होकर पीठ के बीचोंबीच ऊपर चढ़ती है। वह जननांग से शुरु होती है। इसका वर्णन मैंने एक पुरानी पोस्ट में किया है कि कैसे उस कुन्डलिनी नाड़ी को कुंडली लगाए नागिन की तरह दिखाया गया है, और कैसे वह कुन्डली खोलकर खड़ी हो जाती है। दरअसल कुन्डलिनी नागिन के आकार में नहीं है, जैसा कई लोग समझते हैं।

यह कुन्डलिनी शक्ति को ले जाने वाली नाड़ी है। कुन्डलिनी नाम इसलिये पड़ा है, क्योंकि वह कुंडली लगाई हुई नागिन के जैसी नाड़ी में कैद रहती है। यह संस्कृत शब्द है। मूलाधार पर दबाव से वह नाड़ी क्रियाशील हो जाती है। इससे जाहिर है कि मूलाधार में जो शक्ति का निवास बताया गया है, वह बिंदु रूप में ही है। उसी बिंदु शक्ति को सहस्रार तक ले जाना होता है जागरण के लिए। वह धीरे धीरे करके रास्ते के सभी चक्रों को जागृत करते हुए भी वहाँ पहुंच सकती है, और सीधी भी। यह अभ्यास के प्रकार पर निर्भर करता है। साधारण अभ्यास से वह धीरे धीरे ऊपर पहुंचती है, पर तांत्रिक अभ्यास से एकदम सीधी सहस्रार में। उस बिंदु शक्ति को केवल आदमी ही ऊपर चढ़ा सकता है, अन्य जीव नहीं। क्योंकि केवल आदमी ही योगाभ्यास कर सकता है। साथ में, विशाल बिंदु शक्ति को झेलने लायक मस्तिष्क केवल आदमी के पास ही है, अन्य जीवों के पास नहीं।

साँस रोकने के बहुत से लाभ हैं

योगा वाली साँसों पर भी पिछली पोस्ट में व्यावहारिक चर्चा कर रहा था। दरअसल जो ड्रैगन को साँसों की आग उगलते हुए दिखाया गया है, वह कुंडलिनी की आग का ही प्रतीक है। उस साँस से जो कुंडलिनी नाड़ी लूप में घूमते हुए चमकती है, उसीको रहस्यात्मक आग के रूप में दर्शाया गया है। आदमी का वास्तविक आकार भी एक ड्रैगन के रूप जैसा ही है। यदि हम रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क को लें, तो एक नाग या ड्रैगन जैसा आकार बनता है। आदमी का असली रूप रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क में ही समाया हुआ है। बाहर के अन्य अंग तो मात्र बाहरी छिलकों की तरह है। इसका वर्णन मैंने एक पुरानी पोस्ट में किया था। यह मैंने कहीं पढ़ा नहीं और न ही इसका प्रमाण है मेरे पास, जो नीचे लिखा है। ऐसा लगता है कि साँस रोकने से रक्त वाहिनियों की दीवारों का लचीलापन बढ़ता है। क्योंकि उनकी मांसपेशियों को मजबूती मिलती है। खुद भी महसूस होता है, जब साँस रोकने से दिमाग की नसों में भारीपन व कड़ापन सा महसूस होता है। पर ऐसा सावधानी से करना चाहिए। बहुत ज्यादा या बहुत देर तक नहीं। इसीलिए जिन आसनों में पेट अंदर को दबता है, उन्हें साँस बाहर निकालकर रोककर करने को कहते हैं। जैसे कि शीर्षासन, सर्वांगासन, हलासन, नौकासन आदि। जिनमें पेट बाहर को फूलता है, उनमें साँस अंदर भरकर रोकने को कहते हैं। जैसे कि शलभासन, मकरासन, भुजंगासन आदि। वैसे नियंत्रित अवस्था में तो किसी भी आसन में सांस को भरकर या बाहर निकालकर अपनी रुचि के अनुसार रोककर रख सकते हैं। शीर्षासन, सर्वांगासन व हलासन में विशेष ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि उनमें मस्तिष्क में बहुत दबाव पैदा होता है। अगर साँस रोकने से विशेषकर योग के दौरान खून की नसों का लचीलापन बढ़ता है, तो इससे जाहिर है कि इससे स्ट्रोक, व दिल के रोगों से कुछ राहत मिल सकती है। जब तक रिसर्च से प्रूव नहीं होता, तब तक ऐसा विश्वास करके श्वास रोककर योग करते रहने में कोई बुराई नहीं है। वैसे भी यह तो वैज्ञानिक प्रयोगों से स्पष्ट हो चुका है कि साँस रोकने से दिमाग में ऑक्सीजन का स्तर बदलता रहता है। इसका सीधा सा मतलब है कि खून की नसें सिकुड़ती और फैलती रहती हैं। जाहिर है कि उनके सिकुड़ने से ऑक्सीजन का स्तर घटेगा, और फैलने से बढ़ेगा। कुंडलिनी जागरण के समय मस्तिष्क में काफी दबाव महसूस होता है। उस दबाव को सहने के लिए भी इससे दिमाग की नसें तैयार रहती हैं।

सिर का दबाव ऐसा लगता है कि माथे के किनारों वाली दिमाग की नसें फूली हुई हैं। ऐसे आसन जिसमें सिर शरीर से नीचे हो, उनमें ऐसा ज्यादा लगता है। अभी हाल ही में मेरे एक रिश्तेदार लड़के की ब्रेन हेमरेज से मृत्यु हुई। वह सिर्फ 30 साल का था। अंतर्मुखी, लाडला, परिवार पर ज्यादा ही निर्भर और परिवार के इलावा दूसरों से कम घुलने-मिलने वाला था। कुछ दिनों से उसके सिर में हल्का सा दर्द रह रहा था, और खून की उल्टी के साथ बेहोशी से आधा घण्टे पहले वह सिर की नसों को छूकर बता रहा था कि उसे लग रहा था कि उसकी दिमाग की नसें फूल रही थीं। उसकी माँ को तो हाथ से छूने पर वैसा कुछ नहीं लगा। इसलिए उसे सोकर आराम करने को कहा। आईसीयू में डॉक्टरों ने उसके बचने के सिर्फ 5% चांस बताए। उसका मस्तिष्क बहते और जमे खून के दबाव से पत्थर की तरह सख्त हो गया था। वह सिर्फ डेढ़ दिन ही आईसीयू में जिंदा रह सका। उसे 5 दिन पहले कोरोना वैक्सीन, एस्ट्रोजेनिका आधारित कोविशील्ड भी लगा था। डॉक्टरों ने कहा कि उसे ज्यादा ही इम्म्यूनिटी पैदा हो गई थी। इससे डरने की जरूरत नहीं। इससे डरकर वैक्सीन लगाना बन्द नहीं करना चाहिए, जब तक कोई बेहतर वैक्सीन नहीं आ जाती।

इससे बहुत सी जानें बची हैं। इसकी तुलना में तो साईड इफेक्ट नगण्य ही हैं। हाँ, सावधान रहकर हर स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए। अगर साइड इफेक्ट लगे, तो डॉक्टर से सम्पर्क में रहना चाहिए। ऐसे जीवनघातक दुष्प्रभाव की संभावना लाखों में केवल 1-2 को ही होती है। अब तो यह भी सामने आया है कि यदि गलती से इंजेक्शन माँस की बजाय खून की नस में लगे, तो भी खून में क्लॉट बन सकते हैं। मैं यह इसलिए बता रहा हूँ कि अगर योग, व्यायाम आदि से उसके दिमाग की नसों में ज्यादा फुलाव को झेलने की शक्ति होती , तो शायद रक्तस्राव न होता या कम रक्तस्राव होता, या एमरजेंसी ट्रीटमेंट से जान बच जाती।

बिंदु का अर्थ एक सुई की नोक जितना स्थान भी होता है

इसे अंग्रेजी में पॉइंट कहते हैं। यह पैन को एक स्थान पर रखकर उसकी स्याही का निशान लगाने से बनता है। पिछली पोस्ट में मैंने बताया था कि बिंदु का अर्थ बूँद होता है। पर इसका दूसरा अर्थ पॉइंट भी होता है। कुंडलिनी भी वास्तव में असीमित क्षेत्र के मन का एक सूक्ष्म स्थान होता है। यदि कागज के एक पृष्ठ या पूरी पुस्तक पर लिखे लेख को मन मान लिया जाए, तो कुंडलिनी सिर्फ एक पॉइंट जितने स्थान में आ जाएगी। एक पॉइंट से पूरे लेख के बारे में जानकारी मिल जाती है कि कौन सा पैन इस्तेमाल हुआ है, और कौन सी स्याही। यहाँ तक भी पता चल सकता है कि लेखक का हस्तलेख कैसा है। इसी तरह एक कुंडलिनी से पूरे मन के स्वभाव का अनुमान लग जाता है। जैसे एक बिंदु के पूर्ण ज्ञान से पूरा लेख नियंत्रित किया जा सकता है, इसी तरह एक कुंडलिनी के संपूर्ण ज्ञान से पूरा मन नियंत्रित हो जाता है। मैं यह उपमा दोनों के बीच में बाहरी सादृश्यता को देखकर दे रहा हूँ, भीतरी को नहीं।

योग सीखने की चीज नहीं, अभ्यास की चीज है

मुझे कई लोग बोलते हैं कि मुझे योग सिखा दो। जिसे 20 सालों को करते हुए मैं थोड़ा सा सीखा हूँ, उसे किसीको एकदम से कैसे सिखा सकता हूँ। योग वास्तव में कोई एक विशेष क्षेत्र की विद्या नहीं है, जिसे एकदम से सिखाया जा सके। यह एक विचारधारा है, एक जीवन दर्शन है, एक लाइफस्टाइल है। यह मन की एक अद्वैतमयी सोच है। इसे आप सकारात्मक सोच भी कह सकते हैं। उस सोच को बना कर रखने और बढ़ाने के लिए आप जो मर्जी तरीका चुन सकते हैं। बहुत से तरीकों का भी एकसाथ इस्तेमाल कर सकते हैं। इसलिए पहले सोच पैदा करना जरूरी है। जिसके अंदर सोच ही नहीं है, वह उसे बना के क्या रखेगा, और उसे बढ़ाएगा क्या। सोच तो आदमी के अपने वश में है। इसीलिए प्रकृति ने आदमी को फ्री विल उन्मुक्त चिंतन शक्ति दी है। योग कोई सोच जबरदस्ती नहीं पैदा कर सकता। योग का सहारा उस सोच को बढ़ाने के लिए लिया जा सकता है। जिसके अंदर यह सोच है, उसे कुछ सिखाने की जरूरत ही नहीं। सोच अपना रास्ता खुद ढूंढती है। उन्हें सोच बनाने के लिए मैं शरीरविज्ञान दर्शन पुस्तक पढ़ने को कहता हूँ। उसके बाद उनकी तरफ से कोई संदेश ही नहीं आता। यदि संदेश आता, तो मैं उन्हें कहता कि अब इस सोच को पक्का करने के लिए कुछ सालों तक इस सोच के साथ कर्मयोग के रास्ते पर चलो। सोच को आप कुंडलिनी भी मान सकते हो, क्योंकि दोनों ही मन के विचार हैं। फिर जब कुछ वर्षों के बाद उनका संदेश आता तो मैं उन्हें कुंडलिनी योग के बारे में बताता, व उसके बारे में व्यावहारिक पुस्तकें सुझाता, बेशक वे मेरी लिखी हुई ही हों। यही असली तरीका है योग सीखने का। मैं भी ऐसे ही सीखा हूँ। यदि कोई व्यायाम की तरह का शारीरिक योग ही सीखना चाहे, तो उसके लिए आज बहुत से साधन हर जगह उपलब्ध हैं, ऑनलाइन भी और ऑफलाइन भी। असली योग सीखने में समय लगता है, पूरी उम्र भी लग सकती है।

आर्यसभ्यता की देवमूर्ति परम्परा से कुन्डलिनी साधना

आर्यन सभ्यता की रीति रिवाजों को देखकर उस समय की महान आध्यात्मिक वैज्ञानिकता वाली सोच का पता चलता है। शिव, गणेश आदि देवता बिल्कुल स्थाई व अजर अमर बना दिए गए थे। मूर्ति कला अपने चरम पर थी। इतनी जीवंत व आकर्षक मूर्तियां बनती थीं, जिनके आगे असली आदमी लज्जित हो जाते थे। असली आदमी, गुरु या प्रेमी से अधिक आसान तो देव मूर्तियों पर ध्यान लगाना होता था। उदाहरण के लिए यदि किसी के मन में शिव मूर्ति का रूप जागृत हो जाए, तो वह कभी नहीं भूल सकता था। वह इसलिए क्योंकि वह मूर्ति विशेष सहेज कर मन्दिर में हमेशा के लिए रखी जाती थी। वैसे भी देश के हरेक स्थान पर शिव मंदिर होने से शिव रूपी कुंडलिनी का कभी विस्मरण नहीं होता था। असली आदमी का तो सीमित जीवन होता है, पर ये देवमूर्तियाँ तो धर्म परंपरा से जुड़कर शाश्वत हो गई हैं। असली आदमी का तो वियोग भी हो सकता है। फिर ध्यान कैसे लगाए। देवमूर्तियां तो हर जगह और हर समय विद्यमान हैं। इसीलिए इनको बहुत सुंदर बनाया जाता था। स्वर्णमूर्ति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। क्योंकि वह सबसे आकर्षक, चमकदार और दीर्घजीवी होती थी। मैंने कई इतनी सुंदर मूर्तियां इतने जीवंत और सुंदर रूप में देखी हैं, कि आजतक मेरे मन में जीवंत हो जाती हैं। सोचो, जब एक बार देखने पर ही वे मन पर इतनी गहरी छाप छोड़ सकती हैं, तो बार बार उनका ध्यान करने से वे क्यों मन में जागृत नहीं होएंगी। यदि न भी जागृत होए, तो भी वे आदमी को अनासक्ति व अद्वैत के साथ जीना सिखाती हैं। वे हर हाल में फायदा ही करती हैं। वैसे भी देव मूर्ति तभी अस्तित्व में आई जब किसीने सबसे पहले उसको मन में जागृत किया और उसे दुनिया के सामने रखा।

कुंडलिनी वाला भला केवल मानसिक कुन्डलिनी ही कर सकती है, कोई स्थूल भौतिक रूप नहीं

आदमी का भला करना तो कुंडलिनी का स्वभाव है, चाहे वह पत्थर के रूप वाली ही क्यों न हो। इसीलिए यह कहावत बनी है कि मानो तो पत्थर में भी भगवान मिल जाते हैं। पर इसका श्रेय कुंडलिनी को न दिया जाकर देवता को दिया जाने लगा। इससे लोगों के मन में देवताओं के प्रति विश्वास बढ़ता गया, जो आज तक है। हालांकि वैज्ञानिक तौर पर मानव भलाई के सारे काम कुंडलिनी कर रही थी। देवताओं को श्रेय दिया जाना उचित भी है, क्योंकि वे वैसे भी भौतिक रूप से भी लोगों का भला करते रहते हैं। जैसे सूर्यदेव रौशनी देते हैं, और जलदेव पानी। हालांकि कुंडलिनी वाला भला तो कुंडलिनी ही कर रही है, देवता नहीं। दोनों प्रकार की भलाई को अपने अपने असली रूप में देखना चाहिए, इकट्ठे जोड़कर नहीं, तभी कुंडलिनी के बारे में भ्रम दूर होगा। इसी तरह, एक आदमी का भला प्रेमी के रूप से बनी उसके मन की कुंडलिनी करती है, उसका प्रेमी नहीं। अगर प्रेमी ही भला कर रहा होता, तो शादी के बाद परस्पर आकर्षण खत्म या कम न होकर बढ़ता। पर होता उल्टा है। दरअसल शादी के बाद जब प्रेमी का भौतिक रूप हर वक्त उपलब्ध हो जाता है, तब मन में उसके रूप की बनी हुई कुंडलिनी मिटने लगती है। इससे कुंडलिनी वाले लाभ खत्म हो जाते हैं। पर आदमी दोष देता है प्रेमी को। प्रेमी तो जैसा पहले था, वैसा ही होता है। इसीलिए भगवान कृष्ण कहते हैं कि राधा उनकी सबसे प्रिय है। राधा से विवाह नहीं, सिर्फ उनका प्रेम ही होता है। बात स्पष्ट है कि कृष्ण के मन में राधा के रूप से बनी शाश्वत कुंडलिनी के कारण ही कृष्ण को राधा सबसे प्रिय है। यदि दोनों का विवाह हो जाता, तो शायद वैसा न होता। क्योंकि भौतिक रूप से तो उनकी पत्नी रुक्मिणी सबसे सुंदर हैं। दरअसल असली और सच्चा प्यार सिर्फ और सिर्फ कुंडलिनी से ही होता है, किसी भौतिक वस्तु से नहीं। "किसीकी याद के सहारे जीना" भी इसी कुंडलिनी के द्वारा किए जाने वाले भले का उदाहरण है। भला सुखी जीवन से बड़ा भला और क्या हो सकता है। शिव का दूसरा रूप पर्वत भी है, जो मैंने एक कविता पोस्ट में सिद्ध किया है। पर्वत आदमी का बहुत भला करते हैं। ये पानी, हवा, ठंडक, फल आदि देते हैं। इसलिए लोगों का देवताओं पर आसानी से ध्यान जम जाता है। इसीलिए ज्यादातर मामलों में देवताओं को ध्यान कुंडलिनी बनाया जाता था। इससे संसार में मानवता भी पनपी रहती थी। वैसे भी कुंडलिनी ही भगवान तक ले जाती है। भगवान तक पहुंचने के लिए सीधी उड़ान सेवा नहीं दिखाई देती। लगता यह अजीब है, पर यह सत्य है। यह मूर्ति विज्ञान है, जिसे जो नहीं समझेगा, वह तो दुष्प्रचार करेगा ही।

कुन्डलिनी ही मन के फालतू शोर को शांत करने के लिए सर्वोत्तम हथियार के रूप में

मन के बकवास विचारों की शांति के लिए कुन्डलिनी ध्यान एक सर्वोत्तम तरीका है

मित्रो, मन के बकवास विचारों को शांत करने के लिए अपने अपने नुस्खे बताते हैं लोग। मुझे तो कुंडलिनी ध्यान सबसे अच्छा तरीका लगता है। एकदम से मन का शोर शांत हो जाता है इससे। यह मैं पिछली कई पोस्टों में लगातार वर्णन करता आ रहा हूँ। इसे मैंने कुंडलिनी चक्रों पर प्राण और अपान की आपसी टक्कर का नाम दिया है। यह मानसिक विचारों और आधार चक्रों का एक साथ ध्यान करने जैसा है। पिछली पोस्ट में मैं बता रहा था कि साँस रोकने वाले प्राणायाम से स्ट्रोक और दिल के रोगों से बचाव हो सकता है। मेरा अनुमान सही निकला। मैं इस हफ्ते एक ऑनलाइन आध्यात्मिक बैठक में शामिल हुआ। उसमें यह रिसर्च दिखा रहे थे जिसके अनुसार श्वास व्यायाम से व साँस भरते समय पूरी छाती फैलाने से रक्तचाप कम हो जाता है। हालाँकि मुझे लगता है कि साँस रोकने से रक्तचाप ज्यादा नीचे गिरता है। जब मैं खाली श्वास व्यायाम करता था, तब मुझे इसका अहसास नहीं हुआ, पर जब प्राणायाम साँस रोककर करने लगा तो मेरा रक्तचाप 70-100 तक गिर गया। सामान्य स्तर 80-120 होता है। जब मैंने बैठक में विशेषज्ञ से पूछा कि क्या ऐसा हो सकता है, तो उन्होंने कहा कि इतना नीचे गिरना तो सामान्य है, पर बहुत ज्यादा नहीं गिरता। बड़ा कुछ बता रहे थे कि रक्तवाहिनी की दीवार में यह रसायन निकलता है, वह अभिक्रिया होती है आदि। मुझे वह ज्यादा समझ नहीं आया। मैं तो काम की बात पकड़ता हूँ। सबसे बड़ी प्रयोगशाला या प्रमाण तो अनुभव ही है। अध्यात्म के क्षेत्र में विज्ञान अनुभव तक ही ज्यादा सीमित रहे, तो ज्यादा अच्छा है। यदि वैज्ञानिक प्रयोग से प्रमाण मिल गया, तो लोग अपने अनुभव के प्रमाण का प्रयोग कम भी कर सकते हैं। मैं वैज्ञानिक प्रयोगों के खिलाफ नहीं हूं, पर यदि कोई किसी बात को सिद्ध करने के लिए अपने अनुभव का हवाला न देकर केवल वैज्ञानिक प्रयोग का हवाला दे, तो उसमें जीवंतता नहीं दिखाई देती। जिसको योग के महत्त्व का पता है, वह बिना वैज्ञानिक प्रयोग के व केवल औरों के अनुभव को प्रमाण मानकर खुद भी उसको अनुभव करने की कोशिश करेगा। फिर मैं बता रहा था कि बड़े पैमाने पर जागृति प्राप्त करने के लिए योगा से भरी हुई वैदिक जीवन परंपरा को अपनाना कितना जरूरी है। एक न एक दिन सभी को जागृत होना पड़ेगा। कब तक सच्चाई को नजरअंदाज करते रहेंगे। बिल्ली के पंजे में फंसा कबूतर अगर आंख बंद कर दे, तो बिल्ली भाग नहीं जाती।

मस्तिष्क के सभी भाव प्राण के रूप में कुन्डलिनी रूपी भगवान को अर्पित हो जाते हैं

जो गीता में भगवान यह कहते हैं कि अपने सभी क्लेश, विचार, सुख, दुख मुझे अर्पण कर। यह कुंडलिनी योग की तरफ इशारा है। भगवान इसमें कुंडलिनी है। प्राण अपान की टक्कर में जो मस्तिष्क का विचार-कचरा व ऊर्जा कुंडलिनी पर डाला जाता है, उससे कुंडलिनी चमकती है। यही वह अर्पण करना या हवन करना है। प्राण को अपान में हवन करने वाला गीता वाला श्लोक भी यही इशारा करता है। प्राण वाला मस्तिष्क-विचार निचले चक्रों पर स्थित अपान वाली कुंडलनी पर डाला जाता है। उससे कुंडलिनी आग भड़कती है। प्राण का प्राण में हवन भी वहीं लिखा है। उसमें मन में सभी कुछ प्राण है। भगवान के रूप में कुन्डलिनी हृदय चक्र पर है। मन और हृदय दोनों ही स्थानों पर प्राण है। मैंने पिछली पोस्ट में कहा था कि चक्र के ऊपर कुंडलिनी का ज्योतिर्लिंग और शिवबिन्दु के साथ ध्यान

करना चाहिए। शायद इसीलिए उन स्थानों का नाम चक्र पड़ा हो, क्योंकि जब पीठ वाले चक्र पर ज्योतिर्लिंग या शिवलिंग का ध्यान करते हैं, तो उसके काउंटरपार्ट अगले चक्र पर शिवबिन्दु प्रकट हो जाता है। चक्र खोखले पहिए को भी कहते हैं।

कुन्डलिनी से ही एक आदर्श जागृति शुरु होनी चाहिये, और कुन्डलिनी पर ही खत्म

मैं यह भी बता रहा था कि यदि ऊर्जा की नदी मूलाधार से मस्तिष्क में पहुंचती है, और उस समय मस्तिष्क में कुंडलिनी प्रभावी न हो, तो वहां के विचार या चित्र बड़ी स्पष्टता से कौंधते हैं, पर जागृत नहीं होते। पर यदि वहाँ ऊर्जा काफी अधिक और ज्यादा समय के लिए बनी रहे, तो जागृति भी हो जाती है। उसमें सभी चीजों के साथ अपना पूर्ण जुड़ाव महसूस होता है, जिसे पूर्ण अद्वैत कहते हैं। पर कोई विशेष चित्र पहचान में नहीं आता, जिससे पूर्ण जुड़ाव शुरु हुआ हो। वह इसलिए भी पहचान में नहीं आता क्योंकि आदमी ने कुंडलिनी के रूप में विशेष मानसिक चित्र साधना के लिए बनाया ही नहीं होता है। मतलब वह कुंडलनी साधना कर ही नहीं रहा होता है। बेशक आध्यात्मिकता को अभिव्यक्त करने के लिए बाद में मन में कुन्डलिनी मजबूत हो जाती है, पर वह कामचलाऊ व अस्थायी लगती है मुझे। स्थायी और असली कुन्डलिनी तो वही लगती है मुझे, जिससे मस्तिष्क में जागृति शुरु होती हुई, और जिसमें खत्म होती हुई दिखती है। उस कुन्डलिनी के स्मरण से वह शुरु होती है। फिर जागृति खत्म होते ही कुन्डलिनी मस्तिष्क से नीचे उतरकर आज्ञाचक्र पर आते दिखती है, और वहाँ से नीचे अनाहत चक्र पर। फिर उसे सभी चक्रों पर आसानी से घुमा सकते हैं। वैसे तो हर प्रकार की जागृति फायदेमंद है, पर मैं कुन्डलिनी से शुरु होने वाली जागृति को सर्वोत्तम कहूँगा।

कुन्डलिनी ऊर्जा का प्रवाह बारी-2 से शरीर के दाएं, बाएं और मध्य भाग में चलता रहता है, नथुनों से बहने वाले श्वास की तरह

योगासन इसलिए किए जाते हैं ताकि कहीं न कहीं कुंडलिनी एनर्जी पकड़ में आ जाए। यह ऊर्जा पूरे शरीर में है। पर यह कभी किसी चक्र पर तो कभी किसी दूसरे चक्र पर ज्यादा प्रभावी होती है। इसलिए पूरे शरीर के जोड़ों के बैंड या मोड़ आदि से यह कहीं न कहीं पकड़ में आ ही जाती है। मुझे इस हफ्ते नया प्रेक्टिकल अनुभव मिला है। ये जो बारी बारी से शरीर के बाएं और दाएं, दोनों किनारों का योगासन किया जाता है, वह बाईं और दाईं मुख्य नाड़ी से ऊर्जा को ऊपर चढ़ाने के लिए किया जाता है। इससे ऊर्जा संतुलित होकर खुद ही बीच वाली नाड़ी में आ जाती है। सीधे ही ऊर्जा को बीच वाली नाड़ी से चढ़ाना कठिन होता है। बाईं नाड़ी को इड़ा, दाईं को पिंगला और बीच वाली नाड़ी को सुषुम्ना कहते हैं। उदाहरण के लिए, जब मैं शलभासन को बाईं भुजा और दायाँ पैर उठाकर करता हूँ, उस समय कुन्डलिनी ऊर्जा इड़ा नाड़ी से ऊपर चढ़कर बाएँ मस्तिष्क को जाती है। वहां से उसे मैं आज्ञा चक्र की ओर तिरछा रीडायरेक्ट करता हूँ। इससे वह नीचे उतरकर और फिर मूलाधार से ऊपर चढ़कर सुषुम्ना में आने की कोशिश करती है। जब उसे दाईं भुजा और बायाँ पैर उठाकर करता हूँ, तब पिंगला से ऊपर चढ़ कर दाएँ मस्तिष्क को जाती है। उसे रीडायरेक्ट करने से लगभग वैसा ही होता है। एक हल्की सी अवेयरनेस आज्ञा चक्र पर भी रखता हूँ। उससे वह ऊर्जा केंद्रीय रेखा में आने की कोशिश करती है। आज्ञा चक्र नाम ही इसलिए पड़ा है क्योंकि यह कुंडलिनी शक्ति को सीधा बीच वाली नाड़ी में चलने की आज्ञा देता है। साथ में, मूलाधार संकुचन पर भी हल्की सी मानसिक नजर रखता हूँ। फिर ऊर्जा को जाने देता हूँ अपनी मर्जी से, वह जहाँ जाना चाहे। मैं देखता हूँ कि वह फिर बड़ी विवेक बुद्धि से खुद ही वहाँ जाती है, जहाँ ऊर्जा की कमी है। वह कमी पूरा होने पर उसके विपरीत भाग में चली जाती है, ताकि ऊर्जा

संतुलन बना रहे। फिर बीच वाले चैनल में आ जाती है। वहाँ से वह शरीर के दोनों तरफ के हिस्सों को कवर करने लगती है। ये सभी पीठ व मस्तिष्क के हिस्से होते हैं। वह किसी पाईप में पानी की गश की आवाज की तरह चलती है। इसीलिए नाड़ी नाम भी नदी से ही बना है। शरीर के अगले भाग के हिस्से तब कवर होते हैं, यदि मैं हल्का सा ध्यान तालू को छूती हुई उलटी जीभ पर भी रखूं। तब वह आगे की नाड़ी से नीचे उतरकर नाड़ी लूप में घूमने लगती है।

साँस भरकर रोकने से कुन्डलिनी ऊर्जा पीठ में ऊपर चढ़ती है

योगासन इसीलिए बने हैं, ताकि उनसे नाड़ियों में बहती ऊर्जा का अनुभव होए, तथा उस बहती ऊर्जा से पूरा शरीर सिंचित होकर स्वस्थ रह सके। कर्मयोगी की ऊर्जा तो काम करते हुए खुद भी बहती रहती है, हालाँकि योगा द्वारा बहाव जितनी नहीं। इसकी सख्त जरूरत तो ध्यानयोगी को थी, क्योंकि उन्हें ध्यान लगाने के लिए ज्यादातर समय बैठे रहना पड़ता था। वैसे यह स्पष्ट है कि यदि भौतिक रूप से क्रियाशील रहने वाले लोग भी योगा करे, तो उन्हें भी बहुत लाभ होगा। मैंने इस हफ्ते नई बात नोट की। सांस भर कर रोकने से कुण्डलिनी ऊर्जा अच्छे से पीठ से ऊपर चढ़ रही थी, और वह मस्तिष्क में गशिंग पैदा कर रही थी। यही बात उपरोक्त बैठक में भी बता रहे थे कि साँस भरते हुए सेरेब्रोस्पाइनल फ्लुड रीढ़ की हड्डी में ऊपर चढ़ता है। कई वैज्ञानिक प्रकार के लोग बोलते हैं कि कुंडलनी ऊर्जा इसी के थ्रू जाती है। पर संशय होता है, क्योंकि कुंडलनी ऊर्जा तो एकदम से ऊपर चढ़ती है, पर सीएसएफ धीरे धीरे चलता है। हो सकता है कि जब वह मस्तिष्क में पहुंच जाता हो, तभी ऊर्जा के ऊपर चढ़ने का आभास होता हो। इसीलिए तो कुछ समय तक श्वास या अन्य योग अभ्यास करने के बाद ही ऊर्जा ऊपर चढ़ती महसूस होती है, एकदम से नहीं। इसीलिए सांस रोककर योग करने को कहते हैं। हालांकि इसके लिए शायद पहले सांस लेते हुए योग करने का काफी लम्बा अभ्यास का अनुभव चाहिए होता है। सांस भरकर रोककर दरअसल पिछले मणिपुर चक्र में गड्ढा बनने से ऊर्जा के प्रवाह की दिशा पीठ में ऊपर की ओर होती है। फिर थोड़े ध्यान से वह ऊर्जा गति पकड़ती है। सांस लेने व छोड़ते रहने से ऊर्जा अपनी दिशा लगातार बदलती रहती है, इससे ऊर्जा को पर्याप्त वेग नहीं मिल पाता। सांस भरने से वह ऊपर की ओर चढ़ती है, और सांस छोड़ते हुए नीचे की तरफ उतरती है।

बाइकिंग कुन्डलिनी योगा

मैं इस हफ्ते एक दिन साईकिल पर अपने काम गया। मैंने महसूस किया कि साईकिल की सीट का अगला नुकीला हिस्सा सिद्धासन में पैर कि एड़ी का काम करता है। जब मैं फिसल कर आगे को होता था, तब मेरी कुण्डलिनी ऊर्जा लूप में घूमने लगती थी। इसलिए मोटरसाइकिल पर भी सबसे आगे, फ्यूल टैंक से सट कर बैठने को कहा जाता है। यह मूलाधार पर तेज दबाव के कारण मोटरसाइकिल की सवारी को सुखद बनाता है। दरअसल प्राण तो इधर उधर के दृश्य मस्तिष्क में पड़ने से पहले ही सक्रिय था। मेरे सिर पर लगे हेलमेट ने उसे और ज्यादा सक्रिय कर दिया था। सीट के द्वारा मूलाधार पर दबाव पड़ने से अपान भी सक्रिय हो गया। मस्तिष्क या प्राण पर तो पहले से ही ध्यान था। मूलाधार पर संवेदना से अपान पर भी ध्यान चला गया। अपान पीठ से ऊपर चढ़ने लगा, तो प्राण आगे से नीचे उतरने लगा। कुण्डलिनी चक्र पूरा होकर प्राण और अपान का मिलन भी हुआ। इससे संगम हुआ और कुण्डलिनी लाभ मिला। बाइकिंग कुन्डलिनी योगा पर मैंने एक पहले भी पोस्ट लिखी है। बाइसाइकिल खासकर स्पोर्ट्स वाली और हल्की बाईसाईकिल से मूलाधार चक्र बहुत बढ़िया क्रियाशील होता है। बाइकिंग के बाद जो कई दिन तक आनन्द व हल्कापन सा छाया रहता है, वह इसी वजह से होता है। ध्यान रहे कि साइक्लिंग वाले दिन न ज्यादा, और न कम खाएं। योग के लिए भी ऐसा ही कहा जाता है। वास्तव में ज्यादा पेट भरने से साँसें भी ढंग से नहीं चलतीं, और कुन्डलिनी ऊर्जा भी ढंग से नहीं घूमती। कम खाने से कमजोरी आ सकती है। पेट पर बोझ महसूस नहीं होना चाहिए। मैंने तो यहाँ तक देखा है कि संतुलित मात्रा में खाने के बाद यदि आधा रोटी या दो चार चम्मच चावल भी ज्यादा खा लो, तो भी पेट पर बोझ आ जाता है। इसलिए एकबार भोजन से तृप्ति का एहसास होने पर उठ जाना चाहिए।

बाइकिंग योगा जैसा लाभ हमेशा लिया जा सकता है, यदि आदमी को मूलाधार नियंत्रित करने में महारत हासिल हो जाए। यदि केवल मूलाधार को ही ऊपर की तरफ संकुचित करेंगे, तो थकान ज्यादा महसूस होती है। यदि आगे से पीछे तक के मूलाधार क्षेत्र को हल्का सा संकुचित करेंगे तो उसमें मूलाधार भी शामिल हो जाता है, स्वाधिष्ठान चक्र भी, और थकान भी कम महसूस होती है। प्रभाव भी ज्यादा पैदा होगा। निचले क्षेत्र के किसी भी भाग का संकुचन हो, तो भी काम कर जाता है। पर ध्यान रहे, कोई खास दिमागी काम करते हुए जैसे ड्राईविंग या मशीनरी ऑपरेट करते समय ध्यान मस्तिष्क पर ही रहना चाहिए। इससे ऐसा होगा कि मस्तिष्क की अतिरिक्त ऊर्जा नीचे चली जाएगी, जिससे फालतू विचारों से निजात मिलेगी और कार्यकुशलता में इजाफा होगा। यदि पूरा ध्यान नीचे जाने दिया, तो कार्यकुशलता में गिरावट आ सकती है। मैं देखता हूँ कि अविभाज्य प्राणों का विभाजन भी कितनी वैज्ञानिकता से किया गया है। यदि मस्तिष्क ज्यादा क्रियाशील हो तो प्राण व अपान के मिलान से प्राण के साथ कुंडलिनी अनाहत चक्र पर पहुंच जाती है। इसीलिए प्राणों का क्षेत्र ऊपर से नीचे अनाहत चक्र तक कहा गया है। यदि नीचे के, मूलाधार के आसपास के क्षेत्र ज्यादा क्रियाशील हों, और मस्तिष्क विचारशून्य सा हो, तो दोनों के मिलान से कुंडलनी नाभि चक्र पर स्वाधिष्ठान चक्र पर अभिव्यक्त होती है। इसीलिए कहा गया है कि अपान का क्षेत्र नीचे से ऊपर की ओर मणिपुर चक्र तक है। वैसे तो वहाँ समान प्राण का अधिकार बताया गया है, पर वह भी अपान का ही एक हिस्सा लगता है, या वहां अपान प्राण से ज्यादा ताकतवर लगता है। समान नाम ही इसलिए पड़ा है क्योंकि वहां प्राण और अपान का लगभग समान योगदान प्रतीत होता है।

मूलाधार पंप कुन्डलिनी योग का सर्वप्रमुख औजार है

मैंने यह भी नोट किया कि सिर्फ मूलाधार पंप से कुन्डलिनी को आगे के और पीछे के चक्रों पर आसानी से घुमा सकते हैं। पहले कुन्डलिनी मस्तिष्क से हृदय चक्र तक उतरती है। जरूरत के अनुसार चलाए गए मूलाधार पंप से काफी देर वहाँ स्थिर रहती है। फिर वहां से नीचे मणिपुर चक्र को उतरती है। वहाँ भी इसी तरह काफी देर स्थिर रहके वह स्वाधिष्ठान चक्र तक नीचे उतरती है। मैंने महसूस किया कि वह वह वहाँ से सीधे ही पीठ से ऊपर चढ़कर मस्तिष्क में गशिंग पैदा करती है। वैसे कहते हैं कि मूलाधार चक्र से कुन्डलिनी वापिस मुड़ती है। वैसे भी मूलाधार पंप से वह लगातार सक्रिय बना ही रहता है। आज्ञा चक्र पर हल्का ध्यान लगाने से वह गशिंग और भी ज्यादा हो जाती है, और केंद्रीय रेखा में भी आ जाती है। मुझे लगता है वह गशिंग रक्तवाहिनियों में दौड़ रहे रक्त की आवाज होती है। रक्त वाहिनियाँ भी नाड़ी या नदी की तरह होती हैं। वहाँ पर अन्य विचार भी होते हैं, हालाँकि मूलाधार पंप से उनकी ताकत पहले ही कुन्डलिनी को लग चुकी होती है। इसलिए वे कमजोर होते हैं। फिर जब फिर से मूलाधार पंप लगाया जाता है, तो वह कुन्डलिनी फिर मूलाधार चक्र तक पहुंच जाती है, और फिर पीठ से ऊपर चढ़ जाती है। काफी तरोताजा महसूस होता है। इस तरह यह क्रम काफी देर तक चलता है। अब और देखता हूँ कि और आगे क्या होता है। हाँ, फिर थोड़ी देर कुन्डलिनी मस्तिष्क में क्रियाशील रही, मतलब वह सहस्रार चक्र पर आ गई। जब सहस्रार चक्र थक गया तब वह आगे से आज्ञा चक्र को उतर गई। लगभग 5-10 मिनट तक कुन्डलिनी एक चक्र पर रही। जब चक्र लगातार सिकुड़न लगा कर थक जा रहा था, तब कुन्डलिनी अगले चक्र पर आ रही थी। मैं रिवोल्विंग और बैक पीछे को एक्सटेंड होने वाली चेयर पर आराम से अर्धसुषुप्त सी पोजिशन में लेटा था। जरूरत के हिसाब से हिल भी रहा था। जब मैं कोई अन्य काम कर रहा होता था, या उठकर चल रहा होता था, तब कुन्डलिनी एक ही चक्र पर ज्यादा देर ठहर रही थी। ऐसा इसलिए क्योंकि चक्र पर लगातार सिकुड़न न होने से वह चक्र थक नहीं रहा था। 5 मिनट बाद आज्ञा चक्र शिथिल हो गया, और कुन्डलिनी विशुद्धि चक्र को उतर गई। इस बार अगले चक्र के साथ पिछले चक्र भी एकसाथ क्रियाशील हो रहे थे, ऐसा लग रहा था कि एक लाइन से जुड़कर दोनों चक्र एक हो गए थे। चक्र पर कुन्डलिनी भी ज्यादा स्पष्ट लग रही थी। एक चक्र से दूसरे चक्र को कुन्डलिनी का गमन ज्यादा स्पष्ट अनुभव हो रहा था। शायद ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि कुन्डलिनी के पहले राउंड से सभी चक्र तरोताजा व अनवरुद्ध हो गए थे। इस बार उल्टी जीभ को तालु से टच करने से कुन्डलिनी विशुद्धि चक्र पर ज्यादा स्पष्ट थी। लगभग 5 मिनट बाद वह अनाहत चक्र को उतर गई। वहाँ वह मूलाधार पम्प के बिना भी बड़ी देर तक स्पष्ट चमक रही थी। चक्र ऐसे तो लगते नहीं मुझे जैसे कोई सीमांकित पहिया हो। मुझे तो सामान्य क्षेत्र के केंद्र का ही भान होता है। जैसे अनाहत चक्र, हृदय

के क्षेत्र का लगभग केंद्र। हाँ, कई बार उस क्षेत्र की सिकुड़न से एक बिंदु जैसा जरूर प्रतीत होता है उस क्षेत्र के बिल्कुल केंद्र में, जहाँ सिकुड़न और ऐंठन सबसे ज्यादा और पिनपॉइंटिड सी प्रतीत होती है। शायद इसी बिंदु को चक्र कहते हैं। हालाँकि यह तेज और काफी देर के ध्यान से बनता है। इस पर कुन्डलिनी तेज चमकती है। आमतौर पर तो कुन्डलिनी ध्यान चक्र क्षेत्र में ही होता है, एगजेक्ट चक्र पर नहीं। जैसे रथ के एक हिस्से का पूरा भार उस हिस्से के पहिए पर रहता है, वैसे ही शरीर के एक पूरे चक्र क्षेत्र की ताकत उस क्षेत्र के चक्र में होती है। उसको तन्दरुस्त करके पूरा क्षेत्र तन्दरुस्त हो जाता है। लगभग 5 या 7 मिनट बाद अनाहत चक्र के थकने पर मेरा पेट अंदर को सिकुड़ता है और एक साँस की हल्की गैस्प सी निकलती है। इसके साथ ही कुन्डलिनी मणिपुर या नाभि चक्र पर पहुंच जाती है। वहाँ लगभग 10 मिनट रही। उसके थकने से कुन्डलिनी शक्ति नीचे कहीं उतरती है। उस को थोड़े ध्यान से ढूंढने पर वह स्वाधिष्ठान चक्र पर सैटल हो गई। फिर वह पीठ से सहस्रार को चढ़ने लगी व आगे से उतरकर वहीं पहुंचने लगी। मूलाधार पंप का रोल यहाँ ज्यादा अहम हो गया। गशिंग के साथ वह लगभग 5 मिनट तक सहस्रार व स्वाधिष्ठान चक्र के बीच झूलती रही। फिर वह मूलाधार चक्र पर टिक गई। फिर वह दुबारा सहस्रार में सेटल हो गई। मस्तिष्क में कुन्डलिनी के इलावा अन्य भी हल्के फुल्के विचार रहते हैं। पर कुन्डलिनी ही ज्यादा प्रभावी रहती है, और उनकी शक्ति भी कुन्डलिनी को मिलती रहती है। अन्य चक्रों पर तो केवल कुन्डलिनी ही रहती है। लगभग 5 मिनट सहस्रार में रहकर वह फिर नीचे उतरने लगी। वह इसी क्रम में पहले आज्ञा चक्र को, फिर विशुद्धि चक्र को उतरी। मुझे फिर किसी जरूरी काम से उठना पड़ा। लगभग डेढ़ घण्टे के करीब यह सिलसिला चलता रहा। मैंने यह भी देखा कि जब कुंडलिनी अपने दूसरे और तीसरे दौर में आधार चक्रों में थी, तब एक मामूली सी जननांग सनसनी पैदा हुई थी, जिसमें एक मामूली सा तरल पदार्थ निकलता महसूस हुआ। एकबार मैंने नोट किया कि मस्तिष्क की यादों की झोली से एक आसक्ति से युक्त आदमी का चित्र प्रकट हुआ। वह मूलाधार पंप से भी नीचे नहीं उतर रहा था। कई बार पंप लगाने पड़े। औसत से ज्यादा ऊर्जा खर्च करनी पड़ी। उसके नीचे उतरने से उसकी शक्ति कुन्डलिनी को लग गई और वह चमकने लगी। इसीलिये कहा जाता है कि कुन्डलिनी योग के अभ्यास से पहले काफी समय तक दैनिक जीवन में अनासक्ति व अद्वैत का अभ्यास होना चाहिए। इससे मन के दोष खुद ही खत्म हो जाते हैं। इससे योग करना भी काफी आसान और मनोरंजक हो जाता है। यही बात मैं पिछली पोस्ट में कह रहा था कि सबसे पहले योग प्रशिक्षण लेने के इछुक को मैं शरीरविज्ञान दर्शन पुस्तक पढ़ने की और उसे कुछ सालों तक जीवन में ढालने की सलाह देता हूँ। उससे जब सच्चाई का पता चलता है, तो आदमी खुद ही अपने शौक से कुन्डलिनी योग सीखने लगता है। वह किसी बाध्यता या डर से ऐसा नहीं करता। इससे वह जल्दी और पूरा सीख जाता है। इसलिए कार्य की सफलता में सबसे बड़ा निर्णायक दृष्टिकोण होता है। 90% योग तो इस सकारात्मक दृष्टिकोण से हो जाता है। बाकि का 10% कुंडलिनी योग से पूरा होता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ, तभी बता रहा हूँ। दरअसल मानवतावादी लाइफस्टाइल व दृष्टिकोण भी नहीं बदलना है। लाइफस्टाइल व दृष्टिकोण तो समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार अपनाना ही पड़ता है। केवल यह करना है कि अपनी वर्तमान हालत पर अद्वैत दृष्टिकोण का अतिरिक्त चोला पहनाना है बस। बदलना कुछ नहीं है। आप जैसे हो, बहुत अच्छे हो।

कुन्डलिनी ही बारडो की भयानक अवस्था से बचाती है

आज भी पहले भी वर्णित किए गए एक मित्र द्वारा भेजा गया गीता का श्लोक मेरे दिल को छू गया। मैं उसे यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।
प्रयाणकाले मनसाचलेनभक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥८-१०॥वह भक्ति युक्त पुरुष अन्तकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापित करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य रूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है॥10॥इसका अर्थ मुझे यही लगता है, जो मैंने ऊपर वर्णित किया है। मस्तिष्क के विचारों पर ध्यान के साथ भौंहों के बीचोंबीच स्थित आज्ञाचक पर भी ध्यान लगने दो। इससे प्राण केंद्रीय नाड़ी लूप में चलने लगता है, और मस्तिष्क में फालतू विचारों का स्थान कुन्डलिनी ले लेती है। प्राण के साथ कुंडलिनी भी होती है। केंद्रीय चैनल में, कुंडलिनी हमेशा प्राण के साथ रहती है। क्योंकि केंद्रीय चैनल अद्वैत चैनल है, और कुंडलिनी हमेशा अद्वैत के साथ होती है। कुंडलिनी ही तो परमात्मा तक ले

जाती है। मुझे लगता है कि हर कोई परमात्मा तक पहुंच सकता है, पर ज्यादातर लोग मृत्यु के बाद के अंधेरे से घबराकर जल्दी ही नया शरीर धारण कर लेते हैं। हालाँकि अच्छा बुरा शरीर उन्हें अपने कर्मों के अनुसार मिलता है। शरीर के चुनाव में शायद उनकी मर्जी नहीं चलती। पर कुंडलिनी योगी को कुंडलिनी के प्रकाश से सहारा मिलता है। इसलिए वह लंबे समय तक परमात्मा में मिलने के लिए प्रतीक्षा कर सकता है। बुद्धिस्ट लोग भी लगभग ऐसा ही मानते हैं। वे मृत्यु के बाद की डरावनी अवस्था को बारडो कहते हैं।

कुन्डलिनी डीएनए को भी रूपांतरित कर देती है

मुझे लगता है कि कुंडलिनी आदमी का डीएनए भी रूपांतरित कर देती है। कुंडलिनी जागरण से ऐसा ज्यादा होता है। यदि मन के विचारों को नीचे उतारा जाए तो वे नीचे के सभी चक्रों पर कुंडलिनी में रूपांतरित हो जाते हैं। वैसे भी शरीर के हरेक सेल में दिमाग होता है। इन बातों की ओर वैज्ञानिक प्रयोग भी कुछ इशारा करते हैं।

कुन्डलिनी योग में दाढ़ी-मूँछ की भूमिका~ एक आध्यात्मिक हास्यात्मक व्यंग्य


Laughing Buddha

मैं एक पिछली पोस्ट में बता रहा था कि जब मेरी कुन्डलिनी शक्ति जागरण के लिए मूलाधार से ऊपर उठी , उस समय वहाँ महिलाओं का समूह सामारोहिक नाच गाना कर रहा था। एक महीने से चले आ रहे तीव्र कुन्डलिनी योगाभ्यास से मेरी मध्यम आकार की दाढ़ी उग आई थी। काले बालों के झुंड में उगे कुछेक सफेद बाल दुनिया की भीड़ में साधु पुरुष जैसे भले जान पड़ते थे। इसलिए कई औरतें मुझे भोलेपन, प्यार व अचम्भे से निहार रही थीं। वहाँ पर बढ़ी हुई और मैचिंग दाढ़ी वाले कुछ दूसरे लोग भी थे, जो मुझे विशेष प्यार, आदर और अपनापन दे रहे थे। इससे जाहिर होता है कि दाढ़ी वाले लोग ही असली दाढ़ी की पहचान रखते हैं। हीरे को कौन पहचाने, जौहरी। इसमें हंसने वाली कोई बात नहीं, क्योंकि यह जोक नहीं सच्चाई है। वैसे भी औरतें बढ़ी हुई दाढ़ी से बड़ी प्रभावित और आकर्षित होती हैं। यदि उसके साथ कुन्डलिनी योगाभ्यास भी जुड़ा हो और वह भी तांत्रिक प्रकार का, तब तो कहने ही क्या। इससे भी मेरी सुषुप्त कुन्डलिनी शक्ति को जागने के लिए पर्याप्त बल मिला। असली दाढ़ी वही होती है जो साधना के प्रभाव से खुद उग आए, जिसे उगा के न करना पड़े, और जिसे फैशनेबल बनाने के लिए ज्यादा सौंदर्य प्रसाधन भी न लगाना पड़े। साधना के बल से आंखों में ऐसी चमक पैदा हो जाती है कि बाकि सभी सौंदर्य प्रसाधन उसके आगे फीके पड़ने लगते हैं। दिल में इतना नूर छा जाता है कि चेहरे के नूर पर ध्यान देने का मन ही नहीं करता। बार-बार चेहरे के नकली नूर की तरफ ध्यान न जाए, इसके लिए ही तो आदमी की दाढ़ी अपने आप बढ़ने लगती है। कुछ करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। कई लोग ज्यादा आकर्षक बनने के लिए और खासकर महिलाओं को आकर्षित करने के लिए जानबूझ कर दाढ़ी बढ़ाते हैं। साधना का तो वे नाम भी नहीं जानते। कुछ महिलाएं ऊपर ऊपर से तो उनसे आकर्षित होती हैं, पर दिल से उनसे प्रभावित नहीं होती। पर जो महिला गहरी नजर और साधना का शौक रखती हो, वह तो उससे बेहतर क्लीन शेव आदमी को समझती है। क्योंकि क्लीनशेव पुरुष कम से कम धोखा तो नहीं कर रहा होता है, और बेचारा कम से कम नकली नूर से ही तो काम चला रहा होता है। ये जो कहते हैं न कि समथिंग इज बैटर दैन नथिंग। अब तो मेरी शेविंग किट डब्बे में पड़ी बोर हो रही होगी। पहले मैं नाई की दुकान जाया करता था हेयर ट्रिम करवाने। हफ्ते में एकबार। फेस पर कभी जीरो पर ज्यादातर नंबर एक की ट्रिम सेटिंग रखवाता था। मूछों पर ज्यादातर दो नम्बर की सेटिंग रखवाता था। अब तो मैंने अपना ट्रिमर ले लिया है। अपनी मर्जी से दाढ़ी और मूंछों की लंबाई रखता हूँ। एक दिन तो भाई गजब हो गया। हुआ यह कि दाढ़ी तो मैंने दो नम्बर की सेटिंग से बना ली थी। ट्रिमर के रेगुलेटर व्हील को तीन नंबर की तरफ घुमाने लगा ताकि मूंछें कुछ बड़ी रखता। पर यह क्या, व्हील उल्टा घूम गया। उस समय शाम गहरा जाने से वहाँ रौशनी भी कम थी और मैं भी कुछ ज्यादा ही जल्दी में था। अब इस पापी मन का पेट भरे तब न। वो भी दिन थे जब कई घंटों चल कर नाई की दुकान में पहुंचना पड़ता था। वहाँ भी रंगबिरंगे जंगलों को अपने मुंह पे सजाए लोगों की लंबी लाइन लगी होती थी। एक दाढ़ी के चक्कर में लगभग पूरा दिन बर्बाद हो जाता था। आजकल देवस्वरूप इस ट्रिमर ने घण्टों का काम मिनटों में समेट लिया है, फिर भी चाहिए इस मन को जल्दी। उस जमाने में एकदिन की पूरी कमाई मुंह पर उगे बगीचे की सफाई में लग जाती थी, पर आज यह कंजूस मन बाथरूम मिरर के ऊपर एक अच्छा सा बल्ब लगाने को राजी नहीं। बगीचा इस आस से

बोल रहा हूँ कि शायद कुंडलिनी फल इसीमें पकता हो, क्योंकि अधिकांश योगी बाबा दाढ़ी वाले ही नजर आते हैं मुझे। तीन की बजाय लैंथ सेटिंग एक हो गई थी। एक चौथाई मूँछ एक झटके में साफ हो गई। ट्रिमर कोई कैंची थोड़े ही है, जो संभलने का मौका दे। अधकटी मूँछ रखता तो लोग पता नहीं कौन सी मानसिक बीमारी समझ कर मुझे चिढ़ाते। इसलिए मजबूरी में पूरी मूँछ ही साफ करनी पड़ी और दाढ़ी भी। भला हो इस कोरोना फेसमास्क का जिसने अगली दिन मेरी सेहत को बचा लिया, वरना ताना दे देकर लोग जरूर गिरा देते। अब मार्केट में उपलब्ध स्टाईलिश ट्रिमर मशीनों के आगे रेजर ब्लेड वाला युग बीता हुआ युग लगता है। वैसे भी चिकित्सा विज्ञान के अनुसार क्लीनशेव मुंह ज्यादा गंदा होता है। जब सूक्ष्मदर्शी यंत्र से ऐसे मुंह का निरीक्षण किया गया तब कीटाणुओं की रंगबिरंगी कॉलोनियों के जंगल उसमें पाए गए। मुँह पर रेजर की खरोंच से शरीर के अन्दरूनी सेल्स कीटाणुओं की खुराक बनने के लिए इस तरह से बाहर निकलते रहते हैं, जैसे कि खेत में हल की खुदाई से मिट्टी में दबे कीड़े मकोड़े पक्षियों की खुराक बनने के लिए बाहर निकलते हैं। जब ट्रिमर से साफ किया गया मुँह देखा गया, तब बाहर से तो वह जंगल की तरह लग रहा था, पर अंदर से एकदम चकाचक। इसलिए हम आपको भी यही सलाह देते हैं कि एक अच्छा सा ट्रिमर रख लो और कुन्डलिनी योगी बन जाओ।

मेरे को देखकर बहुत से लोग जटाधारी बन गए। पर यह पता नहीं कि साथ में कुन्डलिनी योगी भी बने या फिर मुंहदिखाई भर के ही योगी बने। अगर योगी भी बनते तो मेरी सूरत के साथ सीरत का भी जायजा लेते। पर यह क्या, दूर-दूर और छिप-छिप के ही उन्होंने मेरी दाढ़ी का नुस्खा चुरा लिया, कुन्डलिनी योग गया तेल लेने। हाँ, तेल से याद आया। कइयों का आरोप है कि मूंछें बहुत तेल पीती हैं। इससे मुझे लगा कि यहाँ वस्तुस्थिति स्पष्ट कर देना जरूरी है, ताकि बेचारी बेकसूर मूंछें यूँ ही बदनाम न होती रहें। दरअसल वे अपनी मर्जी से या अपने ऐशो-आराम के लिए तेल नहीं पीतीं, बल्कि शनिदेव अपनी दिव्य अचिंत्य शक्ति से उनसे अपने लिए तेल पिलवाते हैं। इसलिए उन दाढ़ी-शरणागत लोगों से कुंडलिनी योगा हुआ हो या न हुआ हो, पर उनकी दाढ़ी में लगे तेल से शनिदेव जरूर प्रसन्न हुए होंगे। दोस्तो, आप तो जानते ही हो कि शनिदेव को काला रंग और सरसों का तेल बहोत प्रिय हैं। इसलिए यदि शनि का प्रकोप हो, तो इधर-उधर की जरा भी न सोचें। सरसों के तेल से सींच कर अपने सदाबहार झाड़ को जितना ज्यादा काला, घना और विकराल बनाएंगे, पूज्य शनिदेव उतने ही अधिक फूले नहीं समाएंगे। और आपको यह भी पता होगा कि नाराज शनिदेव जितने बुरे हैं, खुश होने पर उतने ही भले भी हैं। खैर मैं क्या कह रहा था कि अब चिकने चुपड़े लोगों की जगह जटाधारी लोगों का दिखना आम हो गया है। और तो और, नकल करने की होड़ ऐसी लगी कि छोटे बच्चे भी पापा के रेजर से मुँह खरोचने लग गए, इस आस से कि शायद उनके भी बाल उग आएं। मैं बढ़ी दाढ़ी के फैशन को शुरु करने वाला ऐसा आइकन पीस बन गया कि जब कहीं मुँह की खारिश से परेशान होके मुंह के बाल छोटे करता, तो मिलने वाले लोग बोलते कि भाईसाहब आजकल आप कमजोर हो गए हैं। कमजोर नहीं, बहुत कमजोर। कसूर ट्रिमर का, और उलाहना सुने सेहत। बालों का भला सेहत से क्या रिश्ता। अब तो वे लोग ही जानें कि बालों से ऐसी कौनसी नाड़ी निकलती है, जो सीधी सेहत से जाकर जुड़ती है। और तो और, जो लोग मुझे क्लीनशेव आदमी के रूप में जानते थे, वे भी मेरी दाढ़ी को देखकर बोलते कि मियाँ आप कमजोर हो गए हैं। यह अब एक महान और रहस्यमयी खोजबीन का विषय है कि मुंह के बालों में बदलाव से सेहत कैसे गिर जाती है। सेहत भी सिर्फ उन्हीं लोगों की नजर में गिरती है, जिन्हें चेहरे में बदलाव नजर आता है। उसको खुद को और दूसरे लोगों को सेहत का गिरना जरा भी नजर नहीं आता। मूँछों की बात कोई नहीं करता। पता नहीं क्यों लोगों को मूँछों की बात करना दुखती रग को छूना लगता है। पर सच्चाई यह है कि जो जिंदगी में कभी न हँसा हो, वह भी मूँछों की बात से बतीसी चमकाते हुए हंसी का फव्वारा छोड़ दे। सीधे तौर पर हेयर ट्रिमर को कोई दोष न दे। सबको पता है कि अगर ट्रिमर या बालों को दोष दिया तो उससे लिंगभेद पैदा हो जाएगा। इससे जाहिर होता है कि आजकल के लोग कितने सयाने हो गए हैं, और साथ में लैंगिक समानता के प्रबल पक्षधर भी।

भाईसाहब हम करें भी तो आखिर क्या करें। दाढ़ी मुंडवाएँ तो डाढ़ी वाले लोगों की गैंग से बाहर, और अगर दाढ़ी बढ़ाएं, तो चिकने लोगों की गैंग से बाहर। आगे कुआँ, पीछे खाई। आप मानो न मानो, इस समस्या का हल इलेक्ट्रॉनिक ट्रिमर ही है। इसको लगाके आदमी इधर भी खप जाए और उधर भी। इसको दो नम्बर पर मुंह पर घुमा दो, तो दाढ़ी वाले भी खुश, और चिकने भी खुश। दो नम्बर पर ट्रिमर लगा डाला, तो लाइफ झिंगा-लाला। बौद्धों वाला मध्यमार्ग ही सबसे अच्छा है। अगर ज्यादा ही असर चाहिए तो नकली दाढ़ी मूँछ रख लो, और चीनी में नमक की तरह हर जगह घुल-मिल जाओ। पर मुंह के बालों से तो व्यक्तित्व की पहचान जुड़ी होती है न। व्यक्तित्व की पहचान

गई घास चरने। उसका जरा भी टेंशन नहीं लेने का। अपुन तो बस मजे का बीन बजाना है। वैसे भी जजमेंटल बोले तो मीनमेख ढूंढते रहना आत्मा के लिए नुकसानदायक होता है। बस देखते रहिए, हंसी-मजाक में ही आप एक महान आध्यात्मिक गुरु बन जाएंगे। आपके तो दोनों हाथों में लड्डू आ जाएंगे।

कहते हैं कि बालों में आत्मा बसती है। आदमी को अपने मुंह के बाल सबसे ज्यादा अजीज होते हैं। मेरा डॉक्टर लोगों से दोस्ताना सम्बंध रहता है, क्योंकि वे बाल की खाल निकालने वाले होते हैं। भला उनसे अच्छा बालों को कौन समझ सकता है। वे बताते हैं कि वेंटिलेटर पर जिंदगी की साँसें गिन रहे लोग भी अपनी मूंछों को साफ नहीं करवाते। वे अक्सर वेंटिलेटर के काम में भौतिक बाधा पहुंचाया करती हैं। माया मरे न मन मरे, मर-मर गए शरीर; आशा-तृष्णा न मिटे, कह गए दास कबीर। आदमी सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है, पर अपने मुँह के बालों की बेइज्जती कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। तभी तो अजीज शख्स को नाक का बाल कहकर भी संबोधित किया जाता है। बेशक नाक का बाल है, पर है तो मूँछ का पड़ौसी ही। और वो पड़ौस ही क्या, जहाँ दिल न मिले। इसी तरह, जब चोर की दाढ़ी में तिनका, यह बोला जाता है, तो आदमी दाढ़ी पे हाथ घुमाए बिना रह ही नहीं पाता, बेशक उसे चोरी की सजा में फाँसी ही क्यों न हो जाए। आपको विश्वास न हो, तो आप प्रयोग करके देख लो। भला किस सच्चे दाढ़ीशुदा आदमी को अपनी प्रियतमा दाढ़ी पर एक अदना सा तिनका बर्दाश्त हो सकता है। बालों विशेषकर मूँछ के बालों के प्रति इस अथाह आकर्षण का ही परिणाम है कि एकबार वनविभाग का छापामार दल बाघ के दांतों और नाखूनों की छानबीन करने लोगों के घर पहुंचा, तो उसे उनकी जगह पर बाघ की मूँछ के बाल छिपाए हुए मिले। और तो और, सिक्ख धर्म में तो केश को धार्मिक महत्त्व का सर्वप्रमुख चिन्ह माना गया है। वहाँ तो केश रक्षा के लिए कटार का चलना भी जायज है। आपने महाभारत की कथा तो सुनी ही होगी न। उसमें पांडव, भगवान श्रीकृष्ण की सलाह पर अश्वत्थामा को मृत्युदंड न देकर उसका पूर्ण मुंडन करते हैं। साथ में माथे की मणि भी निकाल लेते हैं। भाईसाहब, वह मणि और कुछ नहीं, कुंडलिनी ही तो है, जो बालों के साथ खुद ही चलती बनी। वही माथे पर स्थित आज्ञाचक्र पर निवास करती है। अश्वत्थामा ने इसे अपनी मृत्यु से भी ज्यादा अपमानजनक समझा, और फिर देखा नहीं आपने कि कैसे उसने आगे चलकर बदले की कार्यवाही करते हुए ब्रह्मास्त्र चला दिया था, जिससे उत्तरा के गर्भ में झुलसते हुए परीक्षित को कैसे भगवान श्रीकृष्ण ने बाल-बाल बचा लिया था। इधर एक मशहूर नेत्री ने विदेशी मूल की महिला को प्रधानमंत्री बनने से रोकने के लिए अपने पूर्ण मुंडन की धमकी दे डाली, तो उधर एक विश्वविजेता खिलाड़ी ने अपनी कुलदेवी को प्रसन्न करने के लिए अपना पूर्ण मुंडन करा ही डाला। इसी तरह, तिरुपति बालाजी मंदिर में भगवान वेंकटेश्वर को बाल चढ़ाए जाते हैं। मान्यता है कि भगवान वेंकटेश्वर इन बालों की कीमत से कुबेर का कर्ज उतारते हैं। कुबेर सृष्टि के सबसे धनवान देवता हैं। इसका मतलब है कि फिर कर्ज की रकम भी बहुत भारी भरकम रही होगी। तो क्या फिर भगवान वेंकटेश्वर भक्तों से सोना-चांदी नहीं माँग सकते, सिर्फ बाल ही क्यों मांगते हैं। क्योंकि उन्हें पता है कि बाल सृष्टि की सबसे कीमती वस्तु है। वे जानते हैं कि बालों के अंदर आदमी का सारा बॉयोडाटा छिपा होता है। आप गूगल और फेसबुक जैसी कम्पनियों से पूछ कर देख सकते हैं कि डाटा की कीमत क्या होती है। थारे को जवाब मिल जावेगा। इतना इम्पोर्टेन्ट मैटर होने के बाद भी बालों की अचिंत्य शक्ति पर सही ढंग से वैज्ञानिक शोध हुए ही कहाँ हैं अभी तक। मुझे तो लगता है कि आज तक की सबसे कम समझी गई और सबसे जरूरी चीज बाल ही हैं। तो दोस्तो, बात यहीं पर जाकर अटकती है कि दाढ़ी-मूँछ के मामले में लापरवाही बरतना अच्छी बात नहीं है।

कुंडलिनी से भी तो आदमी का इसी तरह का गहरा लगाव होता है। हो न हो, पूरा का पूरा कुंडलिनी रहस्य बालों में ही छुपा हो। तभी तो केशों को पवित्र तीर्थस्थानों पर बहाने का रिवाज है। एक बार मैं दुश्मन इलाके में बैठे नाई से बाल साफ करवाने चला गया। समझ लो, यह मेरा एक रिसर्च प्रोजेक्ट था। मैं एक देसी वैज्ञानिक जो ठहरा। यह अलग बात है कि मेरी इन शुद्ध देसी खोजबीनों पर कोई ध्यान नहीं देता। फिर क्या था, उसके बाद वहां के लोग मेरे अजीज और मैं उनका अजीज। बालों की चमत्कारिक शक्ति को देखकर मैं दंग रह गया। बालों के रहस्यमयी टोटकों पर अभी ढंग से रिसर्च नहीं हुई है भाई साहब। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि बालों में ही सभी समस्याओं का हल मिल जाए। हमारे प्राचीन ऋषि मुनि बड़े पहुंचे हुए वैज्ञानिक हुआ करते थे। न हींग लगाते थे, न फिटकरी, और रिसर्च इतनी गहरी, जिसे छूने तक की हिम्मत आज की बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएं न कर सके है। तांत्रिक टोटकों को ही देख लो। कैसे पहुंचे हुए तांत्रिक, आदमी के सिर्फ एक बाल से पूरे आदमी को वश में कर लेते हैं। महिलाएं ऐसे केशतंत्र का ज्यादा शिकार बनती हैं, क्योंकि उन्हें ही अपने केश सबसे प्रिय होते हैं। बालों के इस छोटे से टोटके के आगे सारा आधुनिक विज्ञान फेल।। यह तो एक छोटा सा उदाहरण है। हमारे साथ बने रहिए, और देखते रहिए, आगे-आगे क्या होता है।

आदमी का त्वरित रूपांतरण जैसे कुंडलिनी जागरण से होता है, वैसे ही मूँछ काटने से भी होता है। इसीलिए पुराने जमाने में लोग अपने पापों से छुटकारा पाने के लिए अपनी मूँछ काट दिया करते थे। तभी से अपनी मूँछ बचाने की कहावतें बनीं। उदाहरण के लिए मूँछ ऊंची रखना, मूँछ न कटने देना, मूँछ का सवाल होना, मूँछ को शर्मिंदा न करना, मूँछ की लाज रखना, मूँछ की शर्म करना आदि बहुत सीं। सच भी है, सोने के जेवर की तरह अच्छी तरह से संभालकर रखी हुई मूँछ बुरे वक्त पे काम आती है। मुझे भी एकबार प्यार-संभाल कर रखी हुई मूंछों ने ही बचाया था। हुआ यह था कि मैं अपने बीते हुए जीवन से पूरी तरह उदास और निराश हो गया था। फिर किसी दैवकृपा से मिले एक गुरु सदृश तजुर्बेदार व्यक्ति ने मुझे मूँछ साफ करने की सलाह दी थी। वे खुद भी अपने नित नए नवेले चेहरे के शौकीन थे। दरअसल वे मेरे कॉलेज टाइम के रंगीन मिजाज के प्रोफेसर ही थे। कॉलेज की लड़कियां तो उनसे बड़ा लगाव रखती थीं। एकबार तो लगाव इस हद तक बढ़ गया था कि कुछेक छात्राओं को अपने साथ छेड़छाड़ की आशंका पैदा हो गई थी। भगवान जाने क्या-क्या मामले रहे होंगे। खैर, वे मूंछों की वजह से मेरे ऊपर ढाए गए सितम से अच्छी तरह वाकिफ थे। आपको तो पता ही है कि कॉलेज लाइफ में चिकने चेहरों की ही तूती बोलती है। मूंछों वालों को तो वहाँ पर बाबा बोला जाता है। बाबा भी अगर असली समझे, तब तो बात भी बने न। अब तो बाबा का मतलब भंगी, पगला, इश्क-विश्क में हारा हुआ और पता नहीं क्या-2। घिन्न आती है सोचकर भी। और तो और जितना भी आप अकल का घोड़ा दौड़ा सकते हो नकारात्मक लफ्जों के मैदान में, दौड़ा लो, सबका पर्यायवाची बाबा ही दिखेगा आपको। लापरवाह तो बाबा, भाँग पिए तो बाबा, शराब पिए तो बाबा, हड्ड चबाए तो बाबा, लुगाई संग घूमण लागे तो बाबा, मार-कुटाई करे तो बाबा। बस-2, समझदारों को इशारा ही काफी होता है। असली बाबा को बाबा कहोगे, तो चिमटा पड़ेगा। बाबा क्या दहेज में मिला शब्द है, जिस मर्जी के साथ मन किया, चिपका दिया। असली बाबाओं में एकता ही कहाँ, जो कोर्ट में पेटिशन दायर कर सके। कहते हैं न कि शेर अकेला चलता है, झुंड में तो भेड़-बकरियां चला करती हैं। इधर असली जाति-वर्ग को असली नाम से नहीं बुला सकते, और उधर जहाँ देखो, बाबा-बाबा-बाबा। तौबा के लिए, न बाबा न। बच्चियां नूं पुचकारण लई, ओ मेरा बाबा। इह तां माड़ा जिहा जचदा वी है, किवें कि बाबा ते बच्चे दोनों ही सौखे हुंदे हन। और अब तो नया ही ट्रेंड चल पड़ा है, माई क्यूटी बाबा। बाबा की मशहूरी का आलम यह कि एकबार मेरी पत्नी देवी ने मुझे प्यार से बाबा क्या कह दिया, मेरा छोटा सा बेटा हँसता ही जाए, हंसता ही जाए। मैंने पूछा मेरे बाबा इतना क्यों हँस रहे हो। तो वह मेरी तरफ अंगुली करके हँसते हुए बोला, बा-बा ब्लैक शीप। आजकल के बच्चे भी न कितने समझदार हो गए हैं। बाबा बरगा यूनिवरसल बोल नी देख्या अड़यो। कभी उस्ताद पहुंचे हुए हुनरमंद को कहते थे। आज भंगी ट्रक ड्राइवर को बोलते हैं। एक बार मैंने एक देसी इंजीनियर को तारीफ में उस्ताद क्या बोल दिया, उसने अगले ही दिन मुझे मानहानि का नोटिस भिजवा दिया। हाय राम, ये शब्द हैं के देसी तोप के गोले। गुरु शब्द बड़ा पवित्र अल्फ़ाज़ माना जाता है। पर एक हिजड़े के निर्माण के दौरान भी इसका बहुत प्रयोग होता है। वहाँ पर कामदेव के शहर को उजाड़ने वाले एक्सपर्ट शख्स को भी गुरु बोला जाता है। कोई गलत काम करके आए, तो सबसे पहले इन्हीं शब्दों से स्वागत होता है, वाह गुरु। अब समय आ गया है कि हम पवित्र शब्दों की मर्यादा को बचाएं। अगर देशद्रोही की नापाक मूँछों को बचाने के लिए आधी रात में कोर्ट खुलवाए जा सकते हैं, तो इन शब्दों को बचाने के लिए क्यों नहीं। जबकि ये शब्द तो सबसे बड़े देशप्रेमी हैं, क्योंकि ये हमारी सनातन संस्कृति की रक्षा करते हैं। मैंने तो अपने समझदार मित्रों से साफ-2 शब्दों में कहलवा दिया है कि या तो वे मेरे आध्यात्मिक लेख न पढें, या फिर मुझे सपने में भी गुरु और बाबा न बोलें। एक चालू सा दोस्त मुझे बार-2 शरीफ कहकर चिढ़ाता था। मैंने उसे खरी-2 सुनाते हुए चेता दिया कि भले ही वह पाकिस्तान जाकर नवाज शरीफ को शरीफ बोल आए, पर मुझे कभी शरीफ न बोले। उसके बाद वो मुझे नेस बोले तो अंग्रेजी का अच्छा बोलने लगा। हाँ, तो मैं क्या मूल प्रवचन दे रहा था कि अब वे हरफनमौला महोदय अपने योग्य शिष्य को कैसे न पहचानते, सो उन बिन बुलाए गुरु ने पहली ही मुलाकात में मुझे प्रेम, गर्व, मुस्कान और गर्मजोशी के साथ सबसे प्रिय या सच्चा शिष्य कुछ ऐसा कहकर संबोधित कर दिया। वो मेरी मूंछों का काला झाड़ देखकर कुछ औंच जैसे भी गए थे, पर ये तो घुल-मिल कर उन्हें बाद में पता चला था कि मेरे दिल पर तो मूंछें थीं ही नहीं। बाद में कभी बता रहे थे कि तू डेंजरस हुआ करता था। मैंने भी स्पष्टीकरण दे दिया था कि वो मेरी मूंछें डेंजरस थीं, मैं नहीं। झाड़-साफ-दिमाग तो थे ही, इसलिए एकदम से समझ गए। फिर जाके ढंग से घुल-मिल पाए, नहीं तो मुच्छड़ों और मुच्छकटों की प्रॉपर हुकिंग कहाँ। कहाँ-2 की सुनाऊँ, इन वफादार मूछों ने कहाँ-2 नहीं बचाया है मुझे। अब तो लगता है कि कुत्ते उनके घने बालों के कारण ही वफादार होते हैं। एक-दो मुच्छकटे और 1-2 मुच्छड़ लोग भी उनके अगल-बगल में, उनसे कुछ इधर-उधर की

हांकते कामकाजी चहलकदमी कर रहे थे। अपने प्रति उनके अंदर इतने सारे सुंदर और मजबूत भाव, वो भी एकसाथ देखकर तो मैं दंग ही रह गया। साथ में मैं अपने को खुशकिस्मत भी समझने लगा कि उन्होंने मुझे मुच्छड़ शिष्य नहीं कहा। वो भाव-प्राकाट्य उन्होंने इतनी तेजी से किया कि जबतक उनके एकदम चिकने चेहरे से मेरी नजर हटती और मैं उनसे कुछ कह पाता, तब तक वे वहाँ से रुखसत भी कर गए थे। उस समय तो मुझे लगा था कि शायद जोक कर रहे होंगे, पर अब समझ आ रहा है कि वह जोक नहीं, उनका सच्चा मुच्छकटा आशीर्वाद था। वे खुद मुच्छड़ों और मुच्छकटों के अघोषित गठबंधन के सताए हुए लगते थे। बाद में तो मुझे उनसे यह गम्भीर शिकायत भी सुनने को मिली कि उन्हींके शिष्यगण उन्हें अपने चेहरे का बंजर मैदान दिखाकर चिढ़ाया करते थे। शायद इसी वजह से कई बार अपनी मुच्छों को टेबल पर सजा देते थे। हो सकता है कि वे कॉलेज टाइम की मेरी तांत्रिक गुरुभक्ति की निष्ठा को संयोगवश ताड़ गए हों। उनको भोले शंकर और कामदेव का एकसाथ आशीर्वाद प्राप्त लगता था। उस समय उनकी जिंदगी का चिकना और फैशनेबल चेहरा रखने का दौर चल रहा था। इसलिए मूँछ-छेदन संस्कार की दीक्षा उनसे लेना ही मैंने सबसे उचित समझा। उन गुरुदेव की सलाह पर मूँछ काटने से मेरा जबरदस्त रूपांतरण हुआ और उस नाजुक दौर में उन्होंने मुझे ऐसे संभाला जैसे एक कुंडलिनी गुरु अपने शिष्य को कुंडलिनी रूपांतरण के नाजुक दौर में संभालता है। मूँछ काट कर चिकना चेहरा बनने से मुझे ऐसा लगा जैसे कि मेरी जिंदगी का रिफ्रेश बटन दबा हो। जैसे कि मूँछों के साथ बीती जिंदगी भी उतर गई हो, और मैंने एक नया सा जनम ले लिया हो। मुंडन साईंस अब कुछ गले उतर रही है। कुंभ में भी नागा साधु बनने आए लोगों के सिर और चेहरे का पूर्ण मुंडन करके ही उनका माईंडवाश किया जाता है, ताकि वे पिछली जिंदगी में कभी वापिस लौट ही न सके। यज्ञोपवीत संस्कार के समय भी तो ऐसा ही पूर्ण मुंडन किया जाता है, बालों की एक लंबी शिखा को छोड़कर। उसके बाद भी आदमी का दूसरा जन्म माना जाता है, मतलब माइंड वाश हो जाता है उसका। बालों की शिखा उसे कुंडलिनी से और घर से जोड़कर रखती है, इसीलिए तो वह घर नहीं छोड़ता, बस कुंडलिनी साधना में लगा रहता है। इसी तरह, बौद्ध भिक्षु इनसे भी एक कदम आगे रहते हैं। वे हमेशा ही पूर्ण मुंडन करवाए रखते हैं, ताकि आम लोग उनके संपर्क में कभी आ ही न सके, और आकर उनकी साधना में विघ्न न डाल सके। अब केशप्रेमी लोग कहाँ जाने लगे मुंडक सभाओं में। कुछ किस्म के मुसलमान भाई तो काफिरों से अलग दिखने के लिए अलग ही नायाब नुस्खा अपनाते हैं। वे मूँछों को तो साफ कर देते हैं, पर दाढ़ी को बड़ा पालते-पोसते हैं। तो कुछेक बकरे के जैसी दाढ़ी रखते हैं। रब खैर करे। कहीं पर लोग दाढ़ी पर चित्र-विचित्र डिसाईन और नक्शे आदि बनवाते हैं। भाई उनके नेचरल आर्ट को तो दाद देनी पड़ेगी। न रँग लगे, न कैनवास, बस एक बढ़िया सी कैंची चाहिए। कुछ लोग चार्ली चैपलिन की तरह नाक के ठीक नीचे, मधुमक्खी के जितनी मिनी मूँछ रखते हैं। इससे उन्हें नई ही उमंग का एहसास होता है। ऐसी मूँछ रखते हुए भी डर लगता है कि कहीं खुराफाती लोग मधुमक्खी को भगाने का झूठा बहाना बनाकर मुंह पर थप्पड़ ही न मारते रहे। कुछ लोग बहादुरी का प्रदर्शन करने के लिए दोनों तरफ को लम्बी, उठी हुईं और पैनी मूंछें रखते हैं, जैसे कि जाबांज फाइटर पायलट अभिनन्दन। सुनने में तो यह भी आया कि उनकी मूँछों के डर से ही पाकिस्तान को उन्हें चौबीस घंटे के अंदर रिहा करना पड़ा था। कुछ लोग अपने आप को विशिष्ट जताने के लिए दाढ़ी-मूँछ को मेहंदी या बनावटी रसायनों से लाल रँगाते हैं, तो कुछ उन्हें कज्जली काला कर देते हैं। बेचारे आम गरीब आदमी को ही मन मसोस कर झुंड की खाल के अंदर रहना पड़ता है, क्योंकि यदि वे विशेष बनने लगेंगे, तो खाएंगे क्या। लोगों के इस मिजाज से अंदाजा लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल में मूँछों का वास्तुशास्त्र जरूर रहा होगा। फिर हो सकता है कि वह मध्ययुग में जिहादियों द्वारा जला दिया गया हो। उसमें उन्हें अपनी अय्याशीपरस्त मूँछों की तौहीन नजर आई हो। भला एक अमनपसंद शख्स को अमन का बेइंतेहा पैग़ाम देने वाली पाक-साफ मूँछों की शान में गुस्ताखी कैसे बर्दाश्त हो सकती थी। तौबा-तौबा। प्रथमद्रष्टया तो यही लगता है कि इस तरह की विकृत मूँछ-विद्या से ही हिंदुओं के अनगिनत धार्मिक स्थल नेस्तनाबूद किए गए हैं, और असंख्य धार्मिक ग्रन्थ सुपुर्दे खाक किए गए हैं। तो भाइयो मैं अपनी मूँछमुंडन से जुड़ी आपबीती बता रहा था कि कैसे उससे डिप्रेस करने वाली वर्तमान की, कॉलेज की और बेरोजगारी की जिंदगी चली गई थी रिसाइकिल बिन में, और बचपन के साथ स्कूल टाइम की जिंदगी आ गई थी रिसाइकिल बिन के कचरे से निकल कर मेरे मस्तिष्क के डेस्कटॉप पर। ऐसा लगा जैसे मेरे दिमाग की वही पुरानी विंडो अपडेटिड वर्शन के साथ रीइंस्टॉल हो गई हो। वही पुराने जीवन के ख्याल, पर अनौखे और हुस्न से भरे अंदाज में। दोस्तो, बहुत तरक्की की मैंने उस दौर में। मेरी तरक्की का बाहरी माहौल तो पहले से ही बना हुआ होगा, बस भीतरी माहौल डगमगा रहा था, जिसे मेरे चिकने चेहरे ने संभाल लिया। जब मेरी हालत स्थिर हो गई, तब मैंने फिर से चेहरे पे फसल उगाना शुरु कर दिया।

बर्फबारी के दिनों में तभी तो अनाज मिलेगा न जब पहले से फसल इकट्ठी कर रखी हो। मित्रो, मूंछों के सभी रहस्यों से पर्दा उठाने लगूँ तो एक पूरा मूँछ पुराण बन जाए। हाय, ये लेखन भी भला क्या अजीब बला है न। हाथ थक जाते हैं, पर मन नहीं थकता। और अगर तो मूँछ जैसा रोमांचक विषय हो, तब तो सवाल ही पैदा नहीं होता कि मन थक जाए। तजुर्बेदार बुजुर्ग लोग कहते हैं कि महिलाएं शादी से और पुरुष रण से वापिस नहीं लौटते। इसी तरह मूँछ जैसे दिलछेड़ विषय के लेखक की लेखनी कभी कागज से वापिस नहीं लौटती। इसलिए सब्र बनाकर पढ़ते रहना, ताकि लेख के अंत में आप भी अपने को मूँछ विशेषज्ञ बना हुआ पाओ। दरअसल मूंछों को हटाने से मेरी बरसों पुरानी दबी पड़ी कुंडलिनी ऐसे चमकने लगी थी, जैसे झाड़ को हटाकर उसके अंदर दबी पड़ी सोने की अंगूठी चमकती है। यह भी एक शोध का विषय है कि क्या मूँछों का अंधेरा चमकदार कुंडलिनी को ढक कर रखता है। मूंछें साफ करने का सबसे बड़ा फायदा मुझे यही हुआ कि मैं अपनी कुंडलिनी को अच्छी तरह से पहचान पाया था। फिर मैंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। वो मुझे जहाँ लेके जाती रही, मैं वहाँ हो आता रहा, और वह हर प्रकार से मेरा भला ही करती रही। कुंडलिनी के आगे जैसे मैं बच्चे की तरह नँगा ही हो गया था। मूँछें उड़ाने और नंगे होने के बीच में कोई ज्यादा अंतर है भी नहीं। मैंने उसके आगे अपने आप को समर्पित कर दिया था। कुंडलिनी के सहयोग से कड़ी मेहनत करके मैंने कामयाबी के बहुत से कीर्तिमान स्थापित किए दोस्तो। कुंडलिनी स्त्रीलिंग में थी, तभी तो कुंडलिनी को एक स्त्री की तरह संबोधित किया जाता है। ये जो प्यार-व्यार और शादी-ब्याह का खेल भौतिक जगत में चलता रहता है न, बिल्कुल ऐसा ही मन के सूक्ष्म जगत में भी चलता रहता है। फिर क्या था, उस स्त्रीलिंग कुंडलिनी को देखकर पुलिंग गुरु भी पहुंच गए मूँछ-मुस्कुराहट बिखेरते हुए गाजे-बाजे के साथ। दोनों ने शादी की, रोमांस किया, बच्चे पैदा किए और फिर दोनों बुड्ढे होकर एक-दूसरे के प्रति उदासीन जैसे भी हो गए। वो मेरे सूक्ष्म माँ-बाप मुझे छोड़कर जा रहे थे। मैं कुछ उदास रहने लग गया था। तभी मैंने कुंडलिनी योग का अभ्यास शुरु किया और उन मुच्छड़ गुरु (कुंडलिनी) की मूँछ खींचकर उन्हें फिर से जगा दिया बोले तो एकदम मस्त कुंडलिनी जागरण। तब जाकर मैंने कुछ राहत की साँस ली और घर की खेती को फिर से उगाना शुरु कर दिया। पर आज भी मैं बड़े झाड़ से डरता हूँ। पुराना सदमा जो गया नहीं मेरे दिमाग से पूरी तरह। पता नहीं क्यों अंधेरा जैसा लगता है इसके नीचे। क्या सबको लगता होगा, या मेरेको ही। इसकी सफाई से क्या सबकी कुंडलिनी चमकती होगी, या सिर्फ मेरी ही चमकी थी। यह सब साझे शोध और अनुभव से ही पता चल सकता है। इसलिए मैं इनकी इस तरह से छंटाई करता रहता हूँ, ताकि इनकी जड़ तक हवा और रौशनी जाती रहे। पर मुझे लगता है कि यह मन का वहम भी है। कुंडलिनी जागरण के समय तो मेरे पूरे चेहरे पर झाड़ पसरा हुआ था, हालाँकि वह मध्यम आकार का था, पर था तो घना झाड़ ही। उस समय तो हर जगह प्रकाश ही प्रकाश था। इससे जाहिर होता है कि सबकुछ देश, काल और मानसिकता पर निर्भर करता है। इसलिए जैसा अच्छा लगे, वैसा करना चाहिए, पर कुंडलिनी के लिए प्रयास हमेशा करते रहना चाहिए। यदि घासफूस की तरह हल्की कुंडलिनी को यह मूँछों का झाड़ दबा कर रखता है, तो फनदार कोबरा नागिन की तरह फुफकारे मारने वाली शक्तिशाली कुंडलिनी को दुनिया की नजरों से बचाते हुए संभालकर भी यही रखता है। इसीलिए तो मैंने कहा न कि वक़्त की भाषा पढ़नी आनी चाहिए, और सर्वहितकारी मूँछों का हमेशा सम्मान करना चाहिए। वक्त के अनुसार आदमी खुद चलता नहीं, और दोष मढ़ता है मूँछों के सिर। सबसे ज्यादा दुरुपयोग आदमी ने मूँछों का खुद ही किया है। मूँछों की शक्ति से पता नहीं कितने अनैतिक काम किए हैं उसने। मूँछों की अथाह शक्ति का अंदाजा इसीसे लगाया जा सकता है कि सिर्फ इनके ऊपर प्यार भरा हाथ फेरने से ही जोश कई गुना बढ़ जाता है। ए लो जी, इस क्रिया के लिए मूँछ-विशेषज्ञों द्वारा प्रदत्त नाम भी याद आ ही गया, मूँछ पर ताव देना। बड़ा गूढ़ नाम है यह। आप सोच भी नहीं सकते कि ताव का अर्थ यहाँ ताप या गर्मी है। जैसे मालिश की गर्मी से सरोबार पहलवान अंगड़ाई लेते हुए उठ खड़ा होता है, ऐसे ही मूंछें भी। उपरोक्त कुछ मुख्य वजहों से मूँछों की इज्जत आज इस कदर गिर गई है कि लड़की वाले सबसे पहले यही पूछते हैं कि कहीं लड़का मूँछों वाला तो नहीं है। कभी मूँछ वाले का समाज में विशिष्ट रुतबा हुआ करता था। आज तो आलम यह है कि मूँछों को यह लोरी-गीत सुनाकर शांत करना पड़ता है, मत रो—-~मेरी मूछ, चुप हो जा—नहीँ तेरी पूछ। जो कुकाल में होता है, बुरे हाल में होता है; ऐ यार मेरे साथ तेरे वही तो हुआ; मत रो—~~~~~—-। दोस्तो, यह ट्रेंड बदलना चाहिए, और हमें बेकसूर को बचाने के लिए मिलकर आगे आना चाहिए। और आगे की कहें, तो डाकुओं का भी मूँछों की बदनामी में भारी हाथ रहा है। हमारे समाज के लेखकों और कवियों ने भी मूँछों को डाकुओं के साथ बहुत जोड़ा है। यह कहीं पढ़ने में नहीं आता कि बड़ी-2 मूँछों वाला विद्वान। और तो और, देवियाँ भी पीछे नहीं रही हैं। उनका भी बच्चों को सुलाने के लिए बड़ी-2 आँखों के साथ, डरावनी मुद्रा में अक्सर यही डायलॉग होता है, बड़ी-2 मूँछों

वाला-ला-ला-ला—। अब इससे ज्यादा क्या कहूं, विलुप्ति की कगार पर खड़ी मूँछों को बचाने के लिए उनकी खोई इज्जत वापिस लौटाना जरूरी है कि नहीं। यदि जरूरी है, तो मूँछ-संरक्षण के लिए भी कानून बनने चाहिए। आज की इस विकट परिस्थिति में मूँछ-आरक्षण के लिए कानून का बनाया जाना बहुत जरूरी हो गया है। मुच्छड़ों को अल्पसंख्यक वर्ग का दर्जा दे देना चाहिए। मूँछ संरक्षण के लिए कल्याणकारी योजनाएं चलाई जानी चाहिए। मूँछ-भत्ते का विशेष प्रावधान होना चाहिये। अपनी कहूँ, तो मेरे चेहरे पर घनी दाढ़ी आती ही नहीं। इससे इसकी जड़ों में हवा व रौशनी खुद ही लगातार पहुंचती रहती है। हो सकता है कि मेरी सदाबहार कुंडलिनी के पीछे इसी अधमुंडी किस्म की मूँछों का हाथ हो। इसको लेकर मेरी घरवाली बोलती रहती है कि आप दाढ़ी के साथ लड़की जैसे लगते हो। इसलिए कई बार मेरे मन में आता है कि क्यों न इस नपुंसकता की निशानी को जड़ से ही उखाड़ फैंकूँ। पर तभी यह भी सोचता हूँ कि अगर भरी बरसात के बीच खेत को बंजर रहने दिया, तो जालम गर्मी के दिनों में क्या खाएँगे। अगर सर्दियों में ही सारे कपड़े उतार दिए, तो गर्मियों में क्या उतारेंगे।

दोस्तो, मैंने यह भी महसूस किया कि खाली मूँछ की बजाय दाढ़ी-मूँछ का मिश्रण ज्यादा दार्शनिक होता है। कहते हैं न कि चेहरा मन का आइना होता है। आईने के अंदर सुंदर बनने से उसके सामने खड़ा आदमी खुद ही सुंदर बन जाता है। इसलिए चेहरे पर अद्वैत दर्शन बना कर रखने से मन में खुद ही अद्वैत छा जाता है। मुख्य भूभाग को बंजर रखना और पहाड़ी की तलहटी में बनी छोटी सी पथरीली क्यारी में झाड़ ऊगा कर रखना समझदारी का काम भी तो नहीं लगता। तो इस समस्या को देखते हुए मैंने पूरे भूभाग में बिजाई शुरु कर दी थी। पर फिर एक नई समस्या आन पड़ी थी। फसल के एकमुश्त कटान के बाद पूरा भूभाग बंजर और नँगा लगता था। कोई सीधा आसमान से जमीन पर आ गिरे और खजूर भी न मिले अटकने को, तो उसकी व्यथा-पीड़ा आप खुद भी समझ सकते हैं। साथ में, द्वैत या यूँ कह लो कि बदलाव के झटके ऐसे लगे, जैसे सर्द-गर्म के लगते हैं। और भाई ये मनहूस द्वैत तो मन का सबसे बड़ा रोग है न। तो दोस्तो, दोनों समस्याओं से बचने का एक ही मध्यमार्ग वाला तरीका बचा था। क्यारी की फसल को जमीन से न काटकर थोड़ा ऊपर-2 से काटा जाए। इससे क्या हुआ कि फसल कटान के बाद भी थोड़ी-बहुत हरियाली बची रही। उससे लोगों की आंखों का नूर भी बरबस बना रहा, और द्वैत या बदलाव पर भी काफी रोक लग गई। यहाँ एक दार्शनिक पेंच और है। दरअसल अद्वैत का निर्माण द्वैत से ही होता है। इसलिए जो सौ टके का दार्शनिक मिस्त्री है, उसके लिए तो द्वैत पैदा करने वाली विकराल मूंछें किसी सोने की ईंट उगलने वाली खदान से कम नहीं हैं। वह तो उनकी चिनाई करने से पहले उनके साथ मन के काम, क्रोध जैसे दोषों का मिक्चर सीमेंट-मोर्टार की तरह चिपकाता है, फिर उनसे अव्वल दर्जे के अद्वैत-महल तैयार कर लेता है। उसकी बसाई अद्वैत नगरी के आगे कुबेर की अलकापुरी क्या मायने रखती है। हो न हो, अलकापुरी इन्हीं मूँछ-महलों को कहा गया हो। वैसे भी कुबेर की मूंछें भी बड़ी सुंदर बताई जाती हैं। मैंने भी एकबार इसी तरह त्रिलोकलुभावन अद्वैत-नगरी का निर्माण किया था। उस समय मेरे पास बड़े-2 मिस्त्री ज्ञानप्राप्ति के लिए दूर-2 से घुटनों के बल आते थे।

इसी केशप्रेम की विचित्र मानसिकता के कारण ही आदमी अपने जैसे बालों वाले आदमी के साथ ही घुलना-मिलना पसंद करता है। इसी विकृत मानसिकता के परिणामस्वरूप ही तो तालिबानियों ने पूरे अफगानिस्तान में सभी को दाढ़ी रखने का फरमान जारी किया था। पर स्त्री उसे कम से कम बालों वाली चाहिए, खुद वह बेशक कितने ही लंबे बाल क्यों न रखता हो। पर स्त्री के मामले में उसका यौनस्वार्थ जो जुड़ा होता है। वह उसके केशस्वार्थ पर भारी पड़ जाता है। इसी तरह अपने बच्चे कैसे ही बालों वाले क्यों न हो, सभी अच्छे लगते हैं। इसमें भी अप्रत्यक्ष रूप से यौनस्वार्थ ही जुड़ा होता है। इससे साफ जाहिर होता है कि केशभाव और यौनभाव ये दोनों सबसे शक्तिशाली भाव हैं। तांत्रिक इन दोनों का महत्त्व अच्छी तरह से समझते हैं, इसलिए दोनों को संभाल कर रखते हैं। अब कुछ समझ में आ रहा है कि भगवान शिव के जैसे महान तांत्रिक जटाधारी और मस्तमौला क्यों होते हैं।

कई बार तो मुझे लगता है कि यदि कुन्डलिनी जागरण के समय मेरी दाढ़ी न बढ़ी होती, तो मुझे कुन्डलिनी जागरण ही न होता। क्लीनशेव होने से मैं अपना चिकना चुपड़ा मुंह लेकर उन गाने बजाने वाली औरतों के इर्दगिर्द इस प्रकार मंडराता ही रहता, जिस प्रकार एक बार नारद मुनि अपना बंदर का मुख लेकर पूरी स्वयंवर सभा में सबकी आंखों से आंखें मिलाते हुए मंडराते फिरे थे। उससे मुझे उस दोस्त से मिलने का मौका ही न मिलता जिससे मैं कुन्डलिनी की याद में खो गया था। साथ में अगर अपने जैसे नामर्द चिकनू को देखकर कोई औरत इशारे में भी दिल में चुभने वाला ताना कस देती, तब तो जागरण का प्रश्न ही पैदा न होता। ताने से तिलमिलाए नारद ने भी तो कपटी कहकर भगवान विष्णु की खटिया खड़ी नहीं कर दी थी वैकुंठ में जाके, जागरण गया गेहूँ बीजणे जाँ बांदर भगाणे।

हाँ, तो मैं क्या कह रहा था कि उस उलाहने से कुन्डलिनी में खोने की बजाय मेरा दिल उलाहने में खोने लगता। स्त्री की नाराजगी और स्त्री के उलाहने से भयानक चीज इस दुनिया में कुछ नहीं है यारो। आदमी सब कुछ भूल सकता है, पर एक औरत का उलाहने से भरा नाराज चेहरा कभी नहीं भूल सकता। अगर औरत की नाराजगी से घायल दिल आदमी कुन्डलिनी जागरण क्या भगवान को भी पा ले, तो भी भगवान उसे उस नाराज औरत के चरणों में पड़कर माफी मांगने के लिए भेजते हैं, तभी अपने अनदेखे महल का अनदेखा मेन गेट उसके लिए खोलते हैं। वरना आदमी को उस अनदेखे महल को बाहर-बाहर से ही देख कर संतोष करना पड़ता है। इसकी कोई गारंटी नहीं कि औरत मान ही जाएगी। यह उस पर और आपके मन की पवित्रता पर निर्भर करता है। कई बार औरत माफी मांगने आए मर्द को कोई दूसरा ही उलाहना मार देती है। इससे वह कहीं का नहीं रहता, एक धोबी के कुते की तरह, न घर का न घाट का। वह फिर से वापिस मुड़कर अनदेखे भगवान को दूर खड़े देख कर उसके पास पहुंच जाता है। भगवान उसे थोड़ा सा पुचकारते हैं, और फिर औरत के चिकने चेहरे को शांत करने के लिए वापिस रवाना कर देते हैं। कई बार तो बेचारा मर्द स्त्री और भगवान के बीच में गेंद ही बन कर रह जाता है। यह सिलसिला तब तक चलता है जब तक कोई अन्य दयालु और भाव से भरी स्त्री उस अभागे मर्द को थाम नहीं लेती। ये जो कहते हैं न कि लोहा ही लोहे को काटता है। दरअसल उस स्त्री को भगवान ही भेजता है अपनी दिव्य शक्ति से प्रेरित करके। इसलिए मेरी सलाह मानो, भगवान की कुछ मदद करने के लिए एक अच्छी औरत को भी ढूंढते रहा करो। स्त्री के मामले में डायरेक्ट एक्शन तो भगवान भी नहीं ले सकता। वह भी मामले का निपटारा एक स्त्री को भेजके ही कर सकता है। भगवान भी बेचारा सच्चा है। एक औरत के आगे उसकी भी नहीं चलती। अपनी पत्नी के डर से ही तो वह अपनी सभी मूर्तियों और चित्रों से मूंछें गायब कर देता है, नहीं तो उसके जैसा समदर्शी महानुभाव मुच्छड़ों के साथ क्यों पक्षपात करता। औरत के नाराज चिकने चेहरे की ज्वाला उसके अनछुए महल तक को छूने लगती है। वो करे भी तो क्या करे। यदि वह औरत के साथ सख्ती करे तो उसके बगल में बैठी उसकी पत्नीदेवी उलाहना मारते हुए, नाराज होकर चली जाए। वो भला अपने भक्त को चिकने चेहरे की ज्वाला से बचाने के लिए खुद क्यों उसका शिकार बने। मुझे तो चिकने लोगों पर यह सोचकर तरस आ रहा है कि कहीं वे स्त्री के कोप से बचने के लिए ही तो चिकने नहीं होते। औरत को उनका चिकना चेहरा देखकर उनपर तरस आ जाता होगा। चिकने चेहरे से औरत को बच्चे की याद जो आती है। वैसे भी औरतें बच्चों पर सबसे ज़्यादा मेहरबान होती हैं। पर ये चालाकी ज्यादा दिन नहीं चलती। गलती से अगर चेहरे पर दो बाल भी उग आए, तो वह पिछली सारी कसर सूद समेत निकालती है। इसलिए पुरजोर आवाज से कहता हूँ कि औरत के जैसा चिकना-चुपड़ा चेहरा बनाने से पहले औरत के द्वारा निभाई जाने योग्य जिम्मेदारियां भी समझ लेनी चाहिए। अगर ऐसा न किया गया तो बेचारे अमनपसंद दाढ़ीदार आदमी की आत्मा नाराज चिकने चेहरों के बीच ही भटकती रहेगी, और उसे मरने के बाद भी शांति नहीं मिलेगी। कांटे तो मुरझाए हुए ही अच्छे लगते हैं, पर फूल तो हमेशा खिले हुए ही अच्छे लगते हैं। खिला हुआ फूल चेहरे पे न सही, दिल पर ही सही। इसलिए कहता हूँ कि सिर्फ मुंह पर ही नहीं, दिल पर भी कुन्डलिनी रूपी दाढ़ी उगी होनी चाहिए। इससे जब औरत का प्यार, कामदेव के पुष्पबाण पर सवार होकर दिल तक पहुंचेगा तो वह सीधा कुन्डलिनी को लगेगा, जिससे कुन्डलिनी गलती से जागृत भी हो सकती है। नहीं तो ऐसा होगा जैसा एकबार अंतरराष्ट्रीय मूँछ प्रतिस्पर्धा में हुआ था। उसमें विजेता घोषित किए गए दिग्गज मूँछ शिरोमणि या बेचारे मुच्छड़ महाशय कह लो, सहज उद्गार प्रकट करते हुए कहने लगे थे कि उन्हें विजेता घोषित होते हुए ऐसा मजा आ रहा था, जैसा एक गैंडे को बार-2 कीचड़ में लोटते हुए आता है। जो इस मूँछ स्तोत्र को श्रद्धापूर्वक पढ़ेगा, उसपर जीवनभर मूँछों की अपार कृपा बनी रहेगी, तथा इस जीवन के बाद उसे मूँछलोक की प्राप्ति होगी। अब कृपा करके इस दिव्य मूँछ संहिता को कहीं कॉपी पेस्ट न करिएगा, नहीं तो किन्हीं ताव-(प्र)चोदित मूँछों की गाज कहीं व्यंग्यकार पर ही न गिर जाए।~प्रेमयोगी {व्यंग्यकार~भीष्म}



कुंडलिनी चिंतन ~ गुप्त रहस्य जो अक्सर नजरअंदाज किए जाते हैं

इस पोस्ट में मुख्यतः शिवबिन्दु-ध्यान, स्नान-ध्यान, विपासना से कुंडलिनी बेहतर, कुंडलिनी जागरण की गोपनीयता, सर्वोत्तम जागृति, मूलाधार में कुण्डलिनी निवास, प्राण-ऊर्जा संचरण का अनुभव, असली याद, हठयोग राजयोग के सहयोगी के रूप में, साँस रोकना, सुषुम्ना में ऊर्जा-संचरण, तांत्रिक शब्दों की गोपनीयता, व महामानव का वर्णन है।

दोस्तो, पिछले हफ्ते मुझे कुछ राईटर ब्लॉक महसूस हुआ। कुछ लिखने को मन नहीं किया। थोड़ा-बहुत लिख पाया, तो उसे पोस्ट के रूप में संकलित नहीं कर पाया। इस पोस्ट में वे मन में बिखरे अनुभवात्मक विचार इकट्ठे हुए। फिर सभी रहस्यात्मक विचारों के कीवर्ड्स को मिलाकर एक सबटाइटल बनाया।

जब मन में आई कुंडलिनी को शिवबिन्दु का रूप दिया जाता है तब पीठ से चढ़ती ऊर्जा के अनुभव के साथ आज्ञा चक्र पर खुद ही संकुचन बनता है। इससे मस्तिष्क में कुंडलिनी सीधी होकर सहस्रार से आज्ञा चक्र तक सीधी रेखा में फैल जाती है। हमारी इतनी छोटी औकात है कि हम शिव के बिंदु का ही चिंतन कर सकते हैं, अन्य कुछ नहीं। शिव तो बहुत दूर हैं। वो सबसे बड़े हैं। वो साक्षात पूर्ण ब्रह्म हैं। शिव बिंदु ही हमें शिव तक ले जाएगा।

बाहर से सभी शिव की नकल करना चाहते हैं पर अंदर से कोई नहीं करता। वे अंदर से कुंडलिनी के ध्यान में मग्न रहते हैं। इसलिए उनकी असली नकल तभी होगी जब किसी का ध्यान होता रहेगा, बेशक उन्हीके रूप की कुंडलिनी का।

नहाते समय ऊर्जा की गश या थ्रिल बड़ी अच्छी अनुभव होती है। यह मस्तिष्क में बड़ी अच्छी महसूस होती है। इससे ताजगी और माइंडफुलनेस का एहसास होता है। इसीलिए रोज नहाने की सलाह दी जाती है, और नहाते समय मंत्रोच्चार के लिए बोला जाता है, ताकि मन में कुंडलिनी प्रभावी रहे, और ऊर्जा का लाभ कुंडलिनी को मिल सके। शायद यह थ्रिल तभी ज्यादा और अनुभव लायक होती है, अगर प्रतिदिन योग अभ्यास किया जाता रहे। योगाभ्यास के समय बेशक ऊर्जा की थरथराहट महसूस न होए, पर इससे ऊर्जा ढंग से एलाइन हो जाती है, जिससे दिन में कभी भी उपयुक्त माहौल मिलने पर एनर्जी सर्ज महसूस हो सकती है, जैसे कि नहाते समय। यही वजह है कि शौच और स्नान के बाद योग करना अधिक प्रभावशाली माना जाता है।

विपासना से मन के विचारों की शक्ति बनी रहती है। जिन विचारों के प्रति साक्षीभाव रखा जाता है, वे तो कुछ समय के लिए दब जाते हैं, पर साक्षीविचार का भाव हटते ही वही या दूसरे विचार दुगुनी शक्ति से कौंधते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमने विचारों को तो कुंद कर दिया होता है, पर विचारों की शक्ति कम होने की बजाय बढ़ती है। वह इसलिए क्योंकि विचारों की शक्ति खर्च होने पर रोक लगती है। साथ में एक विशेष चित्र भी मन में नहीं बनाया होता है, जो लगातार फालतू विचारों की शक्ति को सोखता रहे। इसके विपरीत, कुंडलिनी ध्यान में विचारों की शक्ति पर रोक नहीं लगती, पर उसे विचारों से हटा कर कुंडलिनी पर लगाया जाता है। इससे लंबे समय तक विचारों से छुटकारा मिलता है। यदि विचार आने भी लगे तो उनकी शक्ति कुंडलिनी को लगती है, और वे शांत हो जाते हैं, क्योंकि हमें वैसा करने की आदत होती है। कुंडलिनी के साथ विपासना से तो ऐसा ज्यादा होता है, क्योंकि दो प्रकार से एकसाथ साधना होती है। पर कुंडलिनी के बिना विपासना तो बहुत कमजोर और अस्थायी तरीका प्रतीत होता है। इसीलिए कुंडलिनी को अध्यात्म का मूलभूत आधार कहते हैं।

मैं बता रहा था कि वह जागृति सर्वोत्तम है जो कुंडलिनी से शुरु हो। इसकी एक और वजह है। इससे कुंडलनी योग पूरी तरह वैज्ञानिक बन जाता है, और अपने नियंत्रण में आ जाता है। आदमी को पता लग जाता है कि हम अपने प्रयासों से भी जागृति प्राप्त कर सकते हैं, केवल संयोग से ही नहीं। इससे आदमी औरों को भी यह तरीका सिखा सकता है, जिससे बड़े पैमाने पर जागृति संभव हो सकती है। दुर्लभता से होने वाले संयोग से तो सभी को जागृति नहीं मिल सकती न। संयोग से होने वाली जागृति तो बिना प्रयास के ही होती है ज्यादातर। अगर प्रयास हो भी तो वह सामान्य व हल्का प्रयास होता है, जैसे कि अद्वैत व अनासक्ति से भरा हुआ जीवन, व अन्य आध्यात्मिक क्रियाकलाप। वह प्रयास कुंडलनी योग जैसा वैज्ञानिक, मजबूत व समर्पित प्रयास नहीं होता। जिसको संयोगवश जागरण मिला हो, वह खुद भी उसे अपने प्रयास से दुबारा प्राप्त करना नहीं जानता, औरों को क्या समझाएगा। बेशक जिसने कुंडलनी योग के प्रयास से खुद कुंडलिनी जागरण प्राप्त किया हो, वह उस प्रयास से उसे दुबारा प्राप्त करने के बारे में कई बार सोचेगा, क्योंकि इसमें सुनियोजित ढंग से बहुत मेहनत करनी पड़ती है। पर कम से कम उसे तरीके का तो पता है, जिससे वह औरों का खासकर होनहार, जिज्ञासु, और शक्तिपूर्ण प्रकार के सुयोग्य लोगों का मार्गदर्शन कर सकता है।

अद्वैत के साथ लौकिक कर्मों से मूलाधार क्रियाशील होता है। यह इसलिए होता है क्योंकि अद्वैत से मन में जो कुंडलिनी बनती है, उसके लिए मूलाधार से एनर्जी की सप्लाई शुरु हो जाती है, क्योंकि वह कुंडलिनी के लिए जरूरी होती है। कुंडलिनी के इलावा जो भी मस्तिष्क के काम हैं उनके लिए तो मस्तिष्क की अपनी ऊर्जा बहुत होती है, मूलाधार की अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसीलिए तो कहा जाता है कि कुंडलिनी मूलाधार चक्र में निवास करती है। द्वैतवादियों का मूलाधार इसीलिए सक्रिय नहीं होता, क्योंकि उनमें कुंडलिनी ही नहीं होती, अगर पिछले जन्म के प्रभाव से होती है तो बहुत कमजोर या नाममात्र की।

पीठ से मस्तिष्क को जाती हुई गश या थ्रिल हमेशा महसूस नहीं होती। जब मस्तिष्क को ऊर्जा की ज्यादा जरूरत हो, तभी महसूस होती है। मेरा आजकल रूपांतरण का दौर चल रहा है। इस दौर में मस्तिष्क में नए न्यूरोनल कनेक्शन बनते हैं और पुराने टूटते हैं। मतलब पिछली यादें मिटती हैं, और नई बनती हैं। इसके लिए मस्तिष्क को बहुत ऊर्जा चाहिए होती है। जब मेरे अंदर पुराना जीवन हावी होने लगता है, तब यह थ्रिल बड़ी जोरदार व आनन्द वाली महसूस होती है। एक बच्चे की तरह एकदम ताजगी और नयापन सा महसूस होता है। पर आप योगा करते रहिए, क्योंकि बिना महसूस हुए भी योग से ऊर्जा ऊपर चढ़ती रहती है। आपके ऊपर भी जब कभी भावनाओं का दबाव ज्यादा होगा, तब यह थ्रिल महसूस होगा। रचनात्मक या नया काम होगा, तो भी एनर्जी थ्रिल बढ़ेगा। कुंडलनी साधना को शक्ति साधना के साथ जोड़कर करना चाहिए। तभी दोनों सहस्रार में एकसाथ जुड़ पाते हैं, अन्यथा शंका है।

योग करते हुए यदि कोई क्रिएटिव विचार आए तो उसे मन में ही रहने दो, उसे नोट करने या एनालाइज करने न लगो, इससे कुंडलनी ऊर्जा की गति में बाधा पहुंच सकती है। पर यदि क्रिएटिव विचार बहुत जरूरी हो, और आप उसे बाद में भूल सकते हो, तो नोट कर भी सकते हो।

यह जो कुंडलिनी को छिपाने की प्रथा थी, वह मुझे असफल लोगों द्वारा अपनी शर्मिंदगी से बचने के लिए बढ़ाई गई लगती है। हर किसी को अपना अहंकार प्यारा होता है। यदि कोई महान साधक या गुरु कुण्डलिनी जागरण न प्राप्त कर पाए, पर उसका एक निम्न और दुश्मन पड़ौसी कर दे, तो उसके लिए शर्म के कारण सच्चाई को बर्दाश्त करना मुश्किल तो होगा ही न। दूसरी वजह यह भी रही होगी कि कहीं तथाकथित निम्न बिरादरी के आदमी को सम्मान या श्रेय न देना पड़ जाए। क्योंकि यदि ऐसे तथाकथित नीच की कुंडलिनी जागृत हो जाए, तो सामाजिक दबाव के आगे झुकते हुए उसे अपेक्षित सम्मान व श्रेय देना पड़ेगा। इसलिए तथाकथित विद्वान वर्ग ने समाज में यह भ्रम फैला दिया होगा कि अपने कुंडलिनी जागरण को किसीके सामने प्रकट नहीं करना चाहिए, ताकि न बांस रहे और न ही बजे बाँसुरी।

जब साँस रोककर योगासन करते हैं तो शरीर की खुद ही ऊर्जा को घुमाने की इंस्टिंक्ट शुरु हो जाती है ताकि पूरे शरीर को ऑक्सीजन पर्याप्त मिल सके। हाँ, यह भी एक वजह है। दूसरी वजह मैंने पहले भी बताई थी कि साँस भरकर रोकने से ऊर्जा की गति की दिशा खुद ही ऊपर की तरफ रहती है।

जागरण और कुंडलिनी जागरण में कोई अंतर नहीं है। दोनों में पूर्ण आत्मा की अनुभूति होती है। कुंडलिनी जागरण में वह अनुभूति कुंडलिनी के माध्यम से कुंडलिनी से शुरु होती है। दूसरे किस्म का जागरण विपासना से, सदमे से आदि से हो सकता है। यह मुश्किल होता है। क्योंकि मन को शून्य करना पड़ता है। कुंडलिनी वाला जागरण आसान होता है, क्योंकि इसमें मन को शून्य करने की जरूरत नहीं होती। इसमें कुंडलिनी को ही इतना मजबूत बना दिया जाता है कि वह आत्मा के साथ जुड़कर उसे प्रकट कर देती है। वैसे भी दुनिया में रहकर कुंडलिनी वाला तरीका ही सर्वोत्तम है, क्योंकि दुनिया में आदमी का झुकाव प्रवृत्ति की तरफ ही तो होता है, निवृत्ति की तरफ नहीं।

संस्कृत पुराणों के हिंदी अनुवाद में निजी या अंतरंग ज्ञान छुपाया होता है। इसका मतलब है कि संस्कृत भाषा ज्यादा परिपक्व है। संस्कृत में स्पष्ट रूप से रेताः लिखा है शिवपुराण में, जिसे हिंदी अनुवाद में कामवासना लिखा गया है। वैसे इसका मतलब वीर्य होता है। रेताश्चतुर्बिंदुः, मतलब वीर्य की 4 बूंदें। आजकल हरेक किस्म का ज्ञान इंटरनेट पर उपलब्ध है। इसलिए कुण्डलिनी ज्ञान को भी गुप्त रखने की जरूरत नहीं है। यदि इसको गुप्त रखा गया, तो लोग इधर-उधर का भड़काऊ ज्ञान इकट्ठा करते हुए अपना नुकसान ही करेंगे।

लोग बोलते हैं कि पुरानी याद सताती है। दरअसल वह ऊपर-ऊपर की होती है। वह असली याद नहीं होती। यह बाहर-बाहर की व आसक्तिपूर्ण याद होती है। असली याद तो भावों की होती है। उसमें आसक्ति नहीं होती। यह गहन चिंतन के अभ्यास या ध्यान योग के अभ्यास से उत्पन्न होती है।

राजयोग के बिना हठयोग बहुत कम प्रभावी है। पहले मन में कुण्डलिनी राजयोग या साधारण ध्यान से परिपक्व हो जाए, तभी उसको अतिरिक्त बल देने के लिए हठयोग की जरूरत पड़ेगी। यदि पहले से कुण्डलिनी नहीं होगी, तो हठयोग से कुण्डलिनी केवल सतही रूप में ही अभिव्यक्त हो पाएगी, उसे अतिरिक्त बल नहीं मिल पाएगा। जागरण तो ध्यान चित्र का ही होता है। उच्चतम ध्यान को ही जागरण कहते हैं। इसे कुंडलिनी नाम इसको यौन ऊर्जा से जोड़ने से मिला है। यौन ऊर्जा मूलाधार चक्र में रहती है। यह ऊर्जा वहीं उत्पन्न होकर वहीं पर नष्ट भी होती रहती है। इसीको नागिन के द्वारा अपनी पूंछ को मुंह में दबाना कहते हैं। मतलब कि नागिन की पूंछ से उत्पन्न ऊर्जा (वज्रशिखा पर उत्पन्न सूक्ष्म बिंदु-ऊर्जा) चलकर उसके मुंह में पहुंचती है, जिसको वह पूँछ के पास ही उगल भी देती है। यह वीर्य उत्सर्जन की तरह है। यह नागिन एक नाड़ी है जो अढ़ाई चक्कर पूरे करके कुंडली सी लगाई होती है। यह अढाई चक्कर का रहस्य जब पूरा और ढंग से समझ लूँगा, तब आपको बताऊंगा। वैसे जब आगे के और पीछे के स्वाधिष्ठान चक्रों को जोड़ने वाले घेरे का ध्यान साथ में किया जाता है, तो कुंडलिनी ऊर्जा सुषुम्ना में ज्यादा अच्छी तरह से चढ़ती है। यह अढ़ाई का फेर भी समझ ही लूंगा। इसीलिए इसमें बह रही ऊर्जा और ध्यान चित्र के मेल को ही कुंडलिनी कहते हैं। कुंडलिनी बनने से नागिन की कुण्डलिनी खुलकर वह ऊपर की ओर खड़ी होने लगती है। मतलब टॉप (मस्तिष्क) और बॉटम (मूलाधार) एक हो जाते हैं। इसका अर्थ है, प्राण ऊर्जा को मूलाधार से ऊपर सुषुम्ना के रास्ते से सहस्रार तक ले जाना। यह एक प्रकार से बिंदु संरक्षण ही है।

मानव मस्तिष्क के ऊपर चेतना विकास का भौतिक माध्यम कुछ नहीं है। फिर तो आत्मा ही है, अनंत चेतना का भंडार। ये जो फिल्मों, उपन्यासों या कॉमिक्स में महामानव दिखाए जाते हैं, ये दरअसल कुंडलिनीजागरण से युक्त व्यक्ति के ही भौतिक विकल्प हैं। क्योंकि कुंडलिनी शक्ति को भौतिक रूप में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, इसलिए ऐसे महामानवों को कल्पित करना पड़ता है। ऐसा आज ही नहीं, पहले भी होता था। उदाहरण के लिए, हनुमान, नारद, भीम जैसे पौराणिक चरित्र कुंडलिनी-महामानव का भौतिक अभिव्यक्तिकरण ही तो है।

यह जो आता है कि प्राण ऊर्जा के सुषुम्ना में चलने के समय ही कुंडलिनी जागरण होता है, यह सही है। उसमें प्राण से बायाँ और दायाँ मस्तिष्क, दोनों बराबर सक्रिय हो जाते हैं। बाएँ मस्तिष्क से सांसारिक कर्म होते हैं, और दाएं से शून्य पर नजर रहती है। दोनों के योग से शक्तिशाली अद्वैत पैदा होता है। उससे कुंडलिनी तेजी से अभिव्यक्त होती है। सुषुम्ना में तो बीच-बीच में प्राण चलता ही रहता है। उससे अद्वैत व कुण्डलिनी का आभास होता रहता है। जागरण तो तभी होता है जब इसे साथ में तांत्रिक यौनबल भी मिलता है। इसमें पूरा मस्तिष्क एकसमान कम्पायमान हो जाता है।

कई लोगों को कुंडलिनी ऊर्जा शरीर में इधर-उधर अटकी हुई महसूस होती है, जैसे कि कंधों में आदि में। इससे उन्हें बेचैनी महसूस होती है। दरअसल यह पीठ में इड़ा या पिंगला नाड़ी से ऊर्जा के चढ़ने से होता है। बाएँ भाग व बाएँ कंधे से इड़ा और दाएँ कंधे से पिंगला गुजरती है। ऊर्जा को नहीं छेड़ना चाहिए। जहाँ जाती हो, वहाँ जाने दो। यह ऊर्जा की कमी से जूझ रहे भाग की ऊर्जा की जरूरत पूरी करके फिर से केंद्रीय नाड़ी में आकर घूमने लगती है। इसमें जल्दी लाने के लिए आज्ञा चक्र, तालु से जीभ के स्पर्श, स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार संकुचन का एकसाथ ध्यान करना चाहिए या इनमें से जितने बिंदुओं का हो सके, ध्यान करते रहना चाहिए। एक बिंदु से दूसरे बिंदु को भी ध्यान स्थानांतरित करते रह सकते हैं, सुविधा के अनुसार। दरअसल ये पॉइंटस कुंडलिनी के मार्ग के रूप में सीधी रेखा बनाने के लिए एक फुट रूलर का काम करते हैं। साथ में, कुंडलिनी ऊर्जा पर भी ध्यान बना रहना चाहिए। घूमती हुई कुंडलिनी ऊर्जा ही अच्छी होती है, एक जगह पर खड़ी नहीं।

यह जो योग से वजन घटता है, उसकी मुख्य वजह कुंडलिनी ध्यान ही है, न कि भौतिक व्यायाम। टाँगों आदि को मोड़कर रखने से तो बहुत कम ऊर्जा खर्च होती है। चक्र पर कुंडलिनी ध्यान से पैदा हुई मांसपेशियों की सिकुड़न से ही शरीर की अतिरिक्त जमा चर्बी घुलती है, जिससे वजन घटता है। अभ्यास हो जाने पर तो यह कुंडलिनी सिकुड़न दिनभर बनने लगती है।

गले मिलने से जो प्यार बढ़ता है, वह एकदूसरे के साथ अपनी-2 कुंडलिनी के साझा होने से ही बढ़ता है। सभीको अपनी कुण्डलिनी ही सबसे प्यारी होती है। जब कोई किसी के नजदीकी संपर्क में आता है, तो एक अधूरे यब-युम की तरह काल्पनिक पोज बन जाता है, जिसमें कुण्डलिनी एक शरीर से चढ़ती है, और दूसरे शरीर से उतरती है। इस तरह से दोनों शरीरों को कवर करते हुए एक कुण्डलिनी ऊर्जा लूप जैसा बन जाता है। ऐसा ही देवपूजा, सूर्यपूजा आदि के समय भी होता है।

कुंडलिनी तंत्र की वैज्ञानिकता को भगवान शिव स्वयं स्वीकार करते हैं

दोस्तो, शिवपुराण में आता है कि पार्वती ने जब शिव के साथ दिव्य वनों, पर्वत श्रृंखलाओं में विहार करते हुए बहुत समय बिता दिया, तो वह पूरी तरह से तृप्त और संतुष्ट हो गई। उसने शिव को धन्यवाद दिया और कहा कि वह अब संसार के सुखों से पूरी तरह तृप्त हो गई है, और अब उनके असली स्वरूप को जानकर इस संसार से पार होना चाहती है। शिव ने पार्वती को शिव की भक्ति को सर्वोत्तम उपाय बताया। उन्होंने कहा कि शिव का भक्त कभी नष्ट नहीं होता। जो शिवभक्त का अहित करता है, वे उसे अवश्य दंड देते हैं। उन्होंने शिवभक्ति का स्वरूप भी बताया। पूजा,अर्चन, प्रणाम आदि भौतिक तरीके बताए। सख्य, दास्य, समर्पण आदि मानसिक तरीके बताए। फिर कहा कि जो शिव के प्रति पूरी तरह से समर्पित है, शिव के ही आश्रित है, और हर समय उनके ध्यान में मग्न है, वह उन्हें सर्वाधिक प्रिय है। **वे ऐसे भक्त की सहायता करने के लिए विवश है, फिर चाहे वह पापी और कुत्सित आचारों व विचारों वाला ही क्यों न हो।** शिवभक्ति को ही उन्होंने सबसे बड़ा ज्ञान बताया है।

पार्वती का शिव के साथ घूमना जीव का आत्मा की सहायता से रमण करना है

वास्तव में जीव चित्तरूप या मनरूप ही है। जीव यहां पार्वती है, और आत्मा शिव है। मन के विचार आत्मा की शक्ति से ही चमकते हैं, ऐसा शास्त्रों में लिखा है। इसको ढंग से समझा नहीं गया है। लोग सोचते हैं कि आत्मा की शक्ति तो अनन्त है, इसलिए अगर मन ने उसकी थोड़ी सी शक्ति ले ली तो क्या फर्क पड़ेगा। पर ऐसा नहीं है। आत्मा मन को अपना प्रकाश देकर खुद अंधेरा बन जाती है। यह वैसे ही होता है, जैसे माँ अपने गर्भ में पल रहे बच्चे को अपनी ताकत देकर खुद कमजोर हो जाती है। वास्तव में ऐसा होता नहीं, पर भ्रम से जीव को ऐसा ही प्रतीत होता है। इसी वजह से पार्वती का मन शिव के साथ भोग-विलास करते हुए भ्रम से भर गया। अपनी आत्मा के घने अंधकार को अनुभव करके उसे उस अंधकार से हमेशा के लिए पार जाने की इच्छा हुई। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जब तक आदमी समस्या को प्रचंड रूप में अनुभव न करे, तब तक वह उसे ढंग से हल करने का प्रयास नहीं करता। इसीलिए तजुर्बेदार लोग कहते हैं कि संसार सागर में डूबने के बाद ही उससे पार जाने की इच्छा पैदा होती है। इसलिए यह तंत्र सम्मत सिद्धांत एक वैज्ञानिक सत्य है कि निवृत्ति के लिए प्रवृत्ति बहुत जरूरी है। प्रवृत्ति के बिना निवृत्ति का रास्ता सरलता से नहीं मिलता। इसलिए नियम-मर्यादा की डोर में बंधे रहकर दुनिया में जमकर ऐश कर लेनी चाहिए, ताकि मन इससे ऊब कर इसके आगे जाने का रास्ता ढूंढे। नहीं तो मन इसी दुनिया में उलझा रह सकता है। कई तो इतने तेज दिमाग होते हैं कि दूसरों के एशोआराम के किस्से सुनकर खुद भी उनका पूरा मजा ले लेते हैं। कइयों को वे खुद अनुभव करने पड़ते हैं।

कुंडलिनी को शिव, और कुंडलिनी योग को शिवभक्ति माना गया है

कुंडलिनी से भी यही फायदे होते हैं, जो शिव ने अपने ध्यान से बताए हैं। शिवपुराण ने कुंडलिनी न कहकर शिव इसलिए कहा है, क्योंकि यह पुराण पूरी तरह से शिव के लिए ही समर्पित है। इसलिए स्वाभाविक है कि शिवपुराण रचयिता ऋषि यही चाहेगा कि सभी लोग भगवान शिव को ही अपनी कुंडलिनी बनाए। उपरोक्त शिव वचन के अनुसार कुंडलिनी तंत्र सबसे ज्यादा वैज्ञानिक, प्रभावशाली और प्रगतिशील है। **बाहर से देखने पर पापी और कुत्सित आचार-विचार तो तंत्र में भी दिखते हैं, हालांकि साथ में शक्तिशाली कुंडलिनी भी होती है।** वह चकाचौंध वाली कुंडलिनी उन्हें पवित्र कर देती है। तीव्र कुंडलिनी शक्ति से शिव कृपा तो मिलती ही है, साथ में भौतिक पंचमकारों आदि से भौतिक तरक्की भी मिलती है। इससे कई लाभ एकसाथ मिलने से आध्यात्मिक विकास तेजी से होता है। शिव खुद भी बाहर से कुत्सित आचार-विचार वाले लगते हैं। प्रजापति दक्ष ने यही लांछन लगाकर ही तो शिव का महान अपमान किया था। वास्तव में शिव एक शाश्वत व्यक्तित्व हैं। जो शिव के साथ हुआ, वह आज भी उनके जैसे लोगों के साथ हो रहा है, और हमेशा होता है। शाश्वत चरित्र के निर्माण के लिए ऋषियों की सूझबूझ को दाद देनी पड़ेगी। दूसरी ओर, साधारण कुंडलिनी योग से भौतिक

शक्ति की कमी रह जाती है, जिससे आध्यात्मिक विकास बहुत धीमी गति से होता है। जहाँ शक्ति रहती है वहीं शिव भी रहता है। ये हमेशा साथ रहते हैं। इसीलिए शिवपुराण में आता है कि आम मान्यता के विपरीत शिव और पार्वती (शक्ति) का कभी वियोग नहीं होता। वे कभी आपस में ज्यादा निकट सम्बन्ध बना लेते हैं, और कभी एक-दूसरे को कथाएँ सुनाते हुए थोड़ी दूरी बना कर रहते हैं। उनके निकट सम्बन्ध का मतलब आदमी की कुंडलिनी जागरण या समाधि की अवस्था है, और थोड़ी दूरी का मतलब आदमी की आम सांसारिक अवस्था है। मैंने कुंडलिनी तंत्र के ये सभी लाभ खुद अनुभव किए हैं। एकबार मेरे कान में दर्द होता था। मैंने व्यर्थ में बहुत सी दवाइयां खाईं। उनका उल्टा असर हो रहा था। फिर मैंने अपने कान का सारा उत्तरदायित्व कुंडलिनी को सौंप दिया। मैं पूरी तरह कुंडलिनी के आगे समर्पित हो गया। अगले ही दिन होम्योपैथी डॉक्टर का खुद फोन आया और मुझे छोटा सा नुस्खा बताया, जिससे दर्द गायब। और भी उस दवा से बहुत फायदे हुए। एकबार किसी गलतफहमी से मेरे बहुत से दुश्मन बन गए थे। मैं पूरी तरह कुंडलिनी के आश्रित हो गया। कुंडलिनी की कृपा से मैं तरक्की करता गया, और वे देखते रह गए। अंततः उन्हें पछतावा हुआ। पछतावा पाप की सबसे बड़ी सजा है। मेरा बेटा जन्म के बाद से ही नाजुक सा और बीमार सा रहता था। भगवान शिव की प्रेरणा से मैंने उसके स्वास्थ्य के लिए कुंडलिनी की शरण ली। कुंडलिनी को प्रसन्न करने या यूं कह लो कि कुंडलिनी को अतिरिक्त रूप से चमकाने के लिए शिव की ही प्रेरणा से कुछ छोटा मानवतापूर्ण तांत्रिक टोटका भी किया। उसके बाद मुझे अपने व्यवसाय में भी सफलता मिलने लगी और मेरा बेटा भी पूर्णिमा के चाँद की तरह उत्तरोत्तर बढ़ने लगा।

हिंदुओं के बीच में आध्यात्मिकता को लेकर कभी विवाद नहीं रहा

कुंडलिनी ध्यान ही कुंडलिनी भक्ति है। भक्ति से जो मन में निरंतर स्मरण बना रहता है, वही ध्यान से भी बना रहता है। अपने प्रभाव की कुंडलिनी को प्रसिद्ध करने के लिए तो विभिन्न सम्प्रदायों एवं धार्मिक मत-मतांतरों के बीच प्रारंभ से होड़ लगी रही है। शिवपुराण में भगवान शिव को भगवान विष्णु से श्रेष्ठ बताने के लिए कथा आती है कि एकबार भगवान शिव ने अपनी गौशाला में बड़ा सा सिंहासन रखवाया और उस पर भगवान विष्णु को बैठा दिया। उसके बाद भगवान शिव के परम धाम के अंदर वह गौशाला भगवान विष्णु का गौलोक बन गया। यह अपनी-2 श्रेष्ठता को सिद्ध करने वाले प्रेमपूर्ण व हास्यपूर्ण आख्यान होते थे, इनमें नफरत नहीं होती थी, मध्ययुग से चली आ रही कट्टर मानसिकता (जिहादी और अन्य बलपूर्वक धर्मपरिवर्तन कराने वाले धार्मिक समूहों की तरह) के ठीक उलट।

सनातन धर्म की क्षीणता के लिए आंशिक आदर्शवाद भी जिम्मेदार है

आध्यात्मिक उपलब्धि के सच्चे अनुभव को जनता से साझा करने को अहंकार मान कर किनारे लगाया गया। जीवन की क्षणभंगुरता और मृत्यु के बखान से जीवन की आध्यात्मिक उपलब्धि को ढका गया। दूसरी ओर, भौतिक तरक्की करने वाले लोग कुछ न छुपाते हुए अपनी उपलब्धि का प्रदर्शन करते रहे। लोग भी मजबूरन उनकी ही कीर्ति फैलाते रहे। इसको अहंकार नहीं माना गया। इस वजह से असली अध्यात्म सिकुड़ता गया। इस कमी का लाभ उठाने नकली आध्यात्मिक लोग आगे आए। उन्होंने अध्यात्म को भौतिकता का तड़का लगाकर पेश किया, जिसे लोगों ने स्वीकार कर लिया। वह भी लोगों को अहंकार नहीं लगा। इससे अध्यात्म और नीचे गिर गया। ऐसे तो कोई भी अपने को आत्मज्ञानी या कुंडलिनी-जागृत बोल सकता है। यदि किसी को असल में आत्मज्ञान हुआ है, तो वह अपना स्पष्ट अनुभव हमेशा पूरी दुनिया के सामने रखे, ताकि उसका मिलान असली, शास्त्रीय, व सर्वमान्य अनुभव से किया जाए। ऐसा अनुभवकर्ता उम्रभर अपने उस अनुभव से संबंधित चर्चाएं, तर्क-वितर्क व उसकी सत्यता-सिद्धि करता रहे। साथ में, उसका आध्यात्मिक विकास भी उम्र भर होता रहे। वह उम्र भर जागृति के लिए समर्पित रहे। तभी माना जा सकता है कि ऐसे व्यक्ति का अनुभव असली अनुभव है। चार दिन टिकने वाले जागृति के अनुभव तो बहुत से लोगों को होते हैं।

कुंडलिनी तंत्र को उजागर करती लोकप्रिय फिल्म बाहुबली

दोस्तो, मैं एक पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कुंडलिनी-पुरुष को अभिव्यक्त करने के लिए ही महामानव को कल्पित किया जाता है। हनुमानजी ने भी एकबार पुराने जमाने के रॉकेट मैन की तरह ही वीरता से भरा कलाकौशल दिखाया था। लंका में जब उनकी पूँछ में लपेटे गए तेल से चुपड़े कपड़े में आग लगाई जाती है, तो वे रॉकेट मैन की तरह उड़ने लगते हैं, और पूरी लंका को आग लगाकर भस्म कर देते हैं। जो यथार्थ आजके महामानव से जुड़ा है, वही पुराने समय के महामानव के साथ भी जुड़ा है। अंतर यही है कि पुराने जमाने के ऋषि जानबूझकर कुंडलिनी-पुरुष को भौतिक अभिव्यक्ति देते थे, पर आजकल के बुद्धिजीवियों से अनजाने में ही आंतरिक प्रेरणा से ऐसा हो रहा है। मैंने अपने कुंडलिनी जागरण के आसपास बड़े और अत्याधुनिक पर्दे पर बाहुबली फ़िल्म सपरिवार देखी थी। हो सकता है कि उसका भी मेरी जागृति में हाथ हो। उस तमिल मूल की हिन्दी में अनुवादित फिल्म में बाहुबली नामक काल्पनिक महामानव का ही बोलबाला था। बाहुबली का शाब्दिक अर्थ है, 'ऐसा व्यक्ति जिसकी भुजाओं में बहुत बल हो'। वह अपने कन्धे पर सैकड़ों किलो वजन के पत्थर के शिवलिंग को लेके चलता, अकेले ही शत्रुओं की पूरी सेना को पलभर में ही परास्त करता, और नौका को दिव्य विमान की तरह उड़ाकर उस पर अपनी प्रेमिका राजकुमारी से रोमांस करता। उस फिल्म में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल नजर आते थे। विचित्र सी भव्यता थी उसमें, जिसे बहुत पुरानी भी कह सकते हैं, और बहुत नई भी। उसमें एनिमेशन तकनीक, वास्तविक दृश्य और जीवंत अभिनय, तीनों का मिश्रण लाजवाब था। गीत-संगीत भी आत्मा की गहराई को छूता हुआ नजर आता था। एक रोमांटिक गाने की शुरुआत तब होती है जब बाहुबली पानी में खड़ा होकर अपनी दोनों बाजुओं का पुल बनाकर उसके ऊपर से देवसेना को गुजार कर एक बड़ी सी सुंदर किश्ती में बैठाता है। इस दृश्य में कुंडलिनी तंत्र का यह पहला उपदेश छिपा है कि तंत्र में पुरुष और स्त्री बराबर का स्थान रखते हैं, और स्त्री को देवी और गुरु के रूप में पूजनीय भी माना जाता है। बाहुबली और देवसेना का रोमांस एक उड़ती हुई नौका पर दिखाया गया है। दरअसल वह पालों वाली नौका थी जो पानी पर तैर रही थी। सुंदर तटीय पहाड़ियों के बीच से गुजरती हुई वह नौका गहरे समुद्र में पहुंच जाती है। इसका मतलब है कि दोनों का विवाहोपरांत रोमांस हल्के-फुल्के पर्यटन से शुरु होकर दुनियादारी की गहरी जिम्मेदारियों के बीच में पहुंच जाता है। वहाँ बड़े-2 तूफानों से उनकी नौका डगमगाने लगती है। इसका मतलब है कि सांसारिक उलझनों और समस्याओं से उनके प्यार का आधार उनका मनुष्य जीवन संकटग्रस्त होने लगता है। फिर देवसेना आकर्षक मुस्कान के साथ बाहुबली को कुछ गूढ़ इशारा करते हुए अपने हाथ से गुलाबी रंग छोड़ती है, जो पूरे पानी को गुलाबी कर देता है। इसमें गहरा अर्थ छिपा है। मैंने शिव-पार्वती की प्रेम-लीलाओं से सम्बंधित पिछली पोस्ट में भी बताया था कि जब तक आदमी संसारसागर में बुरी तरह से नहीं फंस जाता, तब तक वह उससे बाहर निकलने का प्रयास नहीं करता। गुलाबी रंग वास्तव में स्त्री-प्रेम का प्रतीक है। वह पानी में फैलता है, मतलब संसार से होकर ही स्त्री-प्रेम उसके पात्र तक पहुंच सकता है, संसार से भागकर नहीं। समुद्र और उसका जल यहाँ संसार का प्रतीक है। दूसरा तँत्रसम्मत अर्थ इससे यह निकलता है कि स्त्री ही तंत्र का प्रारंभ करने वाली तँत्रगुरु होती है। उससे प्रेरित बाहुबली भी जोश के साथ अपने हृदय व हाथों से नीला रंग छोड़ता है, जो चारों ओर फैल जाता है। नीला रंग पुरुष-प्रेम का प्रतीक है। ये दोनों रँग आपस में मिल जाते हैं। इसका मतलब कि दोनों का प्रेम (कुंडलिनी) एकदूसरे से और चारों ओर हर चीज से घुल मिल जाता है। फिर उससे उमंग से भरा बाहुबली उस नौका के स्टीयरिंग को घुमाता हुआ फ्लाईंग गियर लगाता है, जिससे उसके पाल पंख बन जाते हैं, और नौका बादलों के बीच उड़ने लगती है। फ्लाईंग गियर का मतलब यहाँ तांत्रिक योग, और उससे कुंडलिनी का हृदय चक्र से ऊपर उठकर आज्ञा चक्र की तरफ जाना है। उस पर गाने-बजाने वाली और सेवा-शुश्रुषा करने वाली लोगों की पूरी महफिल भी साथ होती है। इसका मतलब है कि कुंडलिनी से आकर्षित होकर सभी लोग कुंडलिनी योगी के सहयोगी बन जाते हैं। इसका यह मतलब भी है कि सभी प्राण कुंडलिनी के साथ होते हैं। ये सभी सुविधाएं प्राणों की प्रतीक भी हैं। बादलों को घोड़ों के आकार में दौड़ते हुए व हिनहिनाते हुए दिखाया गया है। ये दरअसल इन्द्रियाँ हैं, जो तांत्रिक कुंडलिनी शक्ति से अपनी क्रियाशीलता के चरम पर होती हैं। सारस जैसे सफेद पंछियों के झुंड उड़ते व चहकते दिखाए जाते हैं। ये भी उमंग से भरे हुए मन के प्रतीक हैं। मन या जीवात्मा को पंछी की संज्ञा भी दी जाती है। वैसे भी शास्त्रों में इंद्रियों को घोड़ों के रूप में दर्शाया गया है। आसमान को तलाब की तरह दिखा कर उसमें उगे कमल पुष्पों के झुंड दिखाए गए हैं। साथ में चन्द्रमा भी एक सुंदर जमीनी वस्तु की तरह दिखता है, जिस पर भी फूल उगने लगते हैं। बादल उनकी नौका पर स्तंभों, सीढ़ियों आदि से सुंदर आकृतियों में लिपटने लगते हैं। इसका मतलब है कि कुंडलिनी या मन के सहस्रार चक्र में प्रविष्ट होने के बाद सभी जमीनी वस्तुएं और जमीनी भाव दिव्य लगने लगते हैं। जमीन और आसमान एक हो जाते हैं। मूलाधार और सहस्रार एक हो जाते हैं। बादल भी इसका प्रतीक है, क्योंकि उसमें जमीन (पानी) और आसमान (हवा) दोनों के अंश होते हैं। इसीलिए बादल मनभावन लगते हैं। मन अद्वैत भाव से भर जाता है। सबकुछ एक जैसा और आनन्द से भरा हुआ लगता है। यह तांत्रिक कुंडलिनी रोमांच ही है, जिसे इस तरह आसमानी बगीचे में उड़ती नौका के रूप में दिखाया गया है। नहीं तो मन के कुंडलिनी आनन्द को कोई कैसे दिखाए। बाहुबली और देवसेना साधारण रोमांस को कुंडलिनी रोमांस में बदल देते हैं, जिससे उनकी कुंडलिनी सहस्रार चक्र में पहुंच जाती है। इसे ही बादलों की ऊंचाई में उड़ना दिखाया गया है। पेड़ के इर्दगिर्द सिमटा रोमांस क्या रोमांस होता है? फिल्म निर्माता की दार्शनिक कल्पना शक्ति को दाद देनी पड़ेगी। इन उपरोक्त दृष्यों वाले मात्र एक गाने में ही पूरा तंत्र दर्शन सिमटा हुआ प्रतीत होता है। सम्भव है कि मेरे अवचेतन मन पर बाहुबली फिल्म की छाप पड़ी हो, और अनजाने में ही कुंडलिनी योग की तरफ मेरा आकर्षण बढ़ा हो। और ये तो अधिकांश विद्वान मानते ही हैं कि महामानव और कुछ नहीं, कुंडलिनी-मानव ही है। वैसे मैं यहाँ फ़िल्म की समीक्षा नहीं कर रहा हूँ, प्रकरणवश लिख रहा हूँ।

कुंडलिनी योग और शून्य आकाश~ आम मिथक का पर्दाफाश

कुंडलिनी तंत्र में चित्तवृतिनिरोध मूल धयेय न होने से यह पतंजलि योग से थोड़ा भिन्न प्रतीत होता है।

मित्रो, पतंजलि ने कहा है, योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। इसका शाब्दिक अर्थ है,"योग चित्त या मन की लहरों या विचारों को रोकना है"। इसका मतलब है कि पतंजलि ने मन को शून्य करके,अर्थात विपासना से ही जागरण को प्राप्त किया होगा। उन्होंने अकस्मात कुंडलिनी जागरण प्राप्त नहीं किया होगा। हुआ क्या कि निरंतर के कुंडलिनी ध्यान से विपासना का काम होता रहा। पुराने विचार उभरने लगे और कुंडलिनी के आगे डिम पड़ने लगे। वे मिटते रहे और शून्य बढ़ता गया। पूर्ण शून्य होने पर अकस्मात मूलाधार से ऊर्जा के ऊपर चढ़ने से समाधि महसूस हुई। यही कुंडलिनी जागरण है। इसमें तांत्रिक यौनबल और अन्य तांत्रिक तरीकों की सहायता नहीं ली गई थी। मैंने यह एक पिछली पोस्ट में भी वर्णित किया है कि जब किसी भावनात्मक आघात से मन अचानक निर्विचार होकर शून्य सा हो जाता है, तब अचानक मूलाधार से ऊर्जा की नदी पीठ से होकर सहस्रार तक चढ़ती है। मेरे साथ भी पहली बार ऐसा ही हुआ था, जिसका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। इसमें कुछ भी रहस्यात्मक या चमत्कारिक नहीं है। यह शुद्ध वैज्ञानिक घटना होती है। इसीलिए यह घटना धर्म-मर्यादा की सीमाओं से भी नहीं बंधी हुई होती। ऐसा किसी के साथ भी हो सकता है। जैसे बादल और धरती के बीच विभवांतर या ऊर्जा के अंतर के बढ़ने से बादलों से बिजली निकलकर जमीन पर गिरती है, वैसे ही मस्तिष्क या सहस्रार और मूलाधार के बीच होता है। जब तंत्रयोग से मूलाधार में ऊर्जा इकट्ठी हुई हो, और तभी किसी मानसिक सदमे या झटके से मस्तिष्क की ऊर्जा अचानक कम हो जाए, तो मूलाधार से बिजली सहस्रार को गिरती है। वह बिजली रीढ़ की हड्डी के केंद्र से होकर गुजरती है। इसे ही सुषुम्ना का जागरण या कुंडलिनी जागरण कहते हैं। वह मानसिक सदमा बेवफाई, धोखे, परेशानी, हताशा आदि किसी भी प्रकार से लग सकता है। वह ऊर्जा मन के विचार को जागृत कर देती है, अर्थात समाधि पैदा करती है। तो इसका मतलब यह हुआ कि कुंडलिनी योग प्रतिदिन करना चाहिए। क्या पता कब मानसिक सदमे वाली स्थिति पैदा हो जाए। इससे जागृति की संभावना तभी ज्यादा होगी, जब सारे चक्र विशेषकर मूलाधार चक्र ऊर्जावान होगा। साथ में, इससे सभी नाड़ियाँ भी खुली हुई रहेंगी, जिससे ऊर्जा का गमन आसान होगा। विशेष बात यह है कि कुंडलिनी को बनाया ही इसलिए होता है ताकि शून्य आसानी से प्राप्त हो जाए। होता क्या है कि अन्य सभी विचारों की बजाय कुंडलिनी ज्यादा प्रभावी होती है। इसका मतलब है कि कुंडलिनी सभी विचारों के साथ जुड़ी होती है। जैसे ही किसी मानसिक झटके से कुंडलिनी नष्ट होती है, वैसे ही उससे जुड़े हुए सभी विचार भी साथ में एकदम से नष्ट हो जाते हैं। यदि कुंडलिनी न हो, तो सभी अलग-2 सैंकड़ों विचारों को नष्ट करना लगभग असंभव के समान हो जाए। तभी तो कहते हैं कि जागृति उन्हीं को मिलती है, जिनकी कुंडलिनी सक्रिय होती है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ था। मैं कई वर्षों से कुंडलिनी योग कर रहा था। फिर पुराने सहपाठियों से ऑनलाइन मुलाकात हुई। मैं बहुत खुश हुआ। फिर किन्हीं वजहों से मुझे अपने प्रति बेवफाई महसूस हुई जिससे मुझे अजीब सा मानसिक व भावनात्मक आघात लगा। वह आनन्द व शून्यता से भरा हुआ था। इतने वर्षों से क्रियाशील कुंडलिनी मुझे नष्ट होती हुई सी महसूस हुई। मैं शून्य, खाली और हल्का सा हो गया। मूलाधार और सहस्रार के बीच विभवांतर बहुत बढ़ गया क्योंकि मेरा मूलाधार कुंडलिनी योग से काफी सक्रिय बना हुआ था। एक ऊर्जा की चमकदार लकीर मुझे अपनी रीढ़ की हड्डी से चढ़ी हुई व सहस्रार से जुड़ी हुई महसूस हुई। वहाँ हल्की सी जागृति का आभास भी हुआ, पूर्ण नहीं। हालाँकि मैं उस समय आधी नींद में था, और उसी अर्धनिद्रा की अवस्था में मुझे रात को अपनी आंखों से भावनात्मक अश्रु भी महसूस होते रहे। क्षणिक आत्मज्ञान भी ऐसी ही शून्यता से प्राप्त हुआ था। पर मुझे दुनियादारी में रहने वाले के लिए यह शून्यत्व वाला तरीका ठीक नहीं लगता। इससे आदमी पलायनवादी सा बन जाता है। यह वैज्ञानिक तरीका भी नहीं लगता मुझे। शून्यत्व तो बहुत से लोग महसूस करते रहते हैं, पर समाधि बहुत विरले लोग ही महसूस कर पाते हैं। लोग नशे से भी शून्यत्व जैसी स्थिति प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। मेरा जागृति का उपरोक्त पहला तरीका शून्यत्व जैसा लगता है लोगों को, पर वह भी पूरी तरह से शून्यत्व वाला नहीं था। वह भी हरफनमौला तांत्रिक वाला तरीका था। हालांकि वह दूसरी जागृति वाले तरीके से थोड़ा कम तांत्रिक था। जब भी मेरा झुकाव जागृति की तरफ होता था, या मुझे जागृति की याद आती थी, तो यहाँ तक कि अच्छे-खासे तथाकथित विद्वान लोग भी मुझे शून्यपरस्त सा समझकर मेरा मानसिक बहिष्कार जैसा कर देते थे, आम आदमी की बात तो छोड़ो। पता नहीं जागृति को लोग शून्यप्राप्त ही क्यों समझते हैं। ऐसा तंत्र विज्ञान की अनदेखी के कारण हुआ है। अब तो तंत्र विज्ञान लुप्तप्राय जैसा ही लगता है मुझे। तँत्रविज्ञान के मूल सिद्धांत के अनुसार तो जागृति और दुनियादारी, दोनों ही यथोचित गुणवत्ता से व यथोचित गति से एकसाथ दौड़ते हैं। यह कर्मयोग से काफी मिलता जुलता है।

पता नहीं मुझे अंतर्मन में क्यों लगता है कि शून्यत्व वाला कुंडलिनी तरीका कायरों के जैसा तरीका है। पता नहीं यह मुझे भिखारियों और लाचारों के जैसा तरीका क्यों लगता है। इसके लिए दूसरों के सहारे रहना पड़ता है। जब कोई भावनात्मक आघात देगा, तब जागृति होगी। जो भावनात्मक आघात दे, उसे उसके लिए धन्यवाद भी नहीं कर सकते। अजीब सा कंसेप्ट है। हो सकता है कि मुझे ही ऐसा लगता हो, क्योंकि सबकी शरीर संरचना भिन्न होती है। ये मेरे अपने विचार हैं, और अपने पर अनुभव करके उठे हैं। मैं कोई सिद्धांत प्रस्तुत नहीं कर रहा हूँ। जब आदमी हर तरफ से पिटेगा, तभी शून्यत्व महसूस होगा, और जागृति होगी। किसीके द्वारा पिटने का मतलब किसीके द्वारा दिया जाने वाला भावनात्मक आघात ही है। दोनों में कोई अंतर नहीं है। बल्कि भावनात्मक आघात तो भौतिक पिटाई से भी बुरा है, क्योंकि उससे मन-आत्मा की गहराई तक पिटाई होती है। इसी पिटाई-सिद्धांत की वजह से तो यह कहावत प्रचलित हुई है, "जिसका कोई नहीं है, उसका

भगवान है"। इस तरीके में आदमी अपने शरीर को भी अक्सर नुकसान पहुंचाता है। वह संतुलित आहार नहीं लेता, संतुलित जीवन नहीं जीता। वह शरीर का बहुत दमन करता है। यह इसीलिए ताकि भावनात्मक आघात का असर ज्यादा से ज्यादा हो, और वह ज्यादा से ज्यादा शून्य बने। क्योंकि यदि आदमी शक्तिमय जीवन से शक्ति हासिल करेगा, तो शून्यत्व से बचने के लिए इधर-उधर हाथ-पैर मारेगा। यह तरीका तो कोयले की खान से हीरा निकालने की तरह है। यही तरीका मुझे ज्यादातर प्रचलित दिखता है। मुझे लगता है कि यह तरीका विशेष परिस्थितियों में ही काम करता है, पर लोगों ने इसे सामान्य बना दिया है। वास्तव में यह ध्येय या साध्य है, पर लोगों ने इसे साधन बना दिया है। यह शून्य, साधना की चरमावस्था में खुद पैदा होता है, पर लोग इसे साधना किए बिना ही जानबूझकर पैदा करके करते हैं। वास्तव में यह एक आभासिक शून्य की तरह होता है, असली शून्य नहीं, पर लोग अपने लिए एक असली शून्य जैसा पैदा कर लेते हैं, घौंसले की तरह, रहने के लिए। यह प्रकाशमान, आनन्दमयी, चेतन और कुंडलिनी से भरे शून्य की तरह होता है, पर कई लोग इसे अंधकारमयी, दुखमयी, जड़ और कुंडलिनी से रहित शून्य समझकर इसका मजाक उड़ाते हैं। यह शून्य बहुत थोड़े समय के लिए टिकता है और जागृति पैदा करके नष्ट हो जाता है, पर लोग इसे लगातार बना कर रखते हुए अपने मस्तिष्क को और अपनी इंद्रियों को जैसे लॉक रूम में जैसे बन्द कर देते हैं। अगर यह तरीका इतना कारगर होता, तो आज हर जगह जागृत लोग ही दिखते। पर आप को तो लैम्प लेके ढूंढने से भी बिरले ही मिलेंगे। दूसरे, वीरों और राजाओं वाले तांत्रिक कुंडलिनी तरीके वाले लोग भी विरले ही दिखते हैं मुझे। क्योंकि वे इसे ठीक ढंग से व खुल के नहीं करते। उनके मन में इस बारे संदेह रहता है। संदेहात्मा विनश्यति। इस तरीके में अपने आम रोजमर्रा के व्यावहारिक जीवन को नीचे नहीं गिराया जाता, बल्कि तांत्रिक शक्ति से कुंडलिनी को ही इतना ऊपर उठाया जाता है कि उसके सामने भरा-पूरा भौतिक जीवन शून्य जैसा हो जाता है। यह ऐसे ही होता है जैसे सूर्य के सामने दीपक की ज्यादा अहमियत नहीं होती। शून्य बनने की नौबत ही नहीं आती। कुंडलिनी-सूर्य को संसार-दीपक से ज्यादा चमकाने के लिए दो ही तरीके हैं। या तो संसार-दीपक को बुझा दो, या फिर कुंडलिनी-सूर्य को इतना अधिक चमका दो कि संसार-दीपक फीका पड़ जाए। इससे भौतिक व सामाजिक जीवन भी साथ में तरक्की करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि शक्ति हरेक काम करती है, भौतिक भी और आध्यात्मिक भी। मैं अपनी बात बताऊँ, तो अपने प्राणोत्थान व कुंडलिनी जागरण के दौरान मैं सांसारिक रूप से काफी क्रियाशील था। मैं कुंडलिनी जागरण के लिए जंगल की किसी गुफा की तरफ नहीं भागा। मैं एक मशहूर योगी की बहुचर्चित कुंडलिनी सम्बन्धी किताब पढ़ रहा था। उसमें वे कहते हैं कि वे महानगर को छोड़कर हिमालय के सुनसान व भयानक जंगल में कई महीनों तक साधना करते रहे। अंत में उन्हें जाल बुनती हुई मकड़ी का स्पष्ट चित्र मन में दिखा। आंखें खोली तो बाहर भी हूबहू वही दृश्य था। फिर लिखते कि फिर वे साधना पूर्ण करके अपने घर आ गए। माना कि यह एकाग्रता की उच्च अवस्था है, पर साधना की पूर्णता में कुंडलिनी का और कुंडलिनी जागरण का कहीं जिक्र नहीं था, जिसके लिए वह पुस्तक मूलरूप में बनी थी। पता नहीं वह साधना की पूर्णता क्या थी? मन की आंखों से मकड़ी को जाला बुनते हुए देखने के लिए इतना ज्यादा संघर्ष? मैं यहाँ किसी की आलोचना नहीं कर रहा हूँ, बल्कि तथ्य सामने रख रहा हूँ। आध्यात्मिक विकास इसलिए भी रुकता है जब आदमी तथ्यों की छानबीन इस डर से नहीं करता कि कहीं यह किसी की आलोचना न बन जाए। इसी तरह एक अन्य महोदय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखते हैं कि वे खंडहरनुमा अंधेरे कमरे में सुनसान अकेले में कुंडलिनी साधना करते थे। कई महीनों बाद उन्हें पीठ के आधार पर अंडे जैसे के फूटने और उससे प्रकाशमय तरल पीठ के बीचोंबीच ऊपर चढ़ता हुआ महसूस हुआ। इसी अनुभव के साथ वह कुंडलिनी पुस्तक समाप्त हो जाती है। हालाँकि ये हैरानी भरे अनुभव हैं, पर कुंडलिनी और कुंडलिनी जागरण का कुछ पता नहीं। मैं अपने कुंडलिनी जागरण की झलक के दौरान पूरी तरह से विकसित और सभ्य समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रहा था। मैं अपने सांसारिक कर्मों और दायित्वों का निर्वहन पहले की तरह कर रहा था। अत्याधुनिक सुविधाओं का उपभोग कर रहा था। अत्याधुनिक गाड़ी में अत्याधुनिक मार्गों और स्थानों का सपरिवार भ्रमण-आनन्द ले रहा था। अत्याधुनिक बड़े पर्दे पर उच्च गुणवत्ता की फिल्में सपरिवार देखने अक्सर लॉन्ग ड्राइव पे चला जाता। प्राकृतिक और कृत्रिम, दोनों किस्म के नजारों का भरपूर लुत्फ उठाते हम लोग। और तो और, अंतरराष्ट्रीय कुंडलिनी फोरम पर पूरी तरह से सक्रिय था। अब इससे बढ़कर क्या दुनियादारी हो सकती है। मुझे रंगीन दुनिया से कभी अलगाव महसूस नहीं हुआ। साथ में ज्यादा लगाव भी महसूस नहीं हुआ। चमकदार दुनिया के साथ तांत्रिक शक्ति से कुंडलिनी को भी सबसे अधिक चमका भी रखा था। इससे सारा संसार पूरी तरह से चमकता हुआ भी अद्वैतकारी कुंडलिनी के आगे फीका ही रहता था। अद्वैत से सबकुछ एकजैसा लगता था। शायद ड्राइविंग का और भ्रमण का भी अद्वैत को पैदा करने में कुछ योगदान है। कुंडलिनी हर समय मस्तिष्क में रहती थी। ऐसा लगता था कि सबकुछ कुंडलिनी के अंदर है। इसका मतलब यह नहीं कि ऐसे भोगविलास से ही कुंडलिनी जागरण होता है। मैं तो बस उदाहरण दे रहा हूँ। आप शून्यत्व वाले पहले कुंडलिनी तरीके को नेगेटिव प्रेशर तरीका कह सकते हैं। इसका मतलब है कि इसमें शून्यत्व का वैक्यूम कुंडलिनी ऊर्जा को ऊपर की तरफ चूसता है। यह ऐसे ही है जैसे हम स्ट्रॉ से जूस चूसते हैं, या वैक्यूम कलीनर डस्ट को चूसता है। इसी तरह दूसरे वाले तांत्रिक कुंडलिनी तरीके को पॉजिटिव प्रैशर तरीका कह सकते हैं। इसका मतलब है कि इसमें तांत्रिक शक्तियों से कुंडलिनी को नीचे से ऊपर की तरफ बलपूर्वक पम्प किया जाता है। यह ऐसे ही है जैसे नदी के पानी को पहाड़ी की चोटी तक विद्युतचालित मोटर पम्प से चढ़ाया जाता है। कई लोग दोनों तरीकों का संतुलित इस्तेमाल करते हैं। वे मस्तिष्क में भी थोड़ा सा शून्य बनाते हैं, और तांत्रिक शक्ति से चालित कुंडलिनी पम्प से मूलाधार से भी कुंडलिनी ऊर्जा को ऊपर चढ़ाने के लिए अतिरिक्त बल प्रदान करते हैं। सम्भवतः मेरा कुंडलिनी जागरण की झलक प्रस्तुत करने वाला तरीका भी यही था। अद्वैत भाव से मेरे अंदर हल्का सा आभासिक शून्य बना होगा। इसीलिए इतनी आसानी से हो गया। बेशक यह कुंडलिनी जागरण की दस सेकंड की झलक थी, पर था तो कुंडलिनी जागरण ही। एक लीटर पानी और पांच लीटर पानी के बीच में तत्वतः कोई अंतर नहीं है। वह झलक इसलिए खत्म नहीं हुई कि मैं उसके योग्य नहीं था या मैं उसके लिए तरसता था। उस झलक को मैंने खुद जानबूझकर खत्म किया। ऐसा इसलिए क्योंकि मैं पारलौकिक आयाम में प्रविष्ट नहीं होना चाहता था। मैं अपने पिछले अनुभव से हताश हो गया था। आजकल इस आयाम का कोई सम्मान नहीं है। ऐसे आदमी को पागल व पलायनवादी समझा जाता है। ऐसे आदमी की वैज्ञानिक व प्रगतिशील सोच को भाँति-2 की अति रूढ़िवादी और अति भौतिकवादी धारणाओं से एकसाथ दबा दिया जाता है। ऐसी धारणाओं वाले लोग समझते हैं कि इसे अंधेरे बिल में सोते-2 ही जागरण प्राप्त हो गया। वे यह नहीं देख-समझ पाते कि इसे इसके

लिए इसे बहुत से भौतिक संघर्ष करने पड़े हैं। इसे शून्य पद की उपाधि तब मिली है, जब इसने सबसे ज्यादा भौतिक व सामाजिक उपलब्धियां हासिल की हैं, और यह फिर से विकासवादी भौतिक जगत में प्रविष्ट होने के लिए तैयार है, पर जागृति के साथ। वास्तव में जागृति एक ऐसा पारलौकिक आयाम है, जो किसी को नहीं दिखता, सिर्फ शून्य ही नजर आता है। इसी तरह अधिकांश लोगों को यह पता ही नहीं होता कि जो कुंडलिनी आध्यात्मिक विकास के लिए जरूरी है, वही कुंडलिनी भौतिक विकास के लिए भी जरूरी है। यदि जागरण का आनन्द कुंडलिनी से मिलता है, तो भौतिक भोग-विलास भी कुंडलिनी की सहायता से ही उपलब्ध होता है। उन्हें कुंडलिनी महसूस तो होती रहती है, क्योंकि अपने अनुभव को कोई नहीं झुठला सकता। पर उन्हें उसके बारे में विस्तार से जानकारी नहीं होती। यह ऐसे ही होता है जैसे एक चीनी से अनजान आदमी उसकी मिठास तो अनुभव कर सकता है, पर उसे उसके बारे में विस्तार से पता नहीं होता, जैसे चीनी का रंग-रूप क्या है, यह कहाँ से आई, कैसे बनी, कैसे काम करती है, इसके क्या-2 फायदे हैं, और कहाँ-2 इस्तेमाल होती है। जागृति के बाद आदमी के अपने प्यारे लोग भी बेगाने हो जाते हैं। क्योंकि उसका रूपांतरण होता है। ऐसे आदमी की दिल की गहराई को कोई नहीं समझता। कई मामलों में तो जिगरी दोस्त भी जिगरी दुश्मन बन जाते हैं। ईश्वरीय शक्ति हाथ लगने से आदमी क्रांतिकारी कदम उठाता है। उसे हिंसक क्रांतिकारी तो नहीं कह सकते पर शांतिपूर्ण रेबेलियन या समाज सुधारक कह सकते हैं। पर आम आदमी उसे क्रांतिकारी ही समझते हैं, क्योंकि उनकी नजर ही वैसी होती है। रिवोल्यूशनिस्ट और रेबेलियन के बीच में जो अंतर ओशो ने बताए हैं, वे पढ़ने लायक हैं। इससे जान का ख़तरा हमेशा बना रहता है। मैंने खुद इन्हें पहली जागृति के बाद अनुभव किया है। इतना कुछ करने के बाद भी अगर अपने आदमी ही पराए हो जाएं, तो क्या फायदा। इसलिए इस दुनिया में खुलकर मजे करने चाहिए। जो जितना ज्यादा मूर्ख है, वह इस दुनिया में उतना ही ज्यादा सुखी है। रूपांतरण के झटकों से मूर्ख ही सुरक्षित रहता है। उसके सभी अपने हैं। अध्यात्म और भौतिकता का संतुलन ही सर्वोत्तम है। मध्यमार्ग ही सर्वोत्तम है। ये मेरे अपने विचार हैं, इसीलिए व्यक्तिगत ब्लॉग पर लिख रहा हूँ। यह कोई कथा-उपदेश सुनाने वाला ब्लॉग तो है नहीं। मुझे लगता है कि नेगेटिव प्रेशर वाला कुंडलिनी तरीका उनके लिए है, जो कमजोर, बीमार, वृद्ध, ऊर्जाहीन और दुनियादारी से दूर हैं। पोजिटिव प्रेशर वाला कुंडलिनी साधना का तरीका उनके लिए है, जो ताकतवर, स्वस्थ, जवान, ऊर्जावान और दुनियादारी में डूबे हुए हैं।

असली और वैज्ञानिक तरीका तो कुंडलिनी ध्यान ही है। इसमें मूलाधार की ऊर्जा-नदी को ऊपर चढ़ाने के लिए विचारों की शून्यता का नहीं, बल्कि विचारों (कुंडलिनी विचार/चित्र) की प्रचंडता का सहारा लिया जाता है। इसलिए यह मानवीय व प्रेम से भरा तरीका है। यह व्यवहारवादी व लौकिक तरीका है, जो सबके अनुकूल है। भौतिकवादी प्रकार के लोगों के लिए तो यह तरीका सर्वोत्तम ही है। दूसरी ओर, शून्यत्व वाला तरीका जँगली सा तरीका लगता है। मुझे तो लगता है कि सम्भवतः ऋषि पतंजलि के अष्टांग योग के इसी मूल सूत्र के गलतफहमी से भरे प्रचलन से ही हिंदुओं का स्वभाव पलायनवादी जैसा रहा होगा। हालाँकि दोनों ही तरीके कुंडलिनी चालित हैं, पर छोटा सा अहम अंतर है, जिसे लोग आसानी से नहीं देख पाते। शून्यत्व वाले कुंडलिनी तरीके में कुंडलिनी से शून्यत्व पैदा किया जाता है। इसमें बहुत समय लग जाता है। इसमें तांत्रिक यौनबल का सहारा भी नहीं लिया जाता है। यह शुद्ध अष्टांगयोग वाला या राजयोग वाला तरीका है। तांत्रिक कुंडलिनी तरीके में कुंडलिनी को तांत्रिक यौनबल देकर इतना मजबूत कर दिया जाता है कि कुंडलिनी शून्यत्व को बाईपास करके सीधे ही मूलाधार की ऊर्जा-नदी को सहस्रार तक खींच लेती है। इसीलिए तांत्रिक कुंडलिनी जागरण हमेशा कुंडलिनी से शुरु होता हुआ अनुभव होता है। शून्यत्व वाला जागरण किसी भी विचार या चित्र से शुरु हो सकता है, हालांकि ज्यादातर कुंडलिनी से ही शुरु होता है, और ज्यादा भूमिका कुंडलिनी की ही होती है, क्योंकि उसका ध्यान करने की आदत होती है। तांत्रिक कुंडलिनी जागरण के दौरान तो आदमी दुनियादारी के मजे उड़ा रहा होता है, घूम-फिर रहा होता है। पर शून्यत्व वाले कुंडलिनी जागरण के दौरान वह दुनिया की नजरों में अकेले जैसा, निवृत्त जैसा, और अवसादग्रस्त जैसा होता है। एक सामाजिक प्राणी के लिए शून्यत्व पैदा करना आसान नहीं है। अगर पैदा हो गया, तो उसे बना कर रखना आसान नहीं है, क्योंकि ऐसा तो नहीं है कि शून्यत्व पैदा होते ही जागरण हो जाए। मुझे लगता है कि हिन्दू धर्म में जो भौतिक व बौद्धिक विकास की रफ़्तार कम हुई, उसके लिए कहीं न कहीं यह शून्यत्व साधना भी जिम्मेदार है। पतंजलि के चित्तवृत्ति या मन के विचारों के रोधन से लोग यह मतलब लगाने लगे होंगे कि दिमाग का जितना कम प्रयोग करेंगे, उतनी ही जल्दी और बढ़िया जागृति होगी। पर वे पतंजलि के गूढ़ भाव को नहीं समझे होंगे, जिसके अनुसार कुंडलिनी साधना खुद शून्यत्व पैदा करती है, जानबूझकर दिमाग को बंधक बनाने की जरूरत नहीं। पतंजलि योग में यम-नियम आदि चित्त-विरोधी विधियों से दिमाग की बैकग्राउंड सीनरी की डार्कनेस को बढ़ाकर कुंडलिनी चित्र को चमकाने की कोशिश की जाती है। कुंडलिनी को अतिरिक्त ऊर्जा देने के लिए इसमें ऊर्जाघन पदार्थों जैसे कि तांत्रिक पंचमकारों के सेवन का प्रावधान नहीं है। जबकि कुंडलिनी योग में बैकग्राउंड सीनरी की चमक को बढ़ाकर कुंडलिनी को चमकाने के लिए अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान की जाती है। साथ में, तांत्रिक तकनीकों से बैकग्राउंड सीन की चमक को भी कुंडलिनी के ऊपर स्थानांतरित किया जाता रहता है। इससे लौकिक ऐशोआराम भी दुष्प्रभावित नहीं होता। हालांकि यह एक वैश्विक सत्य है कि कुछ न होने से कुछ होना बेहतर है। मेरे कहने का मतलब है कि जिस किसी भी मानवीय तरीके से कुंडलिनी जागरण की संभावना हो, उसे झटक लेना चाहिए।

कुंडलिनी प्रेम, आदर, और समर्पण के भावों की भूखी है, जो योग या सामाजिक रिश्तों या दोनों से बढ़ाए जाने योग्य हैं

कुंडलिनी योग के सर्वोच्च महत्त्व को दर्शाती शिवपुराण की शिव-सती व दक्ष-यज्ञ की कथा

दोस्तो, इस हफ्ते मुझे एक नई अंतर्दृष्टि मिली है। शिवपुराण में एक प्रसिद्ध कथा आती है। प्रजापति दक्ष जो ब्रह्मा का पुत्र था, उसने शिवेच्छा और अपने पिता की संस्तुति से प्रेरित होकर अपनी पुत्री सती का विवाह भगवान शिव से कराया था। एकबार किसी तीर्थस्थान पर ऋषियों और राजाओं की बैठक हो रही थी। उस सभा में भगवान शंकर भी बैठे थे। तभी वहाँ ब्रह्मा भी आए। सभी लोग उनके सम्मान में खड़े हो गए और उन्हें नमन किया। परंतु भगवान शिव चुपचाप बैठे रहे। इससे दक्ष उनपर बड़ा गुस्सा हुआ, और उन्हें भला-बुरा कहने लगा। बात यहीं खत्म नहीं हुई। दक्ष के मन में क्रोध और बदले की आग बुझ ही नहीं रही थी। इसलिए उसने शिव को अपमानित करने के लिए एक बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया। उसमें उसने अपने जामाता शिव को छोड़कर अपने सभी संबंधियों, सृष्टि के सभी देवताओं और विशिष्ट लोगों को बुलाया। जब पार्वती ने अपनी बहनों को सज-धज कर कहीं जाते हुए देखा, तो अपनी सखी से उनसे पुछवाया कि वे कहाँ जा रही थीं। जब पार्वती को अपने पिता दक्ष के यज्ञ के बारे में पता चला तो वह अपने पति शिव के पास जाकर चलने के लिए कहने लगी। शिव ने बताया कि दक्ष उनसे शत्रुता रखते हैं, इसलिए उन्होंने उन्हें जानबूझकर नहीं बुलाया। सती ने फिर कहा कि शास्त्रों के अनुसार पिता, गुरु और मित्र के यहाँ जाने के लिए किसी निमंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। तब शिव ने जवाब दिया कि उसकी बात ठीक है, पर दक्ष की बात और है, वह वहाँ उसका अपमान करेंगे और अपनों के द्वारा किया अपमान मृत्यु से बढ़कर होता है। पर सती नहीं मानी और वहां चली गई। वहाँ अपने पति शिव का स्थान व भाग न देखकर वह बहुत क्रोधित हुई और अपने पिता दक्ष को फटकारने लगी। सती ने शिव को असली और सबसे बड़ा देवता बताया। दक्ष ने उससे कोई बात नहीं की और न ही औरों को करने दी। फिर जब सती चुप नहीं हुई, तब उसने सती को भूतों के साथ रहने वाले वेदविरुद्ध और गन्दे शिव की पत्नी कहा। फिर सती ने यह सोचकर कि वह शिव को क्या मुंह दिखाएगी और जब वे उसे दाक्षायणी या दक्ष-पुत्री कहेंगे तो वह क्या जवाब देगी, अपना शरीर योगविद्या से त्याग दिया और यज्ञ की अग्नि में प्रविष्ट कर गई। उसके दुख से 10000 शिवगणों ने गुस्से में अपने अस्त्र-शस्त्रों से अपने अंग भंग कर दिए और मृत्यु को प्राप्त हो गए। जब बाकि बचे गणों ने यज्ञ पर हमला किया तो ऋषियों द्वारा यज्ञ से पैदा किए ऋभु देवों से उनका युद्ध हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई जो दक्ष को फटकारने लगी। उसने सती को सबकी माँ, सूर्य-चन्द्र समेत सारी सृष्टि को पैदा करने वाली, शिव की परम प्यारी, शिव के आधे शरीर के रूप वाली, भुक्ति और मुक्ति देने वाली, सभी सुख प्रदान करने वाली, और परम आदरणीय बताया। उसने सती का आदर न करने पर दक्ष को बहुत फटकारा। ऋभुओं ने उस समय तो शिवगणों को भगा दिया पर बाद में शिव के भयानक दूसरे गणों ने आकर दक्ष यज्ञ का विध्वंस कर दिया था। वह सती अपने अगले जन्म में पार्वती नाम से फिर से शिव की पत्नी बनी।

कुंडलिनी शक्ति सती, कार्यकारी मन ब्रह्मा, और भूतिया जीवात्मा शिव के रूप में दर्शाया गया है

अब उपरोक्त कथा का गूढ़ रहस्य समझते हैं। दरअसल कुंडलिनी ही देवी सती है। शिव शून्य आकाश की तरह है। दोनों साथ रहकर ही अपनी सत्ता प्राप्त करते हैं। अलग रहकर तो न होने के सदृश ही हैं। मतलब कि दोनों साथ रहते हैं। सती से ही शिव को चमक प्राप्त होती है। शिव से सती को स्थिरता या सनातनता या अजरता-अमरता, और सर्वव्यापकता प्राप्त होती है। अब यहाँ कुछ दार्शनिक पेंच हैं, जिन्हें अक्सर नजरन्दाज किया जाता है। आदमी बड़े-2 धार्मिक कार्य करता है, पर कुंडलिनी योग को नजरंदाज करता है। ऐसे लोग प्रजापति दक्ष की तरह हैं, जिन्हें उसकी तरह नरक में जाना पड़ता है। इस कथा में कुंडलिनी योग का महत्त्व छिपा हुआ है। भाईसाहब, अब कुंडलिनी क्या है, यही यक्ष प्रश्न हरेक पोस्ट में खड़ा हो जाता है। मन में तो अनगिनत चित्र हैं। अब किसे कुंडलिनी माना जाए। तो इसका यही उत्तर बनता है कि तांत्रिक यौनयोग या पंचमकारों वाले योग के समय जो मन में सबसे मजबूती व सहजता से उभरे, वही चित्र कुंडलिनी है। क्योंकि कुंडलिनी तभी बनती है न जब मन का कोई चित्र मूलाधार स्थित यौन शक्ति से जुड़ता है। वही चित्र कुंडलिनी चित्र है, मन का कोई सामान्य चित्र नहीं। कुंडलिनी की दूसरी पहचान यह है कि उसके साथ आदमी के अंदर शून्यता, और व्यापकता भी हावी हो जाती है। यही शिव या आत्मा है, जिसे भूतों का साथी कहा गया है। भूत मृत्यु को भी कहते हैं। शून्यता और व्यापकता मृत्यु का प्रमुख गुण है। इसीसे शिव या आत्मा भूतों का साथी हुआ। कुंडलिनी की तीसरी पहचान है कि यह एक शुद्ध मानसिक चित्र होता है। मतलब कि वह भौतिक रूप में उपलब्ध नहीं होता। भौतिक रूप में मिलने से वह चित्र कुंडलिनी रहता ही नहीं, क्योंकि भौतिक वस्तुओं में हजारों दोष दिखाई देते हैं।

दोषों वाली चीज मन में कहाँ चमकी रह पाएगी। इसीलिए किसी देवता के या गुरु के मानसिक चित्र को कुंडलिनी बनाया जाता है। विशेष आदर बुद्धि होने के कारण गुरु के भौतिक रूप में भी दोष नहीं दिखाई देता। कुंडलिनी की चौथी पहचान यह है कि मन में अद्वैतमयी भाव पैदा होने पर केवल अकेला कुंडलिनी चित्र मन में तेजी से चमकने लगता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अद्वैत भाव शून्य आकाश जैसा ही होता है। मतलब यह शिव भाव होता है। वहाँ सती तो हर हाल में पहुंचेगी ही, क्योंकि वह शिव के आधे शरीर के रूप में जो है। अगर फिर भी आपको कुंडलिनी का पता न चले, तो मैं कुछ नहीं कर सकता। हाहाहा। शिवपुराण में भी वही लिखा है जो मैं पिछली पोस्टों में बोल रहा था कि कुंडलिनी ही आध्यात्मिक मुक्ति के साथ भौतिक तरक्की व भोग-विलास भी प्रदान करती है। मन से ही सारा संसार है। जो यह कहा गया है कि उससे ही सारी सृष्टि की उत्पत्ति होती है, वह सब मन में ही तो होता है। सारी सृष्टि इस फुटबॉल के जितने आकार वाले सिर के अंदर पसरे मन में ही तो है, बाहर कुछ भी नहीं है। और भाई मन का सर्वप्रमुख प्रतिनिधि होने के कारण कुंडलिनी को मन भी कह सकते हैं। तो हुई न कुंडलिनी से ही सारी सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय। दक्ष यहाँ कर्म में लगे हुए गौण मन का प्रतीक है। वह जगत में प्रसिद्धि व पुण्य प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ कर्म करता है। वह अनेक प्रकार के देवताओं का पूजन करता है। उससे अद्वैत भाव से मन में कुंडलिनी का उद्भव होता है। वही उसकी सबसे प्रिय पुत्री सती है। शिव उससे शादी करने की इच्छा करते हैं, मतलब वे कुंडलिनी को जागरण के लिए प्रेरित करते हैं। यह भी आता है कि शिव-सती की जोड़ी सनातन है, वे केवल लीला के लिए ही अलग होते रहते हैं, और शादी करते रहते हैं। तभी तो सती अगले जन्म में पार्वती बनकर फिर से शिव की पत्नी बनी। इसका मतलब साफ है कि जीव ईश्वर से अलग होता है, और उसी में विलीन भी हो जाता है। दक्ष शिव की इच्छा का सम्मान करते हुए सती का विवाह शिव से कर देते हैं, मतलब कुंडलिनी जागरण हो जाता है, दक्ष अर्थात गौण मन जिसका पूरा आनंद उठाता है। ब्रह्मा भी सती का विवाह शिव से कराने के लिए दक्ष को मनाते हैं। इसका मतलब है कि जो ब्रह्मा के रूप में मुख्य या मूल मन है, वह अपने अंदर सृष्टि को बढ़ा कर ज्यादा से ज्यादा बड़ा होना चाहता है। उसे पता है कि ईश्वर में मिलकर वह सबसे बड़ा हो जाएगा। इसलिए वह काम-काज में व्यस्त रहने वाले मन अर्थात दक्ष को कुंडलिनी जागरण के लिए प्रेरित करता है। ब्रह्मा यहाँ मूल मन का प्रतीक है। फिर दक्ष सती को यज्ञ में नहीं बुलाता। इसका मतलब है कि कुंडलिनी जागरण के बाद कार्यकारी मन कुंडलिनी योग नहीं करता और दुनिया के कामों में व्यस्त हो जाता है। मतलब साफ है कि यदि कुंडलिनी जागरण के बाद कुंडलिनी योग न किया, तब भी पतन सम्भव है। फिर जिसकी कुंडलिनी जागृत ही नहीं हुई, उसे तो क्यों नहीं करना चाहिए। दक्ष ने शिव को नहीं बुलाया, मतलब उसने अद्वैत भाव को धारण नहीं किया। सती दक्ष से मिलने अकेले गई, मतलब कुंडलिनी मन में बारबार आती है यह देखने कि उसका सम्मान है कि नहीं। शिव उसके साथ तभी आएंगे जब उसे सम्मान दिया जाएगा अर्थात कुंडलिनी से अद्वैत भाव को धारण करके शिव को भी सम्मान दिया जाएगा, मतलब कुंडलिनी योग से उसपर गौर किया जाएगा। हालांकि मन से तो शिव कुंडलिनी के साथ है ही। दक्ष ने कुंडलिनी का सम्मान नहीं किया, मतलब उसने कुंडलिनी योग नहीं किया। सती ने आत्मदाह किया, मतलब कुंडलिनी नष्ट हो गई। उसके साथ शिवगणों ने भी आत्महनन किया, मतलब दक्ष रूपी गौण मन से शिव के बहुत से गुण गायब हो गए। गणों को सुंदर विचार भी कह सकते हैं। वे कुंडलिनी के साथ रहते हैं, और शिव की सहायता से उत्पन्न होते हैं। बाकि बचे गणों ने यज्ञ पर हमला किया, मतलब भगवान के कोप से सांसारिक विघ्न आए। यज्ञ से उत्पन्न ऋभुओं ने गणों को भगाया, मतलब अच्छे कर्मों के पुण्यों से दक्ष का बचाव हुआ। बाद में शिव के महान गणों से ऋभु देव भी नहीं बचा सके, मतलब मृत्यु के समय दक्ष के अच्छे कर्म उसके काम नहीं आए, और कुंडलिनी न होने से शिव ने भी उसका साथ नहीं दिया। शिवगण ने दक्ष का सिर धड़ से अलग कर दिया, मतलब दक्ष को मुक्ति के बिना ही मरना पड़ा। फिर शिव ने उसे बकरे का सिर लगाया जिससे वह बैं-बैं या बम-बम की आवाज करता हुआ शिव की स्तुति करने लगा। मतलब कुंडलिनी के आंशिक प्रभाव से दक्ष का पुनर्जन्म एक शिवभक्त के रूप में हुआ जिससे शिव की भक्ति करता हुआ वह मुक्त हो गया। बकरे में अहंकार नहीं होता। वह भक्ति का प्रतीक है, क्योंकि वह अपने मालिक के लिए बैं-बैं की प्रेम की रट लगा रखता है। इसका मतलब है कि जो कुंडलिनी योग से कुंडलिनी को सम्मान नहीं देता, वह अगले जन्म में भक्त बनता है। भक्ति उसकी योग की कमी को पूरा करती है। जब बुढ़ापे, बाल्यावस्था व बीमारी की अवस्था में आदमी तांत्रिक कुंडलिनी योग नहीं कर सकता, उस समय भक्ति ही उसका सहारा होती है। भक्ति से वह अपने मन को लगातार इष्ट में लगा कर रखता है। मुझे प्रेम और सम्मान में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता। प्रेम और सम्मान वास्तव में पर्यायवाची शब्दों की तरह है। प्रेम से ही असली सम्मान होता है। बिना प्रेम का सम्मान तो दिखावा या जबरदस्ती का सम्मान है। तभी पहाड़ी भाषा में एक कहावत है, "मूंड मेक रौ डाल नी कराऊँदि"। इसका मतलब है कि किसी का सिर मोड़कर उससे प्रणाम नहीं कराई जा सकती। जहां ज्ञान खत्म होता है, वहाँ भक्ति शुरु होती है। भगवान वेदव्यास ने 17 पुराण रच दिए थे। सारी सृष्टि का और ईश्वर का ज्ञान उसमें भर दिया था। पर उन्हें संतुष्टि नहीं मिली। इसलिए उन्होंने भक्तिमय पुराण श्रीमद्भागवत की रचना की। फिर उनकी कुंडलिनी स्थिर हुई, जिससे उन्हें परम संतुष्टि मिली। पर सीधे भक्ति करना भी मुश्किल है। असली भक्ति ज्ञान के बाद ही होती है। जो लोग बचपन से ही प्रेमी स्वभाव के होते हैं, वे पिछले जन्म के कुंडलिनी योगी प्रतीत होते हैं। कुंडलिनी योग को आसन प्राणायाम वाले योग तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। यह प्राकृतिक कारणों से स्वयं भी हो सकता है। कुंडलिनी के प्रति आदर बुद्धि रखने में तो कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। वह एक मानसिक चित्र है, आध्यात्मिक चित्र है। उसमें भौतिकता का कोई नामोनिशान नहीं। अशुद्धि तो भौतिक पदार्थों में ही सम्भव है। अशुद्धि भौतिक ही होती है। यह शारीरिक अपशिष्टों, घृणा, क्रोध,वासना आदि से बनी होती है। आकाश या शून्य में कोई भौतिक वस्तु है ही नहीं। इसीलिए कुंडलिनी चाहे किसी भी रंग-रूप में क्यों न हो, हर हालत में आदरणीय है। इसीलिए आध्यात्मिक व्यक्ति को ही ज्यादातर मामलों में गुरु बनाया जाता है, क्योंकि उनमें आकाश की तरह अशुद्धि या दोष नहीं होते। दोष स्वार्थ से पैदा होते हैं। आकाश को किसी चीज की जरूरत नहीं क्योंकि वह अविनाशी है, इसलिए उसमें दोष नहीं हैं। दूरदर्शन के चरित्र भी इसीलिए प्रिय व आदरणीय लगते हैं, क्योंकि वे भी आकाश की तरह ही शुद्ध हैं। मन में बने चित्र से ज्यादा कुछ नहीं हैं। उनके भौतिक रूप से हमें कोई मतलब नहीं होता। भौतिक रूप के साथ बहुत जिम्मेदारियां जुड़ी होती हैं। तभी तो कई लोग इन चरित्रों के इतने दीवाने हो जाते हैं कि उनके लिए पता नहीं क्या-क्या कर बैठते हैं। यदि वैसे लोग उन्हें कुंडलिनी बना कर साधना करे, तो सफलता क्यों न मिले।

प्रेम, आदर और समर्पण ही मानवता की रीढ़ है

प्रेम, आदर और समर्पण में भावना की मात्रा का ही फर्क है, वैसे तीनों समान हैं। प्रेम तो हम बच्चों के साथ भी करते हैं। विशिष्ट लोगों के लिए प्रेम के साथ आदर जुड़ने से वह और घना हो जाता है। अति विशिष्ट और दिल के सबसे नजदीक लोगों के लिए उसमें समर्पण भी जुड़ जाता है। इससे प्रेम सर्वोच्च कोटि का बन जाता है। कुंडलिनी ऐसे ही सर्वोच्च कोटि के प्रेम या समर्पण की भूखी होती है। हम जो औरों से अपने प्रति समर्पण की आकांक्षा करते हैं, वह कुंडलिनी के लिए ही करते हैं। मुझे बाहुबली फिल्म में बाहुबली के प्रति लोगों का उच्च कोटि का समर्पण दिखा था। महामानव या सुपरहीरो वाली फिल्में इसीलिए अच्छी लगती हैं क्योंकि उनमें समर्पण की घटनाओं से कुंडलिनी को बल मिलता है। इसी तरह मेरे क्षणिक जागरण के समय वहाँ उपस्थित लोग मुझे अपने प्रति समर्पित से लगे। उनकी वह समर्पण की भावना मेरी कुंडलिनी को लगी और वह जागृत हो गई। यदि मैं तांत्रिक कुंडलिनी योग न कर रहा होता, तो वह समर्पण कुंडलिनी के प्रति तो होता और उससे कुंडलिनी चमकती भी पर जागृत न होती। स्त्री प्रेम और प्रणय प्रेम कुंडलिनी को बढ़ाता है, क्योंकि उसमें समर्पण होता है। अगर तो प्रणय प्रेम तांत्रिक किस्म का हो, तब तो और अधिक कुंडलिनी को भड़काता है। इसीलिए शास्त्रों में समर्पण और प्रणय प्रेम से भरी कथाओं की भरमार है। भक्ति भी तो समर्पण ही है। तभी कहते हैं कि जहां ज्ञान हार जाता है, वहाँ भक्ति जीत जाती है। इसी समर्पण के लिए ही हिंदु शास्त्रों में प्रेम और शिष्टाचार का बहुत ज्यादा महत्त्व है। इसीलिए कुंडलिनी संस्कृति एक आदर्श मानवतापूर्ण संस्कृति है , क्योंकि इसमें प्रेम, आदर और समर्पण की भरमार होती है, जो मानवता के सर्वप्रमुख गुण हैं। प्राचीन आर्यन संस्कृति ऐसी ही आदर्श संस्कृति थी। आजकल की पीढ़ी के लोग इन्हें मजाक में लेते हैं। तभी तो एक वीडियो गेम की रिकॉर्डिंग वाले अदने से यू ट्यूब चैनल को भी कुछ ही महीनों में हजारों-लाखों फ़ॉलोअर मिल जाते हैं, और ज्ञान-विज्ञान से भरे इस कुंडलिनी ब्लॉग को तीन सालों में पांच सौ भी नहीं मिले हैं। मैं आत्मप्रशंसा नहीं कर रहा हूँ, और न ही फॉलोवर्स बढ़ाने की मंशा रखता हूँ, पर आज के समाज की दयनीय दशा की तस्वीर साझा कर रहा हूँ। मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो बस एक मामूली सा टैन सैकण्ड मैन या दशक्षण व्यक्ति हूँ, मतलब मेरे सारे आध्यात्मिक अनुभव दस सेकंड के लगभग ही रहे हैं। हाहाहा।

तंत्र योग से समर्पण की कमी पूरी की जा सकती है

हिंदु शास्त्रों में जो मांसाहार और मद्य का निषेध है, वह इसी समर्पण की भावना को बचाने के लिए है। बेचारे पालतू पशु आदमी के प्रति पूरी तरह से समर्पित होते हैं, पर आदमी ही उनका गला घोंटता है। यह समर्पण भाव का गला घोंटना ही तो है। इस हिसाब से इससे बढ़िया तो जंगल या झील का शिकार है। उससे समर्पण के साथ धोखा तो नहीं होगा। यह एक दार्शनिक जुगाली है, इसे ज्यादा गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए। इसी तरह मद्यपान भी समर्पण को घटाता है, क्योंकि इससे आदमी अनजाने में ही दुर्व्यवहार कर बैठता है। यहाँ पँचमकारी तँत्रविज्ञान काम कर सकता है। तंत्र विज्ञान समर्पण भाव से ज्यादा अपेक्षा नहीं रखता। वह तो बलपूर्वक कुंडलिनी को वश में करके उसे जागृत कर लेता है। यह तो कुंडलिनी को बलात्कार से वश में करने की तरह ही है। हालाँकि कुछ जरूरत तो पड़ती ही है, जैसे मुझे पड़ी थी, जैसा मैंने ऊपर बताया। यदि समर्पण को बिल्कुल नजरन्दाज करना हो, तो तांत्रिक योग बहुत शक्तिशाली होना चाहिये। वैसे जब तन्त्रयोगी का शरीर दुर्बल हो जाता है और उससे उच्च कोटि का तंत्रयोग नहीं हो पाता, तब तो अन्ततः उसे समर्पण या भक्ति के आश्रित होना ही पड़ता है। यही यहाँ ज्ञान पर भक्ति की जीत है। हालाँकि उसे भक्ति भाव बहुत शीघ्रता से प्राप्त हो जाता है, पर फिर उसे अपना खान-पान और आचार-विचार सुधारना पड़ता है।

पूर्ण समर्पण ही कुंडलिनी जागरण के रूप में कुंडलिनी योग की पराकाष्ठा है

कुंडलिनी योग की शुरूआत कुंडलिनी से बलपूर्वक प्रेमपूर्ण सम्बन्ध बनाने से होती है। धीरे-धीरे वह प्रेम आसान हो जाता है। फिर समय के साथ उसके साथ आदर भी जुड़ जाता है, और वह और ज्यादा मजबूत हो जाता है। लगातार कुंडलिनी योग करते हुए बहुत समय बीतने पर कुंडलिनी के प्रति प्रेम और आदर के साथ समर्पण भी जुड़ जाता है। फिर अंत में कुंडलिनी के प्रति समर्पण इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि योगी कुंडलिनी के साथ एकाकार हो जाता है। इसे ही समाधि या कुंडलिनी जागरण कहते हैं। तंत्रयोग से बेशक कुंडलिनी जागरण एक झटके में मिल जाता हो, पर बाद में कुंडलिनी जागरण को स्थायी बनाने के लिए उसे योगसाधना के इसी क्रम से गुजरना पड़ता है। इसलिए कुंडलिनी जागरण हुआ हो या न हुआ हो, कुंडलिनी योग सभी को करते रहना चाहिए। जिन्हें नहीं हुआ हो, उन्हें जल्दी सफलता मिलती है, क्योंकि उन्हें उसका अहंकार नहीं होता और नए अनुभव को प्राप्त करने का शौक भी होता है। दुबारा से एक ही अनुभव को प्राप्त करने में इतनी रुचि नहीं होती, जितनी नए अनुभव को प्राप्त करने में होती है।

कुंडलिनी योग में लेखन का महत्त्व

दोस्तो, पिछली पोस्ट में मैं बता रहा था कि कैसे कुंडलिनी प्रेम की भूखी होती है। आध्यात्मिक शास्त्रों में भगवान भी तो प्रेम के ही भूखे बताए जाते हैं। दरअसल भगवान वहाँ कुंडलिनी को ही कहा गया है। साथ में मैं बता रहा था कि कैसे आजकल की पीढ़ी असंतुलित होती जा रही है। इलेक्ट्रॉनिक वीडियोस, सोशल मीडिया और गेम्स के लिए उनके पास समय भी बहुत है, और संसाधन भी। पर इलेक्ट्रॉनिक बुक्स, वैबपोस्टस और चर्चाओं के लिए न तो समय है, और न ही संसाधन। इनके भौतिक या कागजी रूपों की बात तो छोड़ो, क्योंकि वे भी अपनी जगह पर जरूरी हैं। यदि ये आध्यात्मिक प्रकार के हैं, तब तो बिल्कुल भी नहीं। एकबार एक जानेमाने पुस्तक विक्रेता की दुकान पर उसके मालिक से मेरी इस बात पर संयोगवश चर्चा चल पड़ी थी। बेचारे कह रहे थे कि इलेक्ट्रॉनिक गेजेट्स ने उनकी दुकान पर पुस्तकों की बिक्री बहुत कम कर दी है। फिर भी उनके संतोष व उनकी सहनशीलता को दाद देनी पड़ेगी जो कह रहे थे कि बच्चों को बड़े प्यार से ही मोबाइल फोन और अन्य इलेक्ट्रॉनिक गेजेट्स से दूर रखना चाहिए, डांट कर नहीं। डांट से वे कुण्ठा और हीनता से भर जाएंगे। डांटने से अच्छा तो उनको इनका प्रयोग करने दो, वे खुद सीखेंगे। यहाँ हम किसी चीज को ऊंचा या नीचा नहीं दिखा रहे हैं। हम तो यही कह रहे हैं कि संतुलित मात्रा में सभी मानवीय चीजों की जरूरत है। संतुलन ही योग है, संतुलन ही अध्यात्म है।

असली लेखक अपने लिए लिखता है

मैं हमेशा अपने बौद्धिक विकास के लिए लिखने की कोशिश करता रहता हूँ। जो असली लेखक होता है, वह औरों के लिए नहीं, अपने लिए लिखता है। लेखन से दिमाग को एकप्रकार से एक्सटर्नल हार्ड डिस्क मिल जाती है, डेटा को स्टोर करने के लिए। इससे दिमाग का बोझ कम हो जाने से वह ज्यादा अच्छे से सोच-समझ सकता है। आपको तो पता ही है कि कुंडलिनी योग के लिए चिंतन शक्ति की कितनी अधिक जरूरत है। केंद्रित या फोकस्ड चिंतन ही तो कुंडलिनी है। उस लेखन को कोई पढ़े तो भी ठीक, यदि न पढ़े तो भी ठीक। अपने जिस लेखन से आदमी खुद ही लाभ नहीं उठा सकता, उससे दूसरे लोग क्या लाभ उठाएंगे। अपने फायदे के साथ यदि दुनिया का भी फायदा हो, तो उससे बढ़िया क्या बात हो सकती है। आप मान सकते हो कि मेरे आध्यात्मिक अनुभवों में मेरे लेखन का अप्रतिम योगदान है। कई बार तो लगता है कि यदि मुझे लेखन की आदत न होती, तो वे अनुभव होते ही न। आजकल ईबुक्स की कीमतें बढ़ा-चढ़ा कर रखने का रिवाज सा चला है। पर सच्चाई यह है कि उन पर लेखक के भौतिक संसाधन खर्च नहीं होते, जैसे कि कागज, पैन आदि। सैल्फ पब्लिशिंग से पब्लिशिंग भी निःशुल्क उपलब्ध होती है। केवल लेखक की बुद्धि ही खर्च होती है। पर बुद्धि तो खर्च होने से बढ़ती है। किताब की कीमत तो बुद्धि व अनुभव के रूप में अपनेआप मिल ही जाती है, तब पैसे की कीमत किस बात की। कहते भी हैं कि विद्या खर्च करने से बढ़ती है। इसीलिए पुराने जमाने में आध्यात्मिक सेवाएं निःशुल्क या नो प्रोफिट नो लॉस पर प्रदान की जाती थीं। सशुल्क ईबुक्स को बहुत कम पाठक मिलते हैं। निःशुल्क पुस्तकों को खरीदने व बेचने के लिए गूगल प्ले बुक्स और पीडीएफ ड्राइव डॉट नेट बहुत अच्छे प्लेटफॉर्म हैं। पिछले एक साल के अंदर गूगल प्ले बुक्स पर मेरी नौ हजार पुस्तकें शून्य मूल्य पर बिक गई हैं। इन पुस्तकों में भी सबसे ज्यादा बिक्री इस वेबसाइट की सभी ब्लॉग पोस्टस को इकट्ठा करके बनाई गई पुस्तकों की हुई है। यदि उनकी कीमत रखी होती तो शायद नौ भी न बिकतीं। यह इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि एक अन्य प्लेटफार्म पर इन पुस्तकों के पेड वेरशन्स (न्यूनतम मूल्य पर) भी हैं, वहाँ तो लगभग नौ ही बिकी हैं। गूगल प्ले बुक्स पर भी एक बार पुस्तकों का न्यूनतम मूल्य रखकर प्रयोग किया था, तब भी दो या तीन महीनों में केवल 4-5 प्रतियां ही बिक पाई थीं। अपने लेखन के प्रति पाठकों की रुचि से जो संतोष प्राप्त होता है, वह पैसे से प्राप्त नहीं होता।

इड़ा और पिंगला नाड़ी अर्धनारीश्वर को इंगित करते हैं

अपने पिछले लेखन से मैंने इस हफ्ते यह बात सीखी कि क्यों न अपने आध्यात्मिक अनुभवों का सार्वभौमिक प्रमाण आध्यात्मिक शास्त्रों में भी ढूंढा जाए। इसलिए मैंने स्वामी मुक्तिबोधानन्द की हठयोग प्रदीपिका को पढ़ना शुरु किया। दो दिनों में ही 15% से ज्यादा पुस्तक को पढ़ लिया। इतना जल्दी इसलिए पढ़ पाया क्योंकि जो मैं अपने अनुभवों से लिखता आया हूँ, कमोबेश वही तो था लिखा हुआ। साथ में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी की छुट्टी होने के कारण पर्याप्त समय भी मिल गया। सिर्फ दो-चार विचारों में अंतर जरूर था। यदि मैं वह अंतर बताऊंगा, तो यह माना जा सकता है कि आपने भी वह पुस्तक पढ़ ली होगी, क्योंकि आप मेरी पोस्टस शुरु से पढ़ते आ रहे हैं। मैं वह अंतर आने वाली पोस्टों में भी बताता रहूँगा।

उस पुस्तक में लिखा है कि इड़ा नाड़ी पीठ के बाएं भाग से ऊपर चढ़ती है, पर ऊपर जाकर दाईं ओर मुड़कर मस्तिष्क के दाएं गोलार्ध को कवर करती है। पर मुझे तो वह बाएँ मस्तिष्क में ही जाते हुए अनुभव होती है। इसी तरह पिंगला नाड़ी को निचले शरीर के दाएं भाग और मस्तिष्क के बाएं भाग को कवर करते हुए दर्शाया गया है। पर मुझे तो वह दाएं मस्तिष्क में ही जाते हुए दिखती है। अर्धनारीश्वर के चित्र में भी ऐसा ही, मेरे अनुभव के अनुरूप ही दिखाया जाता है। वहाँ तो ऐसा नहीं दिखाया जाता कि शरीर का निचला बायाँ भाग स्त्री का और ऊपरी बायाँ भाग पुरुष का है। हो सकता है कि इसमें कुछ और दार्शनिक या अनुभवात्मक पेच हो।

आध्यात्मिक सिद्धियां बताने से बढ़ती भी हैं

एक अन्य मतभेद यह था कि उस पुस्तक में सिद्धियों को गुप्त रखने की बात कही गई थी। मैं भी यही मानता हूँ कि एक स्तर तक तो गोपनीयता ठीक है, पर उसके आगे नहीं। जब मन जागृति से भर जाए और आदमी क्षणिक जागृति के और अनुभव प्राप्त न करना चाहे, तब अपनी जागृति को सार्वजनिक करना ही बेहतर है। इससे जिज्ञासु लोगों को बहुत कुछ सीखने को मिलता है। ऐसा दरअसल खुद ही होता है। जिस आदमी के पास कम पैसा होता है, और पैसों से मन नहीं भरा होता है, वह उसे छिपाता है, ताकि दूसरे लोग न मांग ले। पर जब आदमी के पास असीमित पैसा होता है, और पैसों से उसका मन भर चुका होता है, तब वह उसके बारे में खुलकर बताता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि उसे पता होता है कि कोई कितना भी ले ले, पर उसका पैसा खत्म नहीं होने वाला। यदि कोई उसका सारा पैसा ले भी ले, तब भी उसे फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि उसका मन तो पैसे से पहले ही भर चुका होता है। बल्कि उसे तो फायदा ही लगता है, क्योंकि जो चीज उसे चाहिए ही नहीं, उससे उसका पीछा छूट जाता है। वैसे आजकल के वैज्ञानिक व बुद्धिजीवी समाज में आध्यात्मिक सिद्धियां बताने से बढ़ती भी हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि आजकल के पढ़े-लिखे लोग एक-दूसरे की जानकारियों से प्रेरणा लेकर आगे बढ़ते हैं। मुझे तो लगता है कि यदि मैं अपने प्रथम आध्यात्मिक अनुभव की खुली चर्चा सोशल मीडिया में न करता , तो मुझे जागृति का दूसरा अनुभव न मिलता। पुराने समय के आदिम युग में अनपढ़ता व अज्ञान के कारण सम्भवतः लोग एक-दूसरे से ईर्ष्या व घृणा करते होंगे। इससे वे एक-दूसरे के ज्ञान से प्रेरणा न लेकर एक-दूसरे की टांग खींचकर आपस में एक-दूसरे को गिराते होंगे, तभी उस समय सिद्धियों को छिपाने का बोलबाला रहा होगा। कुंडलिनी के बारे में भी मुझे अधूरी सी जानकारी लगी। इस बारे अगली पोस्ट में बताऊंगा।

कुंडलिनी ही दृश्यात्मक सृष्टि, सहस्रार में एनर्जी कँटीन्यूवम ही ईश्वर, और मूलाधार में सुषुप्त कुंडलिनी ही डार्क एनर्जी के रूप में हैं

विश्व की उत्पत्ति प्राण-मनस अर्थात टाइम-स्पेस के मिश्रण से होती है

फिर हठ प्रदीपिका के पूर्वोक्त व्याख्याकार कहते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति मनस शक्ति और प्राण शक्ति के मिश्रण से हुई। यह मुझे कुछ दार्शनिक जुगाली भी लगती है। भौतिक रूप में भी शायद यही हो, पर आध्यात्मिक रूप में तो ऐसा ही होता है। जब मस्तिष्क में प्राण शक्ति पहुंचती है, तब उसमें मनस शक्ति खुद ही मिश्रित हो जाती है, जिससे हमें जगत का अनुभव होता है। "यतपिण्डे तत्ब्रह्मांडे" के अनुसार बाहर भी तो यही हो रहा है। शून्य अंतरिक्ष के अंधेरे में सोई हुई शक्ति में किसी अज्ञात कारण से हलचल होती है। उसमें खुद ही मनस शक्ति मिश्रित हो जाती है, क्योंकि चेतनामयी ईश्वरीय मनस शक्ति हर जगह विद्यमान है। इससे मूलभूत कणों का निर्माण होता है। सम्भवतः ये मूल कण ही प्रजापति हैं, जो आगे से आगे बढ़ते हुए पूरी सृष्टि का निर्माण कर देते हैं। यह ऐसे ही है, जैसे मूलाधार के अंधेरे में सोई प्राण ऊर्जा के जागने से होता है। तभी कहते हैं कि यह सृष्टि मैथुनी है। फिर मनस शक्ति को देश या स्पेस और प्राण शक्ति को काल या टाइम बताते हैं। फिर कहते हैं कि टाइम और स्पेस के आपस में मिलने से मूल कणों की उत्पत्ति हो रही है, जैसा वैज्ञानिक भी कुछ हद तक मानते हैं।

डार्क एनर्जी ही सुषुप्त ऊर्जा है

दोस्तो, खाली स्पेस भी खाली नहीं होता, पर रहस्यमयी डार्क एनर्जी से भरा होता है। पर इसे किसी भी यन्त्र से नहीं पकड़ा जा सकता। यही सबसे बड़ी एनर्जी है। हम केवल इसे अपने अंदर महसूस ही कर सकते हैं। ब्रह्मांड इसमें बुलबुलों की तरह बनते और मिटते रहते हैं। सम्भवतः यही तो ईश्वर है। यह शून्य हमें इसलिए लगता है, क्योंकि हमें अनुभव नहीं होता। इसी तरह मूलाधार में सोई हुई ऊर्जा भी डार्क एनर्जी ही है। हम इसे अपनी शून्य आत्मा के रूप में महसूस करते हैं। हम हर समय अनन्त ऊर्जा से भरे हुए हैं, पर भ्रम से उसका प्रकाश महसूस नहीं कर पाते। उसे मूलाधार में इसलिए मानते हैं, क्योंकि मूलाधार मस्तिष्क से सबसे

ज्यादा दूर है। मस्तिष्क के सहस्रार क्षेत्र में अगर चेतनता का महान प्रकाश रहता है, तो मूलाधार में अचेतनता का घुप्प अंधेरा ही माना जाएगा। मस्तिष्क से नीचे जाते समय चेतना का स्तर गिरता जाता है, जो मूलाधार पर न्यूनतम हो जाता है। यदि ऐसे समय कुंडलिनी का ध्यान करने की कोशिश की जाए, जब मस्तिष्क थका हो या तमोगुण रूपी अंधेरे से भरा हो, तो कुंडलिनी चित्र नीचे के चक्रों में बनता है। मुझे जो दस सेकंड का क्षणिक आत्मज्ञान का अनुभव हुआ था, उसमें रहस्यात्मक कुछ भी नहीं है। यह शुद्ध वैज्ञानिक ही है। संस्कृत की भाषा शैली ही ऐसी है कि उसमें सबकुछ आध्यात्मिक ही लगता है। उसे विज्ञान की भाषा मेंआप "एक्सपेरिएंस ऑफ डार्क एनेर्जी" या "अदृश्य ऊर्जा दर्शन" कह सकते हैं। इसी तरह सुषुम्ना में ऊपर चढ़ने वाली ऊर्जा भी डार्क एनेर्जी की तरह ही होती है। इसीलिए उसे केवल बहुत कम लोग ही और बहुत कम मौकों पर ही अनुभव कर पाते हैं, सब नहीं। हालाँकि यह पूरी तरह से डार्क एनेर्जी तो नहीं है , क्योंकि यह सूक्ष्म तरंगों या सूक्ष्म अणुओं की क्रियाशीलता से बनी होती है। असली डार्क एनेर्जी में तो शून्य के इलावा कुछ नहीं होता, फिर भी उसमें अनगिनत ब्रह्मांडों का प्रकाश समाया होता है। एक पुरानी पोस्ट में मैंने लिखा था कि एकबार कैसे मैंने अपनी दादी अम्मा की परलोकगत आत्मा या डार्क एनेर्जी को ड्रीम विजिटेशन में महसूस किया था। ऐसा लग रहा था कि जैसे कोई चमकीले कज्जल से भरा आसमान हो, जिसका प्रकाश किसीने बलपूर्वक ढका हो, और वह प्रकाश सभी पर्दे-दीवारें तोड़कर बाहर उमड़ना चाह रहा हो, यानि कि अभिव्यक्त होना चाह रहा हो।

यिन-यांग या प्रकृति-पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति

डार्क एनेर्जी में ही सृष्टि के प्रारंभ में सबसे छोटा और सबसे कम देर टिकने वाला कण बना होगा। इसे ही काल या टाइम या विपरीत ध्रुव की उत्पत्ति कह सकते हैं। स्पेस या डार्क एनर्जी दूसरा ध्रुव है, जो पहले से था। टाइम के रूप में निर्मित वह सूक्ष्मतम कण एक महान विस्फोट के साथ स्पेस की तरफ तेजी से आगे बढ़ने लगता है। यही सृष्टि का प्रारंभ करने वाला बिग बैंग या महा विस्फोट है। वह कण तो एक सेकंड के करोड़वें भाग में विस्फोट से नष्ट हो गया, पर उस विस्फोट से पैदा होकर आगे बढ़ने वाली लहर में विभिन्न प्रकार के कण और उनसे विभिन्न पदार्थ बनते गए। आगे चलकर उन कणों की व उनसे बनने वाले पदार्थों की जीवन अवधि में इजाफा होता गया। वैसे भी कहते हैं कि दो विपरीत ध्रुवों के बनने से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई। इन्हें यिन-यांग कह सकते हैं। यही प्रकृति-पुरुष है। शरीर में भी ऐसा ही है। मूलाधार में डार्क एनेर्जी है, जो कुंडलिनी योग से जागृत हुई। जागृत होने का मतलब है कि कुंडलिनी योग के सिद्धासन में वह मूलाधार चक्र पर पैर की एड़ी के दबाव से बनी संवेदना के रूप में अनुभव की गई। इस संवेदना में ध्यान चित्र मिश्रित होने से यह कुंडलिनी बन गई। इस संवेदना की उत्पत्ति को हम समष्टि के सबसे छोटे मूल कण की उत्पत्ति का शारीरिक रूप भी कह सकते हैं। वह कुंडलिनी एनेर्जी जागृत होने के लिए सहस्रार की तरफ जाने का प्रयास

करते हुए मस्तिष्क में रंगबिरंगी सृष्टि की रचना बढ़ाने लगी। मतलब कि दो विपरीत ध्रुव आपस में मिलने का प्रयास करने लगे। शक्ति शिव से जुड़ने के लिए बेताब होने लगी। समष्टि में वह मूल कण बिग बैंग के रूप में आगे बढ़ने लगा और उस डार्क एनेर्जी के छोर को छूने का प्रयास करने लगा, जहाँ से वह आया था। वह मूलकण नौटंकी करते हुए यह समझने लगा कि वह अधूरा है, और उसने डार्क एनेर्जी को प्राप्त करने के लिए आगे ही आगे बढ़ते जाना है। ऐसा करते हुए उससे सृष्टि की रचना खुद ही आगे बढ़ने लगी। यह ऐसे ही होता है जैसे आदमी का मन या कुंडलिनी उस अदृश्य अंतरिक्षीय ऊर्जा को प्राप्त करने की दौड़ में भरे-पूरे जगत का निर्माण कर लेता है। कुंडलिनी भी तो समग्र मन का सम्पूर्ण प्रतिनिधि ही है। मन कहो या कुंडलिनी कहो, बात एक ही है। बिग बैंग की तरंगों के साथ जो सृष्टि की लहर आगे बढ़ रही है, उसे हम सुषुम्ना नाड़ी में एनर्जी का प्रवाह भी कह सकते हैं। पर उस डार्क एनेर्जी का अंत तो उसे मिलेगा नहीं। इसका मतलब है कि यह सृष्टि अनन्त काल तक फैलती ही रहेगी। पर इसे अब हम शरीर से समझते हैं, क्योंकि लगता है कि विज्ञान इसका जवाब नहीं ढूंढ पाएगा। जब आदमी इस दुनिया में अपनी सभी जिम्मेदारियों को निभाकर अपनी कुंडलिनी को जागृत कर लेता है, तब वह दुनिया से थोड़ा उपरत सा हो जाता है। कुछ समय शांत रहकर वह दुनिया से बिल्कुल लगाव नहीं रखता। वह जैसा है, उसी में खुश रहकर अपनी दुनियादारी को आगे नहीं बढ़ाता। फिर बुढ़ापे आदि से उसका शरीर भी मृत्यु को प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है। इसी तरह जब इस सृष्टि का लक्ष्य पूरा हो जाएगा, तब उसके आगे फैलने की रफ़्तार मन्द पड़ जाएगी। फिर रुक जाएगी। अंत में सृष्टि की सभी चीजें एकसाथ अपनी-अपनी जगह पर विघटित हो जाएंगी। इसका मतलब है कि बिग बैंग रिवर्स होकर पुनः बिंदु में नहीं समाएगा। सृष्टि का लक्ष्य समय के रूप में निर्धारित होता होगा। निश्चित समय के बाद वह नष्ट हो जाती होगी, जिसे महाप्रलय कहते हैं। क्योंकि सृष्टि के पदार्थों ने आदमी की तरह असली जागृति तो प्राप्त नहीं करनी है, क्योंकि वे तो पहले से ही जागृत हैं। वे तो केवल सुषुप्ति का नाटक सा ही करते हैं। यह भी हो सकता है कि सृष्टि की आयु का निर्धारण समय से न होकर ग्रह-नक्षत्रों की संख्या और गुणवत्ता से होता हो। जब निश्चित संख्या में ग्रह आदि निर्मित हो जाएंगे, और उनमें अधिकांश मनुष्य आदि जीव अपनी इच्छाएं पूरी कर लेंगे, तभी सृष्टि की आयु पूरी होगी। ऐसा भी हो सकता है कि सृष्टि विघटित होने के लिए वापिस आए, बिग बैंग के शुरुआती बिंदु पर। क्योंकि आदमी का शरीर भी मरने से पहले बहुत कमजोर और दुबला-पतला हो लेता है। विज्ञान के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत से भी ऐसा ही लगता है। जब बिग बैंग के धमाके की ऊर्जा खत्म हो जाएगी, तो गुरुत्वाकर्षण का बल हावी हो जाएगा, जिससे सृष्टि सिकुड़ने लगेगी और सबसे छोटे मूल बिंदु में समाकर फिर से डार्क एनेर्जी में विलीन हो जाएगी। यह संभावना कुंडलिनी योग की दृष्टि से भी सबसे अधिक लगती है। मानसिक सृष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाली कुंडलिनी ऊर्जा भी सहस्रार से वापिस मुड़ती है, और फ्रंट चैनल से नीचे उतरती हुई फिर से मूलाधार में पहुंच जाती है। वहाँ से फिर बैक चैनल से

ऊपर चढ़ती है। इस तरह से हमारे शरीर में सृष्टि और प्रलय का क्रम लगातार चलता रहता है।

सांख्य दर्शन और वेदांत दर्शन में सृष्टि-प्रलय

सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति, दोनों को शाश्वत कहा गया है। पर वेदांत दर्शन में प्रकृति की उत्पत्ति पुरुष से बताई गई है, जैसा मैं भी कह रहा हूँ। यहां पुरुष मूल रूप में प्रकाशमान डार्क एनेर्जी है, और प्रकृति प्रकाश से रहित डार्क एनेर्जी है। मुझे लगता है कि सांख्य में शरीर के अंदर की सृष्टि और प्रलय का वर्णन हो रहा है। हमें अपने मन में ही डार्क एनेर्जी का अंधेरा हमेशा महसूस होता है, यहाँ तक कि कुंडलिनी जागरण के बाद भी। इसीलिए इसे भी शाश्वत कहा गया है। दूसरी ओर वेदांत में बाहर के संसार की सृष्टि और प्रलय की बात हो रही है। वहां तो प्रकृति या डार्क एनेर्जी और उससे पैदा होने वाले कणों का अस्तित्व ही नहीं है। ये तो केवल हमें अपने मन में महसूस होते हैं। वहाँ अगर इनकी उत्पत्ति होती है, तो सिर्फ नाटकीय या आभासिक ही। वहाँ तो सिर्फ प्रकाश से भरा हुआ एनेर्जी कँटीन्यूवम ही है। वैसे तो वेदांत भी मानसिक सृष्टि का ही वर्णन करता है, क्योंकि वे भी किसी भौतिक प्रयोगशाला का उपयोग नहीं करते, जो बाहर के जगत की उत्पत्ति को सिद्ध कर सके। पर वह उन महान योगियों के अनुभव को प्रमाण मानता है, जो हमेशा एनेर्जी कँटीन्यूवम से जुड़े रहते हैं।

जहाँ भी देखो वहीं दक्ष हैं

जहाँ भी देखो वहीं दक्ष हैं।

अहंकार से भरे हुए

अपने-अपने पक्ष हैं।

कोई याग-यज्ञ में डूबा

कोई दुनिया का अजूबा।

कोई बिजनेसमेन बना है

हड़प के बैठा पूरा सूबा।

एक नहीँ धंधे लक्ष हैं

जहां भी देखो वहीँ दक्ष हैं।

अहंकार से भरे हुए

अपने-अपने पक्ष हैं।

कर्म-मार्ग में रचे-पचे हैं

राग-रागिनी खूब मचे हैं।

नाम-निशान नहीं है सती का

शिव भी उस बिन नहीं जचे हैं।

अंधियारे से भरे कक्ष हैं

जहां भी देखो वहीँ दक्ष हैं।

अहंकार से भरे हुए

अपने-अपने पक्ष हैं।

ढोंग दिखावा अंतहीन है

मन की निष्ठा अति महीन है।

फल पीछे लट्टू हो रहते

फलदाता को झूठा कहते।

चमकाते बस नयन नक्श हैं

जहां भी देखो वहीँ दक्ष हैं।

अहंकार से भरे हुए

अपने-अपने पक्ष हैं।

प्रेम-घृणा का झूला झूले

दर्शन वेद पुराण का भूले।

बाहु-बली नहीं कोई भी

नभ के पार जो उसको छू ले।

शिवप्रकोप से न सरक्ष हैं

जहाँ भी देखो वहीँ दक्ष हैं।

अहंकार से भरे हुए

अपने-अपने पक्ष हैं।

~@bhishmsharma95

कुंडलिनी ऊर्जा और चक्र नदी के जल प्रवाह और पनचक्की के टरबाइन की तरह हैं

क्या हठयोग को राजयोग पर्यंत ही करना चाहिए

मैं पिछली पोस्ट में हठयोग प्रदीपिका की एक भाषा टीका पुस्तक व अपने आध्यात्मिक अनुभव के बीच के लघु अंतर के बारे में बात कर रहा था। उसमें आता है कि हठयोग की साधना राजयोग की प्राप्ति-पर्यंत ही करें। यह भी लिखा है कि यदि सिद्धासन सिद्ध हो जाए तो अन्य आसनों पर समय बर्बाद करने से कोई लाभ नहीं। पुस्तक निर्माण के समय आध्यात्मिक संस्कृति का ही बोलबाला होता था। भौतिकता की तरफ लोगों की रुचि नहीं होती थी। जीवन क्षणभंगुर होता था। क्या पता कब महामारी फैल जाए या रोग लग जाए। युद्ध आदि होते रहते थे। इसलिए लोग जल्दी से जल्दी कुंडलिनी जागरण और मोक्ष प्राप्त करना चाहते थे। हालांकि खुद हठयोग प्रदीपिका में लिखा है कि विभिन्न आसनों से विभिन्न रोगों से सुरक्षा मिलती है। पर लोगों को स्वास्थ्य की चिंता कम, पर जागृति की चिंता ज्यादा हुआ करती थी। पर आज के वैज्ञानिक युग में जीवन अवधि लंबी हो गई है, और जीवनस्तर भी सुधर गया है, इसलिए लोग जागृतिके लिए लंबी प्रतीक्षा कर सकते हैं। क्योंकि आजकल जानलेवा बीमारियों का डर लगभग न के बराबर है, इसलिए लोगों में अपने शरीर को चुस्त-दुरुस्त और स्वस्थ रखने का उत्साह पहले से कहीं ज्यादा है। इसलिए मेरा विचार है कि यदि राजयोग की उपलब्धि भी हो जाए, तो भी हठयोग करते रहना चाहिए। एक मामले में योगी स्वात्माराम ठीक भी कह रहे हैं। यदि किसी के मन में पहले से ही कुंडलिनी बनी हो, तो हठयोग के अतिरिक्त या अनावश्यक प्रयास से उसे क्यों नुकसान पहुंचने दिया जाए। मेरे साथ भी तो ऐसा ही होता था। मेरे घर के आध्यात्मिक माहौल के कारण मेरे मन में हमेशा कुंडलिनी बनी रहती थी। मुझे लगता है कि यदि मैं उसे बढ़ाने के लिए बलपूर्वक प्रयास करता, तो शायद वह नाराज हो जाती। क्योंकि कुंडलिनी बहुत नाजुक, सूक्ष्म और शर्मीली होती है। कई प्रकार की कुंडलिनी हठयोग को पसंद भी नहीं करती, जैसे कि जीवित प्रेमी-प्रेमिका या मित्र के रूप से निर्मित कुंडलिनी। हठयोग के लिए सबसे ज्यादा खुश तो गुरु या देवता के रूप से निर्मित कुंडलिनी ही रहती है। कई बार आध्यात्मिक व कर्मठ सामाजिक जीवन से ही कुंडलिनी को सबसे ज्यादा बल मिलता है। कर्मयोग से भी बहुत बल मिलता है। ऐसे में यदि हठयोग किया, तो समय की बर्बादी ही होगी। स्वास्थ्य यदि हठयोग से दुरस्त रहता है, तो संतुलित रूप के मानसिक और शारीरिक काम से भी दुरस्त रहता है। हठयोग तो ज्यादातर अति भौतिक समाज या फिर वनों-आश्रमों के लिए ज्यादा उपयोगी है। संतुलन भी बना सकते

हैं, हठयोग, राजयोग व कर्मयोग के बीच में। सब समय और परिस्थिति पर निर्भर करता है। ऐसा न हो कि कहीं मन में जमी कुंडलिनी को छोड़कर दूसरी ही कुंडलिनी को जगाने के चक्कर में पड़ जाओ, क्योंकि कुंडलिनी चित्र के क्षणिक जागरण से ज्यादा अहमियत कुंडलिनी चित्र के निरंतर मन में बने रहने की है। हो सकता है कि योगी स्वात्माराम का यह कथन प्रतिदिन के योग के लिए हो। जब प्रतिदिन की साधना के दौरान हठयोग से मन में कुंडलिनी का ध्यान अच्छी तरह से जम जाए, तब राजयोग वाली पद्धति से ध्यान करो। यह स्वाभाविक है कि दिनभर की काम की उलझन से आदमी का मन फिर से अस्थिर हो जाएगा। इससे वह अगले दिन सीधे ही राजयोग से नियंत्रित नहीं हो पाएगा। इसलिए अगले दिन उसे फिर से पहले हठयोग से वश में करना पड़ेगा। ऐसा क्रम प्रतिदिन चलेगा। ऐसा भी हो सकता है कि योगीराज ने यह उनके लिए लिखा हो, जिन्हें दुनियादारी की उलझनें न हों, और एकांत में रहते हुए योग के प्रति समर्पित हों। उनका मन जब लम्बे समय के हठयोग के अभ्यास से वश में हो जाए, तब वे उसे छोड़कर सिर्फ राजयोग करें। संसार की उलझनें न होने से उनका मन फिर से अस्थिर नहीं हो पाएगा। यदि थोड़ा बहुत अस्थिर होगा भी, तो भी राजयोग से वश में आ जाएगा।

हठयोग की शुरुआत प्राण ऊर्जा से और राजयोग की शुरुआत ध्यान चित्र से होती है

कुंडलिनी के बारे में भी विस्तार से नहीं बताया गया है। यही लिखा है कि फलाँ आसन को या फलाँ प्राणायाम को करने से कुंडलिनी जाग जाती है, या मूलाधार से ऊपर चढ़कर सहस्रार में पहुंच जाती है। इसी तरह व्याख्या में कहा गया है कि जब प्राण और अपान आपस में मणिपुर चक्र में टकराते हैं तो वहाँ एक ऊर्जा विस्फोट जैसा होता है, जिसकी ऊर्जा सुषुम्ना से चढ़ती हुई सीधी सहस्रार में जा पहुंचती है। इसका मतलब है कि प्राण ऊर्जा को ही वहाँ कुंडलिनी कहा गया है। क्योंकि यह ऊर्जा मूलाधार के कुंड में सोई हुई रहती है, इसलिए इसे कुंडलिनी कहते हैं। जब यह प्राण ऊर्जा या कुंडलिनी मस्तिष्क में जागेगी, तब इसके साथ मन का कोई चित्र भी जाग जाएगा। इसका मतलब है कि हठयोग में प्राण ऊर्जा को पहले जगाया जाता है, पर राजयोग में मन के चित्र को पहले जगाया जाता है। हठयोग में प्राण ऊर्जा के जागरण से मन का चित्र जागृत होता है, पर राजयोग में मन के चित्र के जागृत होने से प्राण ऊर्जा जागृत होती है। मतलब कि राजयोग में जागता हुआ मन का चित्र अपनी ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए मूलाधार से प्राण ऊर्जा की नदी को पीठ से होकर ऊपर खींचता है। इसका मतलब है कि एकप्रकार से कुंडलिनी और प्राण ऊर्जा पर्यायवाची की तरह ही हैं। जिसे मैं कुंडलिनी कहता हूँ, वह हठयोग के प्राण और राजयोग के ध्यान-चित्र का मिश्रित रूप ही है। वास्तव में यही परिभाषा सबसे सटीक और व्यावहारिक है, क्योंकि हठयोग और राजयोग का मिश्रित रूप ही सबसे अधिक व्यावहारिक और फलदायक है। मुझे भी इसी

मिश्रण से कुंडलिनी जागरण की अल्पकालिक अनुभूति मिली थी। यदि केवल राजयोग के ध्यान चित्र या मेडिटेशन ऑब्जेक्ट को लें, तब उसमें ऊर्जा की कमी रहने से वह क्रियाशील या जागृत नहीं हो पाएगा। इसी तरह, यदि केवल हठयोग की प्राण ऊर्जा को लिया जाए, तो उसमें चेतनता की कमी रह जाएगी। शायद इसीको मद्देनजर रखकर योगी स्वात्माराम ने कहा है कि राजयोग की उपलब्धि हो जाने पर हठयोग को छोड़ दो। उनका हठयोग को छोड़ने से अभिप्राय हठयोग को एकाँगी रूप में अलग से न कर के उसे राजयोग के साथ जोड़कर अभ्यास करने का रहा होगा। हठयोग के प्रारंभिक अभ्यास में तो मन के सर्वाधिक प्रभावी चित्र या ध्यान चित्र का ठीक ढंग से पता ही नहीं चलता। अभ्यास पूर्ण होने पर ही इसका पूरी तरह से पता चलता है। लगभग 2-3 महीनों में या अधिकतम 1 साल के अंदर यह हो जाता है। तब राजयोग शुरु हो जाता है। हालाँकि राजयोग के साथ जुड़ा रहकर हठयोग फिर भी चलता रहता है, पर इसमें राजयोग ज्यादा प्रभावी होने के कारण इसे राजयोग ही कहेंगे। मैं उस मानसिक चित्र और मूलाधार से ऊपर चढ़ने वाली ऊर्जा के मिश्रण को कुंडलिनी बता कर एक योग जिज्ञासु को शुरु में ही बता रहा हूँ कि बाद में ऐसा होगा, ताकि उसे साधना में कोई दिक्कत न आए। मानसिक चित्र तो पहले ही जागा हुआ अर्थात चेतन है। उस चित्र के सहयोग से जागती तो मूलाधार स्थित प्राण ऊर्जा ही है, जो आम अवस्था में सोई हुई या चेतनाहीन रहती है। इसलिए यह भी ठीक है कि उस ऊर्जा को कुंडलिनी कहा गया है। कुंडलिनी तो सिर्फ जागती है, पर ध्यान चित्र तो परम जागृत हो जाता है, क्योंकि वह आत्मा से एकाकार हो जाता है। मतलब ध्यान चित्र प्राण ऊर्जा से ज्यादा जागता है। इसलिए क्यों न उस ध्यान चित्र को ही कुंडलिनी कहा जाए। वैसे ध्यान चित्र और ऊर्जा का मिश्रण ही कुंडलिनी है, हालांकि उसमें ध्यान चित्र का महत्त्व ज्यादा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ध्यान चित्र राजयोग व हठयोग में समान रूप से अहमियत रखता है। ऊर्जा को अभिव्यक्ति ध्यान चित्र ही देता है। ऊर्जा को अनुभव ही नहीं किया जा सकता। ध्यान चित्र के रूप में ही तो ऊर्जा अनुभव होती है। अधिकांश लोग मानते हैं कि हठयोग केवल शारीरिक स्वास्थ्य से ही जुड़ा हुआ है, इसमें ध्यान का कोई स्थान नहीं है। मैं भी पहले कुछ-कुछ ऐसा ही समझता था। पर लोग वे 2-3 सूत्र नहीं देखते, जिसमें इसे राजयोग के प्रारम्भिक सहयोगी के रूप में दिखाया गया है, और कहा गया है कि हठयोग की परिणति राजयोग में ही होती है। ध्यान योग का काम तो उसने राजयोग के पास ही रहने दिया है। वह दूसरे की नकल करके श्रेय क्यों लेता। इसका मतलब है कि उस समय भी कॉपीराइट प्रकार का सामाजिक बोध लोगों में था, आज से भी कहीं ज्यादा। तो क्यों न हम हठयोग प्रदीपिका को पतंजलि कृत राजयोग का प्रथम भाग मान लें। सच्चाई भी यही है। योगी स्वात्माराम ऐसा ही जोर देकर करते अगर उन्हें पता होता कि आगे आने वाली पीढ़ी इस तरह से भ्रमित होगी।

ध्यान चित्र ही कुंडलिनी है

इसका प्रमाण मैं हठयोग की उस उक्ति से दूंगा, जिसके अनुसार कुंडलिनी सुषुम्ना नाड़ी में ऊपर की ओर बहती है। यदि आसनों व प्राणायामों के दौरान किसी चक्र पर ध्यान न किया जाए, तो मस्तिष्क में केवल एक थ्रिल या घरघराहट सी ही महसूस होगी, उसके साथ कोई मानसिक चित्र नहीं होगा। वह थ्रिल मस्तिष्क के दाएं, बाएं आदि किसी भी भाग में महसूस हो सकती है। पर जैसे ही उस थ्रिल के साथ आज्ञा चक्र, मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि चक्रों पर ध्यान लगाया जाता है, उसी समय सहस्रार चक्र में ध्यान किया जाने वाला मानसिक चित्र प्रकट हो जाता है। साथ में थ्रिल भी मस्तिष्क की लम्बवत केंद्रीय रेखा में आ जाती है। दरअसल आज्ञा आदि चक्रों पर ध्यान लगाने से कुंडलिनी ऊर्जा केन्द्रीभूत होकर सुषुम्ना में बहने लगती है, जिससे उसके साथ कुंडलिनी प्रकट हो जाती है। ऐसा दरअसल दाएं और बाएं मस्तिष्क के मिश्रित होने से उत्पन्न अद्वैत के सिद्धांत से होता है। थ्रिल के2 रूप में मस्तिष्क को जाती ऊर्जा तो हर हाल में लाभदायक ही है, चाहे उसके साथ कुंडलिनी हो या न हो। उससे दिमाग तरोताजा हो जाता है। पर सम्पूर्ण लाभ तो कुंडलिनी के साथ ही मिलता है।

भगवान कृष्ण के द्वारा अर्जुन को अपने विश्वरूप का दर्शन कराना दरअसल कुंडलिनी जागरण ही था

इसे सम्भवतः श्री कृष्ण ने शक्तिपात से करवाया था। इसीलिए अर्जुन श्रीकृष्ण को कहता है कि उसे वे अनन्त रूप लग रहे हैं। इसका मतलब है कि उनका प्रियतम रूप अर्जुन की आत्मा से एकाकार हो गया था, अर्थात वे अखण्ड ऊर्जा(एनर्जी कँटीन्यूवम) से जुड़ गए थे। समाधि या कुंडलिनी जागरण ऐसा ही होता है। मैं तो एक मामुली सा इंसान हूँ। मुझे तो सिर्फ दस सेकंड की ही झलक मिली थी, इसीलिए ज्यादा नहीं बोलता, पर श्रीकृष्ण की शक्ति से वह पूर्ण समाधि का अनुभव अर्जुन में काफी देर तक बना रहा।

शरीर में नीचे जाते हुए चक्रों की आवृति घटती जाती है

चक्र पर चेतना शक्ति और प्राण शक्ति का मिलन होता है। नीचे वाले चक्र कम आवृति पर घूमते हैं। ऊपर की ओर जाते हुए, चक्रों की आवृति बढ़ती जाती है। आवृति का मतलब यहाँ आगे वाले चक्र से पीछे वाले चक्र तक और वहाँ से फिर आगे वाले चक्र तक कुंडलिनी ऊर्जा के पहुंचने की रफ्तार है, अर्थात एक सेकंड में ऐसा कितनी बार होता है। विज्ञान में भी आवृति या फ्रेकवेंसी की यही परिभाषा है। यह तो मैं पिछली एक पोस्ट में बता भी रहा था कि यदि मस्तिष्क में चेतनामयी ऊर्जा की कमी है, तो अद्वैत का ध्यान करने पर कुंडलिनी चित्र नीचे के चक्रों पर बनता है, मतलब नीचे के कम ऊर्जा वाले चक्र क्रियाशील हो जाते हैं। साथ में बता रहा था कि अविकसित छोटे जीवों की कुंडलिनी नीचे के चक्रों में बसती है। इसका मतलब है

कि उनके मस्तिष्क में चेतनामयी ऊर्जा की कमी होती है। जैसे-जैसे मस्तिष्क का विकास होता है, वैसे-वैसे कुंडलिनी ऊपर की ओर चढ़ती जाती है।

चक्र नाड़ी में बहने वाले प्राण से वैसे ही घूमते हैं, जैसे नदी में बहने वाले पानी से पनचक्की के चरखे घूमते हैं

सम्भवतः चक्र इसलिए कहा जाता है, क्योंकि जैसे पानी की छोटी नदी या नाली के बीचोंबीच आटा पीसने वाली पनचक्की की पानी से घूमने वाली चरखी घूमती है, उसी तरह सुषुम्ना नाड़ी के बीच में चक्र घूमते हैं। नाड़ी शब्द नदी से ही बना है। ये चक्र भी सुषुम्ना में ऊपर चढ़ रही ऊर्जा से टरबाइन की तरह पीछे से आगे की तरफ घूमते हैं। आज्ञा चक्र से नीचे जाने वाली नाड़ी के प्रवाह से वह फिर पीछे की तरफ घूमते हैं। पीछे से फिर आगे की ओर, आगे से फिर पीछे की ओर, इस तरह से यह चक्र चलता रहता है। आपको विशुद्धि चक्र का उदाहरण देकर समझाता हूँ। गर्दन के बीचोंबीच वह चक्ररूपी टरबाइन है। समझ लो कि इसमें नाड़ी के ऊर्जा प्रवाह को अपनी घूर्णन गति में बदलने के लिए प्रोपैलर जैसे ब्लेड लगे हैं। जब इस चक्र के साथ मूलाधार का ध्यान किया जाता है, तो गर्दन के पिछले भाग के बीच में कुंडलिनी चित्र बनता है। इसका मतलब है कि वहां प्रोपैलर ब्लेड पर दबाव पड़ता है। फिर जब उसके साथ आज्ञा चक्र का ध्यान किया जाता है, तो गर्दन के अगले भाग के बीचोंबीच एक सिकुड़न के साथ वह कुंडलिनी चित्र बनता है। मतलब कि पीछे से प्रोपैलर ब्लेड घूम कर आगे पहुंच गया, जिस पर आज्ञा चक्र से नीचे जा रहे ऊर्जा प्रवाह का अगला दबाव लगता है। फिर मूलाधार का ध्यान करने से वह फिर से गर्दन के पिछले वाले भाग में पहली स्थिति पर आ जाता है। आज्ञा चक्र के ध्यान से वह फिर आगे आ जाता है। इस तरह यह चक्र चलता रहता है। आप यह मान सकते हो कि उसमें एक ही प्रोपैलर ब्लेड लगा है, जो घूमते हुए आगे पीछे जाता रहता है। यह भी मान सकते हैं कि उस टरबाइन में बहुत सारे ब्लेड हैं, जैसे कि अक्सर होते हैं। यह कुछ-कुछ दार्शनिक जुगाली भी है। विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र और मूलाधार चक्र का एकसाथ ध्यान करने से विशुद्धि चक्र तेजी से घूमने लगता है। हालांकि इसमें कुछ अभ्यास की आवश्यकता लगती है। आप समझ सकते हो कि नीचे से प्राण ऊर्जा उस चक्र को घुमाती है, और ऊपर से मनस ऊर्जा। चक्र पर दोनों प्रकार की ऊर्जाओं का अच्छा मिश्रण हो जाता है। चक्र पर जो सिकुड़न महसूस होती है, वह एकप्रकार से प्राण ऊर्जा से चक्र को लगने वाला धक्का है। चक्र पर जो कुंडलिनी चित्र महसूस होता है, वह चक्र पर मनस ऊर्जा से लगने वाला धक्का है। दरअसल आगे के चक्रों पर धक्का लगाने वाली शक्ति भी प्राण शक्ति ही है, मनस शक्ति नहीं। मनस शक्ति तो प्राण शक्ति के साथ तब मिश्रित होती है, जब वह मस्तिष्क से गुजर रही होती है। यह ऐसे ही होता है, जैसे किसी नदी के एक बगीचे के बीच से गुजरते समय उसके पानी में फूलों की सुगंध मिश्रित हो जाती है। अगले चक्रों में वह सुगन्धि या कुंडलिनी चित्र ज्यादा मजबूत होता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि आगे की नाड़ी में ऊर्जा

नीचे जाते समय अपनी ज्यादातर खुशबू गवां देती है। मूलाधार से मुड़कर जब वह पीठ से ऊपर चढ़ती है, तब उसमें बहुत कम कुंडलिनी सुगन्धि बची होती है। मस्तिष्क में पहुंचते ही उसमें फिर से कुंडलिनी सुगंधि मिश्रित हो जाती है। वह फिर आगे से नीचे उतरते हुए चक्रों के माध्यम से चारों ओर कुंडलिनी सुगन्धि फैला देती है। इस तरह से यह चक्र चलता रहता है। सम्भवतः महामृत्युंजय मंत्र का "सुगंधिम पुष्टिम वर्धनम" इसी कुंडलिनी सुगंधि को इंगित करता है। एक पिछली पोस्ट में भी इसी तरह का अपना अनुभव साझा कर रहा था कि यदि सहस्रार को ऊपर वाले त्रिभुज का शिखर मान लिया जाए, आगे के और पीछे के चक्रों को जोड़ने वाली रेखा को त्रिभुज का आधार मान लिया जाए, उससे निचली उल्टी त्रिभुज का आधार जुड़ा हो, जिसका शिखर मूलाधार चक्र हो, तो बीच वाले चक्रों पर बड़ा अच्छा ध्यान लगता है। अब मैं अपने ही उस अनुभव को वैज्ञानिक रूप से समझ पा रहा हूँ कि ऐसा आखिर क्यों होता है। दरअसल ऊपर के त्रिभुज से मनस ऊर्जा ऊपर से नीचे आती है, और नीचे के त्रिभुज से प्राण ऊर्जा ऊपर जाती है। वे दोनों आधार रेखा पर स्थित चक्रों पर आपस में टकराकर एक ऊर्जा विस्फोट सा पैदा करती हैं, जिससे चक्र तेजी से घूमता है और कुंडलिनी जीवंत जैसी हो जाती है। पिरामिड आकृति में जो ऊर्जा का घनीभूत संग्रह होता है, वह इसी त्रिभुज सिद्धांत से होता है। जो यह कहा जाता है कि शरीर के चक्र शरीर के ऊर्जा केंद्र हैं, उसका मतलब यही है कि उन पर कुंडलिनी चित्र मजबूत होता है। वह कुंडलिनी चित्र आदमी के जीवन में बहुत काम आता है। उसी से कुंडलिनी रोमांस सम्भव होता है। उसी से अनासक्ति और अद्वैत की प्राप्ति होती है, जिसे प्राप्त करके आदमी काम करते हुए थकता ही नहीं। दरअसल आदमी के विकास के लिए सिर्फ शारीरिक और मानसिक शक्ति ही पर्याप्त नहीं होती। यदि ऐसा होता तो समृद्ध घर के रचे-पचे लोग ही दुनिया में तरक्की का परचम लहराया करते। पर हम देखते हैं कि अधिकांश मामलों में बुलंदियों को छूने वाले लोग गरीबी और समस्याओं से ऊपर उठे होते हैं। दरअसल सबसे ज़्यादा जरूरी आध्यात्मिक शक्ति होती है, जो कुंडलिनी से प्राप्त होती है। इससे आदमी अहंकार रूपी उस अंधेरे से बचा रहता है, जो काम करने से पैदा होता है, और तरक्की को रोकता है। एक बार मैं डॉक्टरों और हस्पतालों के चक्कर इसलिए लगाने लग गया था, क्योंकि मैं काम से थकता ही नहीं था। आम लोग तो इसलिए हॉस्पिटल जाते हैं क्योंकि वे काम से जल्दी थक जाते हैं। पर मेरे साथ उल्टा हो रहा था। कुंडलिनी मेरे ऊपर भूत बनकर सवार थी। कुंडलिनी शायद वह भूत है, जिसका वर्णन एक कहानी में आता है कि वह कभी खाली नहीं बैठता था, और पलक झपकते ही सब काम कर लेता था। जब उसे काम नहीं मिला तो वह आदमी को ही परेशान करने लगा। फिर किसी की सलाह से उसने उसे खम्बे को लगातार गाड़ते और उखाड़ते रहने का काम दिया। मतलब आदमी लगातार किसी न किसी काम में व्यस्त रहा। वैसे तो कुंडलिनी भली शक्ति है, कभी बुरा नहीं करती, होली घोस्ट की तरह। शायद होली घोस्ट नाम इसीसे पड़ा हो। फिर भी कुंडलिनी को हैंडल करना आना चाहिए। मुझे तो लगता है कि आजकल जो अंधी भौतिक तरक्की हो रही है, उसके लिए अनियंत्रित व मिसगाइडिड कुंडलिनी ही है।

अद्वैत का चिंतन कब करना चाहिए

किसी चक्र पर ध्यान देते हुए यदि अद्वैत की अवचेतन भावना भी की जाए, तो आनन्द व संकुचन के साथ कुंडलिनी उस चक्र पर प्रकट हो जाती है। यदि मस्तिष्क के विचारों या मस्तिष्क के प्रति ध्यान देते समय अद्वैत का ध्यान किया जाए, तो मस्तिष्क में दबाव व आनन्द के साथ कुंडलिनी प्रकट हो जाती है। इससे मस्तिष्क जल्दी ही थक जाता है।

योग में आसनों व प्राणायाम का क्रम

फिर कहते हैं कि पहले आसन करने चाहिए। उसके बाद प्राणायाम करना चाहिए। अंत में कुंडलिनी ध्यान करना चाहिए। प्राणायाम में भी सबसे पहले कपालभाति किया जाता है। मैं भी अपने अनुभव से बिल्कुल इसी क्रम में करता हूँ। आसनों से थोड़ा नाड़ियां खुल जाती हैं। इसलिए प्राणायाम से उनमें आसानी से कुंडलिनी ऊर्जा का प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। कपालभाति से भी नाड़ियों को खोलने के लिए भरपूर ताकत मिलती है, क्योंकि इसमें झटके से श्वास-प्रश्वास चलता है। लगभग 25-30 आसान हैं हठयोग प्रदीपिका में। कुछ मेरे द्वारा किए जाने वाले आसनों से मेल खाते हैं, कुछ नहीं। इससे फर्क नहीं पड़ता। ऐसे आसनों का मिश्रण होना चाहिए, जिससे लगभग पूरे शरीर का व्यायाम हो जाता हो। विशेष ध्यान पीठ और उसमें चलने वाली तीन मुख्य नाड़ियों पर होना चाहिए। मैं भी अपने हिसाब के 15-20 प्रकार के आसन कर ही लेता हूँ। मैं कुर्सी पर ही प्राणायाम करता हूँ। सिद्धासन आदि में ज्यादा देर बैठने से घुटने थक जाते हैं। कुर्सी में आर्म रेस्ट न हो तो अच्छा है, क्योंकि वे ढंग से नहीं बैठने देते। कुर्सी पर गद्दी भी रख सकते हैं। कुर्सी उचित ऊंचाई की होनी चाहिए।

नाड़ीशोधन प्राणायाम मूल प्राणायाम के बीच में खुद ही होता रहता है

प्राणायाम में कपालभाति के बाद कुछ देर बाएं नाक से सांस भरना और दाएं नाक से छोड़ना और फिर साँसों की घुटन दूर करने के लिए नाड़ी शोधन प्राणायाम करना मतलब हर सांस के साथ नथुने को बदलते रहना जैसे कि बाएं नाक से सांस लेना और दाएं से छोड़ना, फिर दाएं से लेना और बाएं से छोड़ना, और इसी तरह कुछ देर के लिए करना जब तक थकान दूर नहीँ हो जाती। फिर कुछ देर विपरीत क्रम में साँसे लेना, और विपरीत क्रम में नाड़ी शोधन प्राणायाम करना मतलब दाएं नथुने से शुरु करना। फिर दोनों नाकों से एकसाथ सांसें लेना और छोड़ना। फिर से साँसों की घुटन दूर करने के लिए कुछ देर एक तरफ से और कुछ देर दूसरी तरफ से नाड़ी शोधन प्राणायाम शुरु करना। इसी तरह, कुंडलिनी ध्यान करते समय जब साँसों को रोका जाता है, उससे साँस फूलने पर भी नाड़ी शोधन प्राणायाम करते रहना चाहिए।

इस तरह से नाड़ी शोधन प्राणायाम खुद ही होता रहता है। अलग से उसके लिए समय देने की जरूरत नहीं।

कुंडलिनी विभिन्न देवताओं, शिव ब्रह्मरूप अखंड ऊर्जा, सहस्रार चक्र वटवृक्ष और मस्तिष्क कैलाश पर्वत के रूप में दर्शाए गए हैं

दोस्तो, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि 'चक्र' नाम कैसे पड़ा है। दरअसल चक्र का शाब्दिक अर्थ भी पहिया ही होता है। उदाहरण के लिए रथचक्र, जलचक्र आदि। यह भी बताया कि चक्र को ऊर्जा का केंद्र क्यों कहा गया है। चक्र के बारे में ऐसा तो हर जगह लिखा होता है, पर यह साबित नहीं किया होता है कि ऐसा क्यों कहा गया है। इससे रहस्यात्मकता की बू आती है। मैंने इसे वैज्ञानिक व अनुभवात्मक रूप से सिद्ध किया कि ऐसा क्यों कहा जाता है। इसीलिए इस वेबसाइट का नाम "कुंडलिनी रहस्योद्घाटन" है। यह भी मनोवैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया कि प्राण ऊर्जा और मनस ऊर्जा के मिश्रण से कुंडलिनी कैसे बनती है। दरअसल प्राण ऊर्जा और मनस ऊर्जा के इसी मिश्रित रूप को ही कुंडलिनी कहते हैं। यह कुंडलिनी की सबसे छोटी परिभाषा है। इसे ही टाईम-स्पेस मिश्रण भी कहते हैं। प्राण ऊर्जा टाईम का प्रतिनिधित्व करती है, और मनस ऊर्जा स्पेस का प्रतिनिधित्व करती है। इस पोस्ट में मैं बताऊंगा कि सहस्रार चक्र को शिव के निवास स्थान या कैलाश के वटवृक्ष के रूप में कैसे निरूपित किया गया है।

दक्षयज्ञ से नाराज शिव को मनाने के लिए देवताओं द्वारा कैलाश गमन

भगवान विष्णु दक्ष से नाराज शिव को मनाने के लिए देवताओं सहित कैलाश पर्वत पर गए। वह कैलाश पर्वत मनुष्यों के इलावा किन्नरों, अप्सराओं और योगसिद्ध महात्माओं से सेवित था। वह बहुत ऊंचा था। वह चारों ओर से मणिमय शिखरों से सुशोभित था। वह अनेक प्रकार की धातुओं से विचित्र जान पड़ता था। वह अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से भरा था। वह अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों व झरनों से परिव्याप्त था। उसके शिखर पर सिद्धांगनाएँ अपने-अपने पतियों के साथ विहार करती थीं। वह अनेक प्रकार की कन्दराओं, शिखरों तथा अनेक प्रकार के वृक्षों की जातियों से सुशोभित था। उसकी कांति चांदी के समान श्वेतवर्ण की थी। वह पर्वत बड़े-बड़े व्याघ्र आदि जंतुओं से युक्त, भयानकता से रहित, सम्पूर्ण शोभा से सम्पन्न, दिव्य तथा अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था। वह पर्वत पवित्र गंगा नदी से घिरा हुआ और अत्यंत निर्मल था। उस कैलाश पर्वत के निकट शिव के मित्र कुबेर की अलका नाम की

दिव्य नगरी थी। उसी पर्वत के पास ही सौगंधिक नामक दिव्य वन था, जो दिव्य वृक्षों से शोभित था, और जहाँ पक्षियों आदि की अद्भुत ध्वनि हो रही थी। उस पर्वत के बाहर से नन्दा और अलकनन्दा नामक दिव्य व पावन सरिताएं बह रही थीं, जो दर्शन मात्र से ही पापों का नाश करती हैं। देव स्त्रियां प्रतिदिन अपने लोक से आकर उन नदियों का जल पीतीं हैं, और स्नान करके रति से आकृष्ट होकर पुरुषों के साथ विहार करती हैं। फिर उस अलकापुरी और सौगंधिक वन को पीछे छोड़कर, आगे की ओर जाते हुए उन देवताओं ने समीप में ही शंकर जी के वट वृक्ष को देखा। वह वटवृक्ष उस पर्वत के चारों ओर छाया फैलाए हुए था। उसकी शाखाएं तीन ओर फैली हुई थीं। उसका घेरा सौ योजन ऊंचा था। वह घौंसलों से रहित और ताप से वर्जित था। उसका दर्शन केवल पुण्यात्माओं को ही होता है। वह अत्यंत रमणीय, परम पावन, शिवजी का योग स्थल, दिव्य, योगियों के द्वारा सेवन या निवास योग्य, तथा अति उत्तम था। महायोगमयी व मुमुक्षु लोगों को शरण देने वाले उस वटवृक्ष के नीचे बैठे शिवजी को देवताओं ने देखा। शिवभक्ति में लीन, शांत तन-मन वाले, व महासिद्ध जो ब्रह्मा के पुत्र सनक आदि हैं, वे प्रसन्नता के साथ उन शिव की उपासना कर रहे थे। उनके मित्र कुबेर, जो गुह्यकों व राक्षसों के पति हैं, वे अपने परिवार व सेवकों के साथ उनकी विशेष रूप से सेवा कर रहे थे। वे परमेश्वर शिव तपस्वियों के मनपसंद सत्यरूप को धारण किए हुए थे। वे वात्सल्य भाव से विश्वभर के मित्र लग रहे थे, और भस्म आदि से सुसज्जित थे। वे कुशासन पर बैठे हुए थे, और नारद आदि के पूछने पर सभी श्रोता सज्जनों को ज्ञान का उपदेश दे रहे थे। वे अपना बायाँ चरण अपनी दाईं जांघ पर, और बायाँ हाथ बाएँ घुटने पर रखी कलाई में रुद्राक्ष की माला डाले हुए सत्य-सुंदर तर्क मुद्रा में विराजमान थे। वे सर्वोच्च ज्ञान की बात बताते हैं कि मोक्ष की प्राप्ति कर्म से नहीं , अपितु ज्ञान से होती है। इसलिए अद्वैत ज्ञान के साथ कर्म करना चाहिए, मतलब कि कर्मयोग करना चाहिए। जो लोग उनमें, ब्रह्मा और विष्णु में भेद करते हैं, वे नरक को जाते हैं। मतलब कि भगवान शिव भेददृष्टि को नकारते हैं।

कैलाश पर्वत व मस्तिष्क की परस्पर समकक्षता

कैलाश पर्वत मस्तिष्क है। वहाँ पर आम लोग-बाग, अप्सराएं और नाच-गाना करने वाले कलाकार तो भोगविलास करते ही हैं, ऋषि-मुनि भी वहीं पर ध्यान का आनंद प्राप्त करते हैं। यह मानव शरीर में सबसे ऊंचाई पर स्थित है। मणिमय शिखरों का मतलब इसकी अखरोट के जैसी आकृति से बने अनेकों रिज या उभार हैं, जो मन के चमकीले विचारों व संकल्पों से चमकते रहते हैं। अनेक प्रकार की धातुओं का मतलब इसके किस्म-किस्म की संरचनाओं व रँगों वाले भाग हैं, जैसे कि खोपड़ी की हड्डी, उसके नीचे व्हाईट मैटर, उसके नीचे ग्रे मैटर, तरलता-पूर्ण नरम आंखें, कान, नाक, दांत आदि। मस्तिष्क का अंदरूनी भाग भी किस्म-किस्म के आकारों व रंगों में बंटा है, जैसे कि पॉन्स, हिप्पोकैम्पस, पिनियल ग्लैंड आदि। अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं का मतलब विभिन्न प्रकार के बाल हैं, जैसे कि सिर के बाल, दाढ़ी के बाल,

मूँछ के बाल, कान के बाल, नाक के बाल आदि। यहाँ तक कि मस्तिष्क के अंदर भी रेशेदार माँस होता है, जिसे नर्व फाइबर कहते हैं। इससे लगता है कि प्राचीन ऋषि-मुनि मानव शरीर की एनाटोमी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। इसका विशद वर्णन आयुर्वेद में है। अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों का मतलब बालों में पाए जाने वाले सूक्ष्म परजीवी ही हैं। अनेक प्रकार के झरनों का मतलब आँखों, कानों व मुंह आदि की ग्रन्थियों से निकलने वाला जैविक स्राव ही है। इसके शिखरों पर सिद्धांगनाओं के विहार करने का मतलब तंत्र योगिनियों के द्वारा तांत्रिक रोमांस करना ही है, जिससे वे महान आनन्द प्राप्त करती हैं। आनन्द का स्थान तो मस्तिष्क ही है। अनेक प्रकार की कन्दराएँ मस्तिष्क के आसपास अनेक प्रकार के छिद्र हैं, जैसे कि आँख, नाक, कान आदि। शिखरों व वृक्षों के बारे में तो ऊपर बता ही दिया है। उस पर्वत के चांदी की तरह होने का मतलब मस्तिष्क के चेतना से भरे चमकीले विचार ही हैं। व्याघ्र जैसे जंतुओं का मतलब जू, पिस्सू की तरह सूक्ष्म मांसाहारी परजीवी ही हैं, जो बालों की नमी में छिपे रह सकते हैं। 'भयानकता से रहित' मतलब उन जंतुओं से भय नहीं लगता था। दिव्यता तो मस्तिष्क में है ही। सभी दिव्य भाव मस्तिष्क की क्रियाशीलता के साथ ही हैं। कुंडलिनी जागरण सबसे दिव्य है, इसीलिए उसमें मस्तिष्क की क्रियाशीलता चरम पर होती है। इसी तरह मस्तिष्क आश्चर्य का नमूना भी है। इसमें जीवन या चेतना की उत्पत्ति होती है। वैज्ञानिक आज तक इस पहेली को नहीं सुलझा सके हैं। गँगा नदी यहाँ सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीक है। क्योंकि वह सहस्रार को सिंचित करती है, जिससे पूरा मस्तिष्क जुड़ा हुआ है, इसीलिए इसे पूरे पर्वत को घेरने वाली कहा है। यह पूरे मस्तिष्क को ऊर्जा से निर्मल कर देती है। शिव के मित्र कुबेर की नगरी अलकापुरी आज्ञा चक्र को कहा गया है। "अलका" शब्द संस्कृत के अलक्षित व हिंदी के अलख शब्दों से बना है। इस चक्र से अदृश्य कुंडलिनी के दर्शन होते हैं। इसीलिए इसे तीसरी आंख भी कहते हैं। दरअसल जब आज्ञाचक्र पर ध्यान लगाया जाता है, तो सहस्रार पर कुंडलिनी प्रकट हो जाती है। क्योंकि शिवपुराण में शिव ही कुंडलिनी के रूप में हैं, इसीलिए आज्ञाचक्र के अभिमानी देवता कुबेर को शिव का मित्र बताया गया है। अगर यहाँ अखण्ड ऊर्जा को ही शिव माना गया है, तब भी कुबेर शिव के मित्र सिद्ध होते हैं, क्योंकि कुंडलिनी से ही अखण्ड ऊर्जा प्राप्त होती है।आज्ञाचक्र बुद्धि का प्रतीक है। इसलिए स्वाभाविक है कि आज्ञाचक्र धनसंपदा से जुड़ा है, क्योंकि बुद्धि से ही संपदा अर्जित होती है। इसीलिए इसके देवता कुबेर सृष्टि में सबसे धनी हैं। उस पर्वत के पास ही सौगंधिक नामक वन है। क्योंकि इसका वर्णन अलकापुरी के एकदम बाद हो रहा है, इसका मतलब है कि वह वन उसके निकट ही है। वह तो नाक ही है। उसके अंदर ही सुगंधिका अनुभव होता है, इसलिए माना गया है कि सुगंधि की उत्पत्ति उसीमें हो रही है। क्योंकि सुगंधि वृक्षों और पुष्पों से ही उत्पन्न होती है, इसलिए नाक को वन का रूप दिया गया है। उस वन को दिव्य इसलिए कहा है, क्योंकि वह आकार में इतना छोटा होकर भी दुनिया भर की सभी दिव्य सुगंधियों को उपलब्ध कराता है। साधारण वन तो ऐसा नहीं कर सकता। उसमें स्थित रोमों को ही दिव्य वृक्ष माना जा सकता है। इन्हें दिव्य इसलिए कहा जा रहा है, क्योंकि आकार में

इतना छोटा और कम संख्या में होने पर भी वे दुनिया भर की दिव्य सुगंधियों को उपलब्ध कराने में मदद करते हैं। वे गंध-ग्राही कोशिकाओं को सुरक्षा देते हैं। हो सकता है कि पौराणिक युग में नासिका-रोम को ही सुगन्धि के लिए एकमात्र जिम्मेदार माना जाता हो। उस वन में पक्षियों आदि की अद्भुत ध्वनि हो रही थी। वह ध्वनि दरअसल श्वास-प्रश्वास की धीमी आवाज ही है। इसे मीठी आवाज तो नहीं कही जा सकती। इसीलिए इसे अद्भुत कहा है। उस पर्वत के बाहर नन्दा और अलकनन्दा नामक दो नदियां इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ ही हैं। मस्तिष्क के साथ रीढ़ की हड्डी जुड़ी होती है। रीढ़ की हड्डी को यदि नीचे के पर्वत कहेंगे, तो मस्तिष्क शीर्ष के पर्वत शिखर से बना है। उसमें सुषुम्ना बहती है। उसे गंगा कहा गया है। इड़ा नाड़ी रीढ़ की हड्डी के बाहर बाईं ओर बहती है। इसके माध्यम से आदमी दुनियादारी का भौतिक, सीमित, तार्किक या लॉजिकल व जजमेंटल या नुक्ताचीनी वाला आनन्द लेता है। इसीलिए इसका नाम नन्दा है। दूसरी नाड़ी जो पिंगला है, वह मेरुदंड रूपी पर्वत के दाईं ओर बहती है। इसके माध्यम से आदमी आध्यात्मिक जैसा, शून्य या स्पेस या आकाश जैसा, अंधेरे जैसा, तर्कहीन या इलॉजिकल जैसा, असीमित जैसा, ननजजमेंटल जैसा आनन्द लेता है। इसका नाम अलकनन्दा है। जैसा ऊपर बताया, अलक शब्द अलख या अलक्षित का सूचक है। क्योंकि आकाश अनन्त होने से अलक्षित ही है, इसीलिए इसका नाम अलकनन्दा है, मतलब अलक्षित का आनन्द। दोनों नदियों के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं। अकेली नदी की बात नहीं हो रही, बल्कि दोनों नदियों की एकसाथ बात हो रही है। इसका मतलब है कि बाएं और दाएं मस्तिष्क के एकसाथ क्रियाशील होने से अद्वैत उत्पन्न होता है, जो निष्पापता रूप ही है। द्वैत ही सबसे बड़ा पाप है, और अद्वैत ही सबसे बड़ी निष्पापता। देव-स्त्रियों से मतलब यहाँ अच्छे व संस्कारवान घर की कुलीन स्त्रियां हैं। क्योंकि वे संपन्न होती हैं, इसलिए वे दुनियादारी के झमेले में ज्यादा नहीं फँसती। इससे वे अद्वैत के आनन्द में डूबी रहती हैं। इसी अद्वैत के आनन्द को उनके द्वारा दोनों नदियों के जल को पीने के रूप में दर्शाया गया है। वे सुंदर व सुडौल शरीर वाली होती हैं। नहाते समय कुंडलिनी ऊर्जा पीठ से ऊपर चढ़ती है, जैसा मैंने एक पिछली पोस्ट में बताया था। ऐसा ही उन देव स्त्रियों के साथ भी होता है। मूलाधार की ऊर्जा ऊपर चढ़ने से उनका मूलाधार ऊर्जाहीन सा हो जाता है। मूलाधार को ऊर्जा देने के लिए ही वे रति की ओर आकर्षित होती हैं, और पुरुषों के साथ विहार करती हैं। एक अन्य रूपक के अनुसार, देवस्त्रियाँ सुंदर व मानवीय विचारों की प्रतीक हैं। ऐसे विचार अद्वैत भाव के साथ होते हैं, मतलब इनके साथ इड़ा और पिंगला, दोनों नाड़ियाँ बहती हैं। जब ये दोनों नाड़ियाँ बहुत तेजी से बहती हैं, तभी दिव्य कामभाव जागृत होता है। ऐसा मूलाधार को ऊर्जा देने के लिए ही होता है, क्योंकि अद्वैत से मूलाधार की ऊर्जा ऊपर चढ़ती रहती है। अद्वैत भाव से मस्तिष्क में अभौतिक कुंडलिनी चित्र का विकास होने लगता है। उसके लिए बहुत ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि इंद्रियों की पहुंच से बाहर होने के कारण, आम मानसिक चित्रों की तरह इसको मजबूत करने के लिए शारीरिक इंद्रियों का सहयोग नहीं मिलता। इसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए मूलाधार से ऊर्जा ऊपर चढ़ती है। उस स्थिति में की गई रति क्रीड़ा बहुत

आनन्ददायक व आत्मा का विकास करने वाली होती है, मतलब कि इससे ऊर्जा सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर सहस्रार में पहुंच जाती है। इस अतिरिक्त ऊर्जा से कुंडलिनी के साथ मस्तिष्क का भी अच्छा विकास होता है। इसीलिए कहते हैं कि मानव जाति के त्वरित विकास के लिए कुंडलिनी बहुत जरूरी है। उपरोक्त कुण्डलिनीपरक रतिक्रिया को तांत्रिक रतिक्रीड़ा भी कह सकते हैं। जब आदमी दुनियादारी से दूर हो, और ऊर्जा की कम खपत के कारण उसकी ऊर्जा की संचित मात्रा पर्याप्त हो, और वह पहले से ही सुषुम्ना में बह रही हो, वह तो साधु वाली स्थिति होती है। उसमें रतिक्रीड़ा के प्रति ज्यादा मन नहीं करता। देवलोक से वे स्त्रियां आती हैं, मतलब मस्तिष्क से वे मानवीय विचार बाहर आते हैं, और अद्वैत भाव के साथ दुनियादारी के काम निभाने लगते हैं। इसे ही देवस्त्रियों द्वारा नन्दा और अलकनन्दा नदियों में स्नान करना कहा गया है। देवता व देवियाँ वैसे भी अद्वैत भाव के प्रतीक होते हैं। साधारण लोगों में यह ऊर्जा का ऊर्ध्वगामी प्रभाव कम होता है। इसलिए उनकी कामुक भावना क्षणिक सुखदायी ही होती है, जिसे कामवासना कहते हैं। उनमें द्वैत भाव होने के कारण उनके मन में कुंडलिनी नहीं होती। इसलिए ऊर्जा की अतिरिक्त आवश्यकता न होने से मूलाधार की ऊर्जा ऊपर नहीँ चढ़ती। इसीलिए इसमें मूलाधार की ऊर्जा का रक्षण नहीं बल्कि क्षरण होता है। मस्तिष्क में ही दिव्यता होती है। सौगंधिक वन और अलकापुरी को लाँघ कर आगे बढ़ने पर वे सभी देवता एक वटवृक्ष के पास पहुंचते हैं, जिसकी शाखाएं पूरे पर्वत पर फैल कर छाया पहुंचाए हुए थीं। दरअसल कुंडलिनी को ही उन सभी देवताओं के रूप में दर्शाया गया है। मन में पूरी सृष्टि बसी हुई है। इसका मतलब है कि मन में सभी देवता बसे हुए हैं, क्योंकि देवता ही सृष्टि को चलाते हैं, और पूरी सृष्टि के रूप में भी हैं। एकमात्र कुंडलिनी चित्र या ध्यान चित्र के अंदर पूरा मन ऐसे ही समाया हुआ होता है, जैसे एक चीनी के दाने में चीनी की पूरी बोरी या गन्ने का पूरा खेत समाया होता है। किसी को अगर चीनी के दर्शन कराने हो, तो हम पूरी बोरी चीनी न उठाकर एक दाना चीनी का ले जाते हैं। इससे काम काफी आसान हो जाता है। जितनी ऊर्जा से चीनी की बोरी को एक फुट ऊंचा उठाया जा सकता है, उतनी ही ऊर्जा से एक चीनी के दाने को हजारों फुट ऊंचा उठाया जा सकता है। जो काम चीनी की बोरी से होगा, वही काम चीनी के एक दाने से भी हो जाएगा। इसी तरह यदि शिव से मिलाने के लिए सहस्रार तक मन को ले जाना हो, तो हम मन की पूरी दुनिया को न ले जाकर केवल कुंडलिनी को ले जाते हैं। इससे शिव-मन या शिव-जीव के मिलाप का काम बेहद आसान हो जाता है। जितनी ऊर्जा से पूरे मन को मूलाधार से स्वाधिष्ठान चक्र तक भी ऊंचा नहीं उठाया जा सकता है, उतनी ही ऊर्जा से कुंडलिनी को सहस्रार तक ऊंचा उठाया जा सकता है। जो काम असंख्य चित्रों के ढेर को समेटे मन से होगा, वही काम उस ढेर में से छांटे गए एकमात्र कुंडलिनी चित्र से भी हो जाएगा। कुंडलिनी के स्थान पर बहुत सारे देवता इसलिए दिखाए गए हैं, ताकि इससे इस मनोवैज्ञानिक आख्यान को रोचकता व रहस्यात्मकता मिल सके। वटवृक्ष ही सहस्रार है, क्योंकि सहस्रार पूरे मस्तिष्क से नाड़ियों के माध्यम से जुड़ा है। उन नाड़ियों को सहस्रार चक्र रूपी वृक्ष की शाखाएं कह सकते हैं। उसकी शाखाएँ तीन ओर फैली हुई थीं, इसका मतलब है कि

सहस्रार से बाएं मस्तिष्क, दाएँ मस्तिष्क और आगे व फिर नीचे फ्रंट चैनल, तीन दिशाओं में ऊर्जा प्रसारित होती है। पीछे व वहाँ के नीचे स्थित बैक चैनल से तो उसे ऊर्जा मिल रही है। यह चौथी दिशा में है, जिसे हम उस वृक्ष का तना या जड़ कह सकते हैं। ऊर्जा हमेशा जड़ से शाखाओं की तरफ ही बहती है। उसका ऊपरी विस्तार 100 योजन ऊँचा बताया गया है, जो लगभग एक हजार मील की दूरी है। यह बहुत ऊँचाई है, जो बाहरी अंतरिक्ष तक फैली है। दरअसल इसका मतलब है कि सहस्रार चक्र उस अखंड ऊर्जा से जुड़ा हुआ है, जो अनन्त आकाश में फैली हुई है। सहस्रार का शाब्दिक अर्थ भी एक हजार शाखाओं वाला है, सम्भवतः इसीलिए यह संख्या ली गई हो। वह घोंसलों से वर्जित है, मतलब वहाँ कोई सामान्य जीव नहीं पहुंच सकता। वह ताप से वर्जित है, मतलब अत्यंत शांत सहस्रार चक्र है। जिस द्वैत से ताप पैदा होता है, वह वहाँ था ही नहीं। वह अत्यंत रमणीय था। इसका मतलब है कि सभी स्थानों की रमणीयता सहस्रार के कारण ही होती है। रमणीय स्थानों पर ऊर्जा सहस्रार में घनीभूत हो जाती है, इसीलिए वे स्थान रमणीय लगते हैं। तभी तो आपने देखा होगा कि रमणीय स्थान पर घूमने के बाद शरीर में थकावट होने से कुछ समय काम करने को ज्यादा मन नहीं करता। यह इसलिए होता है क्योंकि शरीर की अधिकांश ऊर्जा सहस्रार को चली गई होती है। रमणीय स्थान पर घूमने के बाद आदमी तरोताजा व निर्मल सा हो जाता है। ऐसा लगता है कि पापों का पुराना बोझ हट गया है।इसीलिए दुनियादारी में पर्यटन का इतना ज्यादा क्रेज होता है। विभिन्न तीर्थ स्थल भी इसी रमणीयता के आध्यात्मिक गुण का फायदा उठाते हैं। ऐसा सब सहस्रार चक्र के कारण ही होता है। इसीलिए इसे परम पावन कहा है। उस वृक्ष का दर्शन केवल पुण्यात्माओं को ही होता है। इसमें कोई आश्चर्य वाली बात नहीं। अनुभव से भी यह साफ विदित होता है कि हिंसा आदि कर्मों से कुंडलिनी चेतना नीचे गिरती है, और मानवता रूपी पुण्य कर्मों से ऊपर चढ़ती है। वह दिव्य था। सारी दिव्यता सहस्रार चक्र में ही तो होती है। दिव्य शब्द दिवा या प्रकाश से बना है। प्रकाश का मूल सहस्रार और उससे जुड़ी अखंड ऊर्जा ही है। वह योगमयी था तथा योगियों व शिव का प्रिय निवास स्थान था। शिव भी तो योगी ही हैं। ब्रह्म या एनेर्जी कँटीन्यूवम से जुड़ाव या योग सहस्रार में ही सम्भव होता है। जाहिर है कि मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु लोग वहीं जाएंगे, क्योंकि सहस्रार में ही सीमित चेतना से छुटकारा सम्भव है। उस वृक्ष के मूल में शिव बैठे थे। ब्रह्म या अखंड ऊर्जा या एनर्जी कँटीन्यूवम को भी यहाँ शिव ही कहा है। वे तपस्वियों को प्रिय लगने वाले वेष में थे। मतलब कि वे अद्वैत रूप अखण्ड ऊर्जा के रूप में थे, जो तपस्वियों को अच्छी लगती है। द्वैत में डूबे साधारण लोग कहाँ उसे पसंद करने लगे। ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार आदि ऋषि जो हमेशा ब्रह्मध्यान में लीन रहते हैं, उन्हें शिव की उपासना करते हुए इसलिए बताया गया है, क्योंकि शिव सृष्टि के सबसे बड़े तन्त्रयोगी भी हैं। आज्ञा चक्र व मूलाधार पर ध्यान केंद्रित करने से मस्तिष्क की ऊर्जा केन्द्रीभूत होकर सहस्रार में आ जाती है। इसे ही कुबेर द्वारा अपने गुह्यक सेवकों और परिवारजनों के साथ शिव की सेवा करना बताया गया है। गुह्यक यहाँ मूलाधार का प्रतीक हैं, क्योंकि मूलाधार और आज्ञाचक्र आपस में जुड़े होते हैं। गुह्यक भी

मूलाधार की तरह ही डार्क तमोगुणी जैसे होते हैं। कुबेर के परिवारजन मस्तिष्क में चारों ओर बिखरी हुई मानसिक ऊर्जा के प्रतीक हैं। परिवारजन परिवार के मुखिया के ही वश में होते हैं। वात्सल्य भाव तो शिव में होगा ही। अनन्त चेतना के स्वामी शिव को हमारे जैसे सीमित चेतना वाले प्राणी बच्चे ही लगेंगे। वे भस्म लगाए हुए थे। भस्म वैराग्य, सार और निष्ठा का प्रतीक है। सारे विश्व का निचोड़ भस्म में निहित है। अखण्ड ऊर्जा में रमण करने वाले शिव को जगत नामक सीमित ऊर्जा कहाँ रास आएगी। अनेक लोग शिव से ही तंत्रयोग की प्रेरणा लेते हैं और कुंडलिनी जागरण प्राप्त करते हैं। इसे ही शिव के द्वारा ज्ञानोपदेश के रूप में दर्शाया गया है।

कुंडलिनी प्राण ऊर्जा का क्रीड़ा विलास ही है

दोस्तो, मैंने पिछले हफ्ते तीन फिल्में देखीं। उससे मेरा मस्तिष्क काफी क्रियाशील रहा। सम्भवतः इसीसे कई बार हल्का सा सिरदर्द भी रहा। हालाँकि मन में भरपूर शांति बनी रही, और भरपूर आनंद भी बना रहा। यह कुंडलिनी योग से बने हुए अद्वैत भाव से ही हुआ। फ़िर भी मैंने योग को कुछ कम किया, क्योंकि थोड़ी थकान व सुस्ती लग रही थी। इससे सिरदर्द भी थोड़ा कम हुआ और शरीर का कम्पन भी कम हुआ। वैसे ज्यादा अच्छा तब रहता है जब आसनों की संख्या कम न की जाए, पर उन पर लगने वाले समय को कम किया जाए। योग को काम की तरह नहीं लेना चाहिए। इसे थकान नहीं समझना चाहिए। इसे भरपूर आराम की तरह लेना चाहिए। शरीर व मन को ढीला छोड़ देना चाहिए। वास्तव में योग थकान को कम करता है, थकान को बढ़ाता नहीं। हरेक आसन एक विशेष प्रकार से प्राण ऊर्जा को ऊपर चढ़ाता है, और घुमाता है। वैसे भी कम नींद लेने से, रात को देर तक ज्यादा जागने से, खान-पान के समय में परिवर्तन से, पंखे या ऐसी की ज्यादा हवा लेने से तनाव व सिरदर्द पैदा हो जाता है। मेरे बाएं मस्तिष्क में क्रियाशीलता ज्यादा रही, जिसके लिए इड़ा नाड़ी से ऊर्जा ऊपर चढ़ रही थी। हालाँकि उसके साथ साथ आज्ञा चक्र और मूलाधार का ध्यान करने से ऊर्जा सुषुम्ना में स्थानांतरित हो जाती थी, जिससे दायाँ मस्तिष्क भी क्रियाशील हो जाता था, और सहस्रार में कुंडलिनी चित्र प्रकट हो जाता था। थोड़ी देर बाद वह ऊर्जा फिर से इड़ा नाड़ी में प्रविष्ट हो जाती थी। उसे फिर से इसी तरह सुषुम्ना में ले जाना पड़ता था। यह क्रम बार-2 चलता था। दरअसल दुनियादारी से बायाँ मस्तिष्क और अध्यात्म से दायाँ मस्तिष्क क्रियाशील होता है। दोनों मस्तिष्कों के संतुलन के लिए भौतिकता और आध्यात्मिकता का संतुलन जरूरी है। मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कैसे देवलोक की स्त्रियां नंदा और अलकनन्दा का जल बारी-2 से पीकर रति क्रीड़ा की तरफ आकर्षित होती हैं और महान तृप्ति का अनुभव करती हैं। दरअसल वे दुनियादारी में डूबी हुई होती हैं। इसलिए उनमें ज्यादा एनेर्जी नहीं बची होती। वे सीधे तौर पर गंगा नदी तक नहीं पहुंच सकती हैं। इसलिए वे नन्दा और अलकनन्दा नदियों से ही काम चलाती हैं। मेरे साथ भी लगभग ऐसा ही हुआ। काम के ज्यादा बोझ के कारण मेरे अंदर इतनी एनेर्जी नहीं बची थी कि मैं कुंडलिनी को सीधे ही सहस्रार तक उठा पाता। ऐसा जबरदस्ती करने से मेरे सिर में हल्का दर्द हो रहा था। इसलिए मैंने कुंडलिनी ऊर्जा को उसकी अपनी मर्जी से पीठ से ऊपर चढ़ने दिया। फिर मैंने देखा कि वह इड़ा नाड़ी से होकर बाएँ मस्तिष्क को एक थ्रिल संवेदना के साथ जाने लगी, और लगातार जाती रही। मैं बस बीच में हल्का ध्यान फ्रंट आज्ञा चक्र और दांत के पीछे टिकाई हुई सीधी जीभ पर देता था। उनके साथ मूलाधार पर तो बहुत ही कम बार ध्यान दे पाता था, क्योंकि इससे ऊर्जा सीधे ही सहस्रार व सुषुम्ना में जाती है। उससे वह पिंगला या सुषुम्ना नाड़ी में जाने की कोशिश तो

करती, पर जा नहीं पा रही थी। मतलब कि ऊर्जा की कमी थी। बड़ी देर बाद वह थोड़ी देर के लिए ही पिंगला और दाएँ मस्तिष्क में जाती थी, और फिर से इड़ा में आ जाती थी। कुंडलिनी ज्यादातर समय आज्ञा चक्र पर रहती, और उससे ऊपर न जाती। सुषुम्ना और सहस्रार में सिर्फ क्षण भर के लिए ठहरती थी। बात साफ है कि जितनी अपने अंदर ऊर्जा हो, उसीके हिसाब से कुंडलिनी को घुमाना चाहिए। जोर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए।

ऊर्ध्वरेता पुरुष को ब्रह्मचारी माना जाए या तांत्रिक

मुझे इस सप्ताह शिवपुराण में एक नई जानकारी भी मिली। एक श्लोक में ऊर्ध्वरेता शब्द लिखा मिला। ऊर्ध्वरेता मनुष्य को महान ज्ञानी या आत्मज्ञानी या महान आध्यात्मिक साधक के समकक्ष रखा गया था। ऊर्ध्व का मतलब 'ऊपर की ओर' है, और रेता का मतलब 'वीर्य' है। इसलिए ऊर्ध्वरेता का मतलब हुआ कि वह व्यक्ति जो अपने वीर्य को ऊपर की ओर चढ़ाता है। यह तो वही सेक्सुअल सबलीमेशन है, जो तंत्रयोग की आधारभूत क्रिया है। तंत्र के नाम पर आजकल इसका ही बोलबाला है, हालाँकि यह वृहद परिपेक्ष्य वाले तंत्र का एक सर्वप्रमुख सहयोगी कारक ही है। अपने आप में यही सबकुछ नहीं है। इसका हिंदी में अनुवाद करते हुए इसे ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी लिखा गया है। जो ब्रह्मचारी है, वह ऊर्ध्वरेता कैसे बन पाएगा, क्योंकि ब्रह्मचारी में तो रेता का उत्पादन ही नहीं होता। रेता का उत्पादन तो सैक्सुअल स्टिमुलेशन से होता है, पर ब्रह्मचारी तो इससे सर्वथा दूर रहता है। यदि उसमें सामान्य शारीरिक क्रियाओं के तहत रेता का उत्पादन होता भी है, तो वह बहुत कम व अन-नोटिसड रहता है। जिस चीज को आदमी शरीर में नोटिस भी नहीं कर सकता, उसे वह ऊपर कैसे चढ़ाएगा। इससे एक और बात पता चलती है कि पुराणों में हर जगह तंत्र का उल्लेख है, और पौराणिक काल में तँत्रविज्ञान आम जनमानस में व्याप्त था। ब्रह्मचर्य भी तो एक तँत्रविज्ञान ही है। यदि ब्रह्मचारी योगसाधना की सहायता से वीर्य ऊर्जा को ऊपर न चढ़ाता रहे, तो वह उसे परेशान करेगी, और उसके मन व शरीर में विकार भी पैदा कर सकती है। यह अलग बात है कि वामपंथी तंत्र में इस ब्रह्मचर्य को अमर्यादित व प्रचण्ड रूप दिया जाता है। इससे हालाँकि आध्यात्मिक विकास बहुत तीव्रता से होता है, पर यदि यह सही ढंग से न किया जाए तो यह आध्यात्मिक पतन भी तीव्र गति से ही करता है। आजकल अधिकांशतः केवल इसी सैक्सुअल तंत्र को ही तंत्र माना जाता है।

महान लोगों के दोष भी आभूषणों की तरह शुभ होते हैं

इस दुनिया में कुछ भी सत्य नहीं है। सब कुछ एकदूसरे के सापेक्ष है। जो दोष आम लोगों में कुलक्षण कहे गए हैं, वही दोष भगवान शिव में सुलक्षण हैं। इसीलिए शिवपुराण में नारद मुनि पार्वती के माता-पिता को समझाते हुए कहते हैं कि ज्ञानियों और महान लोगों के दोष भी गुणों की तरह ही होते हैं। दरअसल नारद मुनि उन्हें बताते हैं कि उनकी पुत्री पार्वती का

विवाह एक भूतिया, नंगे, जंगली और असामाजिक व्यक्ति से होगा। इससे वे चिंतित हो जाते हैं। फिर नारद उनकी चिंता को दूर करते हुए कहते हैं कि शिव भी ऐसे ही हैं, इसलिए पार्वती का विवाह शिव से करवाओ। पार्वती उनके मन की चंचलता को मिटा देगी। यह तंत्रयोग का ही तो वर्णन हो रहा है। फिर अधिकांश लोग कहते हैं कि तंत्र यहाँ से आया, वहाँ से आया; या तंत्र ऐसा है, तंत्र वैसा है। शिवपुराण एक पूर्ण समर्पित तंत्र-पुराण ही है। इसकी तंत्रविद्या आसानी से इसलिए पकड़ में नहीं आती, क्योंकि उसे उच्च कोटि की सामाजिकता व रूपकता के साथ लिखा गया है।

मान-अपमान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं

पिछले हफ्ते ही एक दुखद समाचार मिला कि अखाड़ा संघ के अध्यक्ष महंत नरेंद्र गिरी ने फंदे से झूलकर अपने प्राणों का अंत कर दिया। सूत्रों के अनुसार उन्होंने अपने आखिरी लिखित व वीडियो दस्तावेज में अपने इस काम के लिए अपने शिष्य आनन्द गिरि को जिम्मेदार ठहराया। आनन्द गिरि को उन्होंने बचपन से लेकर पालपोस कर बड़ा किया था, और उनका उसके प्रति विशेष लगाव होता था। सूत्रों के अनुसार वह उन्हें पहले भी समाज में अपमानित करवा चुका था, और अब भी झूठी विडियो वायरल करने जा रहा था, जिसमें उसके गुरु नरेंद्र गिरि किसी स्त्री के साथ आपत्तिजनक अवस्था में दिखाए जाते। इसी अपमान के डर से उन्होंने यह कदम उठाया। वैसे अभी भी इसकी जाँच चल रही है, और अंतिम निष्कर्ष सामने नहीं आया है। गीता में एक श्लोक आता है~जितात्मनः प्रशान्तस्यपरमात्मा समाहितः। शीतोष्णसुखदुःखेषुतथा मानापमानयोः॥६-७॥सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख और मान-अपमान में जिसने स्वयं को जीता हुआ है, ऐसा पुरुष परमात्मा में सम्यक् प्रकार से स्थित है॥7॥फिर अपमान से भयभीत होने को हम किस प्रकार का अध्यात्म कहेंगे। मैं यहाँ किसी का पक्ष नहीं ले रहा हूँ। मैं केवल घटना के एक पक्ष के बारे में वर्णन कर रहा हूँ, क्योंकि उसीसे सम्बंधित विचार मेरे मन में उठ रहे हैं। हरेक घटना के अनेक पक्ष होते हैं। पर हरेक पक्ष के बारे में विचार रखना एक अकेले आदमी के लिए संभव नहीं है। किसीका यह कहना कि इस घटना का केवल एक ही पक्ष क्यों लिया गया, बेमानी है। दूसरे पक्ष जानने के लिए दूसरे लोगों के विचार जानने चाहिए। एक जगह सभी कुछ नहीं मिल सकता। वैसे भी सम्पूर्ण जानकारी सभी पक्षों को जानकर ही मिलती है। लिटल नॉलेज इज ए डेंजरस थिंग। अगर दूसरे पक्ष की बात संक्षेप में कहूँ तो वह यही है कि गुरु, ज्ञानी और भक्त का कभी अपमान नहीं करना चाहिए। कुंडलिनी आदमी को बेहद संवेदनशील बना देती है। इसलिए कुंडलिनी योगी को परेशान नहीं करना चाहिए। उनसे प्रेम से ही बर्ताव करना चाहिए। सम्भवतः महिलाएं इसी कुंडलिनी सिद्धांत के कारण ज्यादा संवेदनशील होती हैं। मैं अगली पोस्ट में थोड़ा विस्तार से बताऊंगा कि ऐसा क्यों होता है। पहली बात, अपने प्रति सम्मान पर इतना लट्टू क्यों हुआ जाए कि उसके बाद अपमान झेल ही न सकें। अगर किसीके द्वारा लट्टू हुए बिना न रहा जाए, तो अपना सम्मान करवाया ही

क्यों जाए। कुंडलिनी ही ऐसी परिस्थितियों में आदमी की सहायता व रक्षा करती है। कुंडलिनी के अतिरिक्त सृष्टि की हरेक वस्तु में स्वार्थ भरा है। कोई भी आदमी बिना स्वार्थ के मित्रता नहीं दिखाता। वृक्ष भी स्वार्थ के लिए ही फल देता है। गाय से दूध लेने के लिए उसे भी घास खिलाना पड़ता है। यहाँ तक कि नदी व पहाड़ आदि निर्जीव वस्तु से लाभ प्राप्त करने के बदले में उन्हें साफ-सुथरा रखना पड़ता है। पर कुंडलिनी तो बदले में किसी चीज की अपेक्षा नहीं रखती। वह बुरे समय में भी साथ देती है, और सांत्वना व सहानुभूति प्रदान करती है। कुंडलिनी अखण्ड ऊर्जा का एक बुलबुला है। उसका अखण्ड ऊर्जा से अलग अस्तित्व नहीं है। आसमान की तरह शून्य होने से उसे भला किस चीज की जरूरत हो सकती है। जो उसे जितना अधिक याद करता है, उसे उसका उतना ही ज्यादा साथ मिलता है। कुंडलिनी के अतिरिक्त हरेक वस्तु अस्थायी और अपवित्र है। कुंडलिनी के अतिरिक्त हरेक वस्तु भौतिक बाध्यताओं व सीमाओं से बंधी होती हैं। कुंडलिनी एक शुद्ध मानसिक चित्र है, शून्य ऊर्जा-आकाश का एक बुलबुला है। उसे भौतिक आयाम छू भी नहीं सकता। इसलिए अच्छी तरह से पालपोस कर रखी गई कुंडलिनी बुरे वक्त में बहुत काम आती है। जब भौतिक कार्यों व सम्बन्धों से तनाव बढ़ जाता है, तब पूरे शरीर की कार्यप्रणाली गड़बड़ा जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मस्तिष्क में ऊर्जा की कमी हो जाती है। उस समय अद्वैत की भावना करने से मन में कुंडलिनी प्रकट होने लगती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अद्वैत से शरीर थोड़ा रिलेक्स हो जाता है, जिससे ऊर्जा की खपत घट जाती है। अतिरिक्त ऊर्जा से मन में कुंडलिनी प्रकट होने लगती है। उस कुंडलिनी को बनाए रखने के लिए मूलाधार से ऊर्जा ऊपर चढ़ने लगती है। उससे एकदम से शारीरिक कार्यप्रणाली दुरस्त हो जाती है, और उससे मन के क्रोध आदि दोष मिट जाते हैं। दरअसल ऐसा मस्तिष्क में ऊर्जा की भरपूर उपलब्धता पैदा होने से ही होता है। मैंने पिछली पोस्ट में भी शिवपुराण का हवाला देकर लिखा था कि सहस्रार चक्र पूरे मस्तिष्क को ऊर्जा की आपूर्ति करता है। इसलिए जब मस्तिष्क में कुंडलिनी प्रकट हो जाए तो उसके साथ आज्ञा चक्र और मूलाधार चक्र का एकसाथ ध्यान करके उसे सेंट्रलाइज करने को कहा जाता है, ताकि वह सहस्रार में आ जाए। सहस्रार चक्र में इसीलिए एक हजार पंखुड़ियों को दर्शाया जाता है क्योंकि वह मस्तिष्क सहित पूरे शरीर में अनगिनत या हजारों स्थानों में ऊर्जा की आपूर्ति करता है।

श्वास पर ध्यान से लाभ कुंडलिनी के माध्यम से ही मिलता है

एक दिन मैं थका हुआ महसूस कर रहा था। मैं सो भी नहीं पा रहा था, क्योंकि दिन में खाना खा लेने के बाद सोने से मुझे गैस्ट्रिक एसिड रिफलक्स होता है। पेट से मुंह को खटास जैसी आती है, जिससे दांत भी घिसते हैं। खाली बैठ कर साँसों पर ध्यान देने लगा, खासकर हँस शब्द के साथ। इससे थकान भी दूर हो गई और कुंडलिनी आनन्द भी प्रकट हो गया। साँस भरते समय साँस की आवाज पतले संगीत वाली थी, और बाहर जाती साँस की आवाज मोटे

संगीत की थी। आप कह सकते हैं कि अंदर जाती साँस की आवाज की ट्रेबल या फ्रेकवेंसी ज्यादा थी, पर बाहर जाती साँस का ट्रेबल कम और बास ज्यादा था। म की आवाज ज्यादा ट्रेबल की और स की आवाज कम ट्रेबल की है। इसीलिए हँस के रूप में साँस पर ध्यान दिया जाता है। इसलिए हँ का ध्यान अंदर जाती साँस के साथ, व स का ध्यान बाहर जाती साँस के साथ किया जाता है। इससे बहुत लाभ मिलता है।

वैदिक दर्शन एक व्यावहारिक दर्शन है

व्यवहारिक दर्शन इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि यह शून्यवादी दर्शन नहीं है। वैदिक कर्मकांड इसका जीता जागता उदाहरण है। इसमें योग और ध्यान को दुनियादारी से प्राप्त किया जाता है, पलायनवाद से नहीं। मैं खुद इसी माहौल में पला-बढ़ा हूँ। यह अलग बात है कि जागरण रूपी अंतिम छलांग के लिए मैंने कुछ समय के लिए तंत्रयोग का सहारा भी लिया। पर यह भी सत्य है कि तंत्रयोग भी तभी सहायता करता है, यदि वैदिक कर्मकांड के प्रेमभरे माहौल में आदमी ने प्रारम्भिक आध्यात्मिक मुकाम हासिल कर लिया हो।

आध्यात्मिक रूप से हरेक पुरुष शिव और हरेक स्त्री पार्वती है

सती तपस्या करके शिव को प्राप्त करती है। अगले जन्म में जब वह पार्वती बनती है, तब भी तपस्या से ही शिव को प्रसन्न करके उन्हें प्राप्त करती है। मुझे तो यह तँत्रसम्मत गृहस्थ जीवन का रूपक ही लगता है। पार्वती की तपस्या यहाँ पर गृहस्थ जीवन की शुरुआत में एक पत्नी का, त्याग और समर्पण से भरपूर जीवन ही है। इसीलिए देखने में आता है कि गृहस्थी की शुरूआती खटपट के बाद ही असली गृहस्थ जीवन शुरु होता है। किसीकी गृहस्थी कुछ महीनों में ही पटरी पर आ जाती है, किसी को कुछ साल लग जाते हैं। कईयों के बीच तो तब असली ट्यूनिंग बनती है, जब उनके बच्चे भी बड़े हो जाते हैं। यह पति-पत्नी, दोनों की उचित भागीदारी पर निर्भर करता है कि कितना समय लगेगा। कई स्त्री पर आसक्त रहने वाले पति पत्नी से बिल्कुल भी तप नहीं करवाते और न ही खुद करते हैं। वे हालाँकि शुरु में ही फुल्ली ट्यूनड लगते हैं, पर यह दिखावा ज्यादा होता है। इस जल्दबाजी में वे एकदूसरे को ढंग से व गहराई से नहीं जान पाते। इससे कुछ न कुछ तांत्रिक कमी तो बाद तक रह ही जाती है। शादी से पहले तो चाहता ही है कि उसकी होने वाली पत्नी गुणों में देवी पार्वती से कम न हो, पर शादी के बाद भी पुरुष चाहता है कि उसकी पत्नी उसकी तन-मन-धन से सेवा करती रही, उससे भरपूर प्रेम करे और पूरी तरह उसके प्रति समर्पित रहे। मतलब कि पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसके लिए पहले घोर तप करे, तभी वह अपने आपको उसके हवाले करेगा। भगवान शिव भी तो सती से या पार्वती से यही चाहते हैं। इसीलिए पार्वती निरन्तर शिव का स्मरण करते हुए घोर तप करती है। उसीके बाद शिव उसे स्वीकार करते हैं। थोड़ा तप तो

शिव भी करते हैं। वे लगातार पार्वती की याद में इधर-उधर भटकते रहते हैं। यही उनका तप है। दरअसल यह मानव जीवन का मनोविज्ञान ही है, जिसे पुराणों में देवी-देवताओं की कथाओं द्वारा समझाया गया है।

युद्ध की देवी काली

युद्ध आदि के समय और अन्य विकट परिस्थितियों में भगवती माता या काली की पूजा करने का विधान है। दरअसल ऊर्जा का स्रोत स्त्री ही है। युद्ध आदि के समय बहुत अधिक प्राण ऊर्जा की आवश्यकता होती है, आम समय की अपेक्षा दुगुने से भी ज्यादा। शरीर को चलायमान रखने के लिए अलग से ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, और मन को स्थिर रखने के लिए अलग से। अगर मुक्ति की आकांक्षा हो, तब तो और भी ज्यादा ऊर्जा चाहिए, क्योंकि उसके लिए साथ में नाड़ियों और अन्य चक्रों के साथ सहस्रार को भी जागृत रखना पड़ता है। काली को वीभत्स रूप इसलिए दिया गया है क्योंकि उससे प्राप्त ऊर्जा का इस्तेमाल युद्धादि में उपजे रक्तपात के लिए भी होता है। दूसरा मतलब यह भी है कि शक्ति खून की प्यासी भी हो सकती है।

कुंडलिनी के लिए किए गए प्रयास के प्रति भी अहंकार के नष्ट होने से ही कुंडलिनी जागरण होता है

मनरूपी आँख को ही तीसरी आँख कहते हैं

जब हमें नींद आ रही हो लेटे-लेटे और उस समय हम खड़े हो जाएं तो एकदम नींद भाग जाती है। दरअसल खड़े होने से व तनिक हिलने-डुलने से पीठ से ऊर्जा ऊपर चढ़ती है। मैं पिछली पोस्ट में कुंडलिनी से पैदा हुई अति संवेदनशीलता के कारण अजीबोगरीब घटनाओं की संभावनाओं के बारे में बात कर रहा था।जब कुंडलिनी मस्तिष्क में क्रियाशील या जागृत होती है, तब मस्तिष्क की संवेदनशीलता बहुत बढ़ जाती है। इंद्रियों के सारे अनुभव तीव्र महसूस होते हैं। उदाहरण के लिए, खाने में स्वाद कई गुना बढ़ जाता है। सुगन्धि भी कई गुना मजबूत महसूस होती है। वास्तव में जिस प्राण ऊर्जा से इन्द्रियातीत कुंडलिनी उजागर हो सकती है, उससे अन्य इन्द्रियातीत अनुभव भी प्रकट हो सकते हैं, जैसे कि उड़ने का अनुभव, पानी पर चलने का अनुभव। इन्हें ही योगसिद्धियाँ कहते हैं। दरअसल ये अनुभव शरीर से नहीं, केवल मन से होते हैं। यह ऐसे ही होता है, जैसे कुंडलिनी के दर्शन आँखों से नहीं, बल्कि मन से होते हैं। इसी जागृत मन को ही तीसरी आँख का खुलना कहा गया है। क्योंकि मन से ही सारा संसार है, इसीलिए प्राचीन योग पुस्तकों में ऐसे मानसिक अनुभवों को शारीरिक अनुभवों की तरह लिखा गया है, ताकि आम आदमी को समझने में आसानी हो। पर अधिकांश लोग इन्हें शारीरिक या असल के भौतिक अनुभव समझने लगते हैं। समर्पित कुंडलिनी योगी अधिकांशतः कुंडलिनी से ही जीवन का महान आनन्द प्राप्त करता रहता है। वह जीवन के आनंद के लिए भौतिक वस्तुओं के अधीन नहीं रहता। इसलिए स्वाभाविक है कि यदि किन्हीं सांसारिक क्लेशों से उसकी कुंडलिनी क्षतिग्रस्त या कमजोर हो जाए, तो वह अवसाद रूपी अंधेरे से घिर जाएगा। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि उसे आनन्द प्राप्ति का दुनियादारी वाला तरीका एकदम से समझ नहीं आएगा, और न ही रास आएगा। इसीलिए कहते हैं कि मध्यमार्ग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है, क्योंकि इसमें अध्यात्म और दुनियादारी साथ-साथ चलते हैं, ताकि किसी की भी कमी से हानि न उठानी पड़े।

सीडेंटरी लाइफस्टाइल भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों का दुश्मन है

योग करते समय अद्वैत चिंतन ज्यादा सफल होता है, क्योंकि अद्वैत का सदप्रभाव कुंडलिनी के माध्यम से ही प्राप्त होता है। योग करते समय सभी नाड़ियाँ मुख्यतः सुषुम्ना नाड़ी और चक्र खुले हुए रहते हैं। इससे अद्वैत से उजागर होती हुई कुंडलिनी आसानी से उपयुक्त चक्र पर काबिज हो जाती है। यदि मानसिक ऊर्जा का स्तर कम हो, तो कुंडलिनी नीचे के चक्रों पर काबिज होती है, और अगर मानसिक ऊर्जा अधिक हो, तो कुंडलिनी ऊपर के चक्रों की तरफ भागती है। इसी तरह अन्य किसी भी प्रकार की शारीरिक क्रियाशीलता के समय अद्वैत का ध्यान करने से भी इसी वजह से ज्यादा कुंडलिनी लाभ मिलता है। सुस्ती और शिथिलता के मौकों पर नाड़ियाँ और चक्र सोए जैसे रहते हैं, जिससे उनमें कुंडलिनी आसानी से संचरण नहीं कर सकती। इसी वजह से आदमी के बीमार पड़ने का डर भी बना रहता है। इसी वजह से सीडेंटरी लाइफस्टाइल वाले लोग न तो भौतिक रूप से और न ही आध्यात्मिक रूप से समृद्ध होते हैं।

सद्प्रयास कभी विफल नहीं होता

जितने भी विश्वप्रसिद्ध, कलाकार व समृद्ध व्यक्ति हैं, उनसे मुझे अपना गहरा रिश्ता महसूस होता है। वे मुझे अपने बचपन के दोस्तों व परिजनों के जैसे महसूस होते हैं। हो सकता है कि मैं पिछले जन्म में सम्भवतः उन्हीं की तरह भौतिक तरक्की के चरम तक पहुंच गया था। फिर मुझे कुंडलिनी जागरण की इच्छा महसूस हुई होगी और मैंने उसके लिए प्रयत्न भी किया होगा, पर मुझे सफलता न मिली होगी। उसीके प्रभाव से मुझे इस जन्म में पिछले जन्म के सम्पन्न, जगत्प्रसिद्ध व आध्यात्मिक व्यक्तित्वों के बीच में जन्म मिला होगा। क्षणिक कुंडलिनी जागरण की अनुभूति भी उसी के प्रभाव से मिली होगी। मेरे संपर्क के दायरे में आने वाले व्यक्ति भी पिछले जन्म के महान लोग रहे होंगे, और उन्हें कुंडलिनी का भी कुछ न कुछ साथ जरूर मिला होगा। उसी कुंडलिनी प्रभाव से वे मेरे संपर्क के दायरे में आए होंगे। इसका मतलब है कि सद्प्रयास कभी विफल नहीं जाता। वैसे भी स्वाभाविक रूप से कुंडलिनी जागरण की इच्छा भौतिकता का चरम छू लेने पर ही होती है। मनोवैज्ञानिक रूप से ऐसा भी हो सकता है कि कुंडलिनी जागरण की शक्ति से ही मुझे शक्तिशाली व्यक्तियों व वस्तुओं से अपनापन लगता हो, क्योंकि सभी शक्तियों का खजाना कुंडलिनी जागरण ही तो है।

प्रयास के बिना या अपने आप कुछ भी प्राप्त नहीं होता

रहस्यमय दृष्टिकोण ने मनुष्य को लापरवाह बना दिया है। इससे वह चमत्कार होने की प्रतीक्षा करता है। यह ब्लॉग इस रहस्यवाद को तोड़ रहा है। कुंडलिनी जागरण सहित सब कुछ वैज्ञानिक है और इसके लिए भी भौतिक चीजों की तरह लंबे समय तक एक निरंतर तार्किक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। इस ब्लॉग व वेबसाइट में किताबों सहित मेरी तथाकथित

स्वतःस्फूर्त जागृति की घटना के बारे में पढ़ने के लिए सब कुछ है। मुख्य रूप से, किताब लव स्टोरी ऑफ ए योगी, फिर कुंडलिनी विज्ञान~ एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान, भाग १ और २। इसके अलावा, इस ब्लॉग का अनुसरण करने से हर हफ्ते ताज़ा सामग्री भी मिलेगी। मेरे बारे में कई लोग सोचते हैं कि मुझे अपनेआप या बिना किसी प्रयास के उच्च आध्यात्मिक अनुभव हुए। काफी हद तक बात भी सही है, क्योंकि मैंने इनके लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किए। मुझे अनुकूल परिस्थितियां मिलती गईं, और सब कुछ खुद से होता रहा। पर मेरे पूर्वजों की जो मेहनत इसमें छुपी हुई है, वह किसी को नहीं दिखाई देती। कम से कम मेरी तीन पीढ़ियों से मेरे परिवार में आध्यात्मिकता और उच्च कोटि के आदर्शवाद का बोलबाला था। इस वजह से समाज में दूर-दूर तक मेरे परिवार का नाम और मान-सम्मान होता था। मेरी दो पीढ़ियों से मेरा परिवार ब्राह्मण पुरोहिताई का काम करता आ रहा है। इस काम में वैदिक कर्मकांड किया जाता है। वैदिक कर्मकांड दरअसल कुंडलिनी योग का प्रथम अध्याय ही है, क्योंकि यह आदमी का कुंडलिनी से परिचय करवाता है, और उसे आसान व दुनियादारी वाले तरीक़े से मन में मजबूती प्रदान करता है। ऐसे आध्यात्मिक परिवार की संगति से ही मेरे मन में कुंडलिनी ने अनायास ही अपना पक्का डेरा जमाया। इसका मतलब है कि मेरे परिवार की सैकड़ों सालों की मेहनत का फल मेरे अंदर प्रकट हुआ। मुझे अपनेआप कुछ नहीं मिला। अपनेआप कुछ नहीं मिलता। यदि हम आध्यात्मिकता के रास्ते पर चलते रहेंगे, तो हमारे बच्चों, पौत्रों, प्रपौत्रों आदि को उसका फल मिलेगा। उन्हें अपनेआप कुछ नहीं मिलेगा। इसका मतलब है कि कुंडलिनी के लिए किया गया प्रयास कभी विफल नहीं होता। यदि प्रयास करने वाले को एकदम से फल मिलता न दिखे, तो समाज व दुनिया को अवश्य मिलता है। कालांतर में प्रयास करने वाले को भी फल मिल ही जाता है।

जागरण के लिए ध्यान या योग करने का अहंकार भी त्याग देना चाहिए

कुंडलिनी जागरण एक दुर्लभ घटना है। इसके लिए शायद ही कभी जोरदार प्रयास की आवश्यकता होती है। हां, जबरदस्त प्रयासों से मानसिक और शारीरिक रूप से इसके लिए तैयार हुआ जा सकता है। बलपूर्वक प्रयास मनुष्य में उपलब्ध प्राण ऊर्जा के स्तर पर होना चाहिए अन्यथा अत्यधिक बलपूर्वक प्रयास शरीर और मन को नुकसान पहुंचा सकता है। मैंने ऐसी ही संतुलित कोशिश की थी। मैं 15 वर्षों तक दुनिया के साथ बहता रहा, हालांकि मेरे अपने स्वयं के अनूठे दर्शन के माध्यम से मेरा हमेशा अद्वैतवादी रवैया बना रहता था। फिर मैंने प्राण शक्ति की अधिकता होने पर एक वर्ष तक बलपूर्वक हठयोग और फिर अगले एक मास तक तांत्रिक योग किया। फिर मैंने अपना यह अहंकार भी त्याग दिया, और मैं फिर से संसार के साथ बहने लगा। योग यथावत चलता रहा। योग आदि करने के इस अहंकार के त्यागने से ही मुझे अंततः कुण्डलिनी जागरण की सहजता से एक झलक मिली। फिर भी कोई

बड़ा तीर नहीं चला लिया, क्योंकि जागृति से कहीं ज्यादा महत्त्व तो जागृत जीवनचर्या का ही है। संक्षेप में कहूँ तो केवल झलक इसलिए, क्योंकि मेरा उद्देश्य कोई ज्ञानप्राप्ति नहीं था, बल्कि मैं कुंडलिनी जागरण को वैज्ञानिक रूप में अनुभव करना चाहता था, और लोगों को बताकर उन्हें गुमराही से बचाना चाहता था। आखिर इच्छा पूरी हो ही जाती है। इसका मतलब है कि जागरण के लिए ध्यान या योग या अन्य पुण्य कर्म करने का अहंकार भी त्याग देना चाहिए। यह शास्त्रों में एक प्रसिद्ध उपदेशात्मक वाक्य द्वारा बताया गया है कि सतोगुण से आध्यात्मिकता बढ़ती है और उस सतोगुण के प्रति भी अहंकार को नष्ट करने से ही जागृति प्राप्त होती है। सतोगुण का मतलब है, योगसाधना के प्रभाव से मन व शरीर में प्रकाशमान दैवीय गुणों का प्रकट होना। इससे पहले मैं भी इस उपदेश के रहस्य को नहीं समझता था, परन्तु अब ही मुझे इसका मतलब स्पष्ट, व्यावहारिक व अनुभवात्मक रूप से समझ आया है। मुझे जागृति काल के दौरान न तो यह और न ही वह भावना या इमोशन, किसी विशेष रूप में अनुभव हुई। कोई विशेष संवेदना भी महसूस नहीं हुई, जैसे कि लोग अजीबोगरीब दावे करते रहते हैं। यह सब सिर्फ शक्ति का खेल ही तो है। जानबूझकर जागृति के लिए, लोग अक्सर अहंकार से भरे विभिन्न रास्ते अपनाते हैं, और इसी वजह से इसे कभी हासिल नहीं कर पाते हैं। कुछ अन्य लोग शांत रहते हैं, और सामान्य दुनियावी नदी के बीच बहते रहते हैं, हालांकि अपने अहंकार को मिटा कर रखते हैं। वे इसे विशेष व जानबूझकर किए जाने वाले प्रयास के बिना भी प्राप्त कर लेते हैं। कई दोनों के संतुलन वाला मध्यमार्ग अपनाते हैं, जिससे सबसे जल्दी सफलता मिलती है। मेरे साथ भी सम्भवतः यही मध्यमार्ग चरितार्थ हुआ लगता है।

जय माता दुर्गे जय माता तारा हम पापी मानुष को तेरा सहारा~भक्तिगीत कविता

जय माता दुर्गे
जय माता तारा।
हम पापी मानुष को
तेरा सहारा।।
जय माँ भवानी
तेरा जयकारा।
भव-सा-गर का
तू ही किनारा।।
जय माता दुर्गे------
हिंगलाज नानी।
जय हो जयकारा
तेरे लिए मेरा
जीवन पहारा।।
जय माता---
भटकूँ अवारा
बेघर बिचारा।
तेरे सिवा नहीं
अब कोई चारा।।
जय माता---
जग देख सारा
भटका मैं हारा।
भूलूँ कभी न
तेरा नजारा।।
जय माता---
हे अम्बे रानी
जय जय जयकारा
पागल सुत तेरा
नकली खटारा।।
जय माता----
तू ही जगमाता

तू ही विधाता।
तू जो नहीं हमें
कुछ भी न आता।।
हम थरमामीटर
तू उसमें पारा।
तू क्षीरसागर
हम पानी खारा।।
जय माता---
किसमत का मारा
जग में नकारा
तू जो मिले जग
पाए करारा।।
हे माता---
जो है हमारा
सब है तुम्हारा।
दूँ क्या मैं तुझको
जो हो हमारा।।
जय माता दुर्गे
जय माता तारा।
हम पापी मानुष को
तेरा सहारा।।
साभार~भीष्म@bhishmsharma95

कुंडलिनी शक्ति और शिव के मिलन से ही कार्तिकेय नामक ज्ञान पैदा हुआ, जिसने तारकासुर नामक अज्ञानान्धकार का संहार किया

सभी मित्रों को दशहरे की हार्दिक बधाई

मित्रो, शिव पुराण के अनुसार, भगवान शिव सती के विरह में व्याकुल होकर पर्वतराज हिमाचल (हिमालय का भाग) के उस शिखर पर तप करने बैठ गए, जहाँ गँगा नदी का अवतरण होता है। गंगा के कारण वह स्थान बहुत पवित्र होता है। वे अपने मन को सती से हटाकर योगसाधना से परमात्मा में लगाने लगे। जब पर्वतराज हिमाचल को अपने यहाँ उनके आने का पता चला तो वे अपने परिवार और गणों के साथ शिव से मिलने चले गए, और उनकी सेवा में उपस्थित हो गए। शिव ने उनसे कहा कि वे वहाँ एकांत में तपस्या करना चाहते हैं, इसलिए कोई उनसे मिलने न आए। पर्वतराज ने अपने राज्य में यह ऐलान कर दिया कि जो भी शिव से मिलने का प्रयास करेगा, उसे कठोर राजदण्ड दिया जाएगा। परंतु पार्वती उनकी सेवा करना चाहती थी, इसलिए वह अपने पिता हिमालय से शिव के पास जाने की जिद करने लगी। थकहार के हिमालय पार्वती को लेकर शिव के पास फिर पहुंच गए, और पार्वती की सेवा स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करने लगे। शिव ने कहा कि वे ध्यान योग में रमे रहते हैं, वैसे में स्त्री का क्या काम। स्त्री तो स्वभाव से ही चंचल होती है, और बड़े से बड़े योगियों का ध्यान भंग कर देती हैं। फिर उन्होंने कहा कि वे हमेशा प्रकृति से परे अपने परमानन्द व शून्य स्वरूप में स्थित रहते हैं। इस पर पार्वती ने उनसे कहा कि वे प्रकृति से परे रह ही नहीं सकते। प्रकृति के बिना तो वे बोल भी नहीं सकते, फिर क्यों बड़ी-बड़ी बातें कर रहे हैं। अगर वे प्रकृति से परे हैं और उन्हें सबकुछ पहले से ही प्राप्त है, तब क्यों इस हिमालय शिखर पर तपस्या कर रहे हैं। जो प्रकृति से परे है, उसका प्रकृति कुछ नहीं बिगाड़ सकती, फिर क्यों उससे भयभीत हो रहे हैं। शिव को यह तर्क अच्छा लगा, और उन्होंने पार्वती को सखियों के साथ प्रतिदिन अपनी सेवा करने की अनुमति दे दी। शिव पार्वती के हावभाव से अनासक्त रहते थे। उनके मन में कभी कामभाव पैदा नहीं हुआ। हालाँकि उन्हें अपने ध्यान में पार्वती ही नजर आती थी। उन्हें लगने लगा कि उनकी पूर्व पत्नी सती ही पार्वती के रूप में उपस्थित हुई है। देवताओं व ऋषियों ने यह अच्छा अवसर जानकर कामदेव को शिव के मन में कामभाव पैदा करने के लिए भेजा। वे ऊर्ध्वरेता (ऐसा व्यक्ति जिसका वीर्य ऊपर की तरफ बहता हो)

शंकर को च्युतरेता (ऐसा व्यक्ति जिसका वीर्य नीचे की ओर गिर कर बर्बाद हो जाता हो) बनाना चाहते थे। देवता व ऋषि दैत्य तारकासुर से परेशान थे। उसका वध शिव पार्वती के पुत्र के हाथों से होना था। इसीलिए वे शिव व पार्वती का विवाह कराना चाहते थे। शिव पहले तो पार्वती पर कामासक्त हो गए, और कामुकता के साथ उसके रूप-श्रृंगार का वर्णन करने लगे। फिर जैसे ही वे पार्वती के वस्त्रों के अंदर हाथ डालने लगे, और स्त्रीस्वभाव के कारण पार्वती शर्माती हुई दूर हटकर मुस्कुराने लगी, वैसे ही उन्हें अपनी ईश्वररूपता का विचार आया, और वे अपनी करनी पर पछताते हुए पीछे हट गए। फिर उनकी नजर पास में खड़े कामदेव पर गई। शिव की तीसरी आंख के क्रोधपूर्ण तेज से कामदेव खुद ही भस्म हो गया। शिव चाहते थे कि जब पार्वती का गर्व या अहंकार समाप्त हो जाएगा, वे तभी उसके साथ प्रेमसंबंध बनाएंगे। वैसा ही हुआ। जैसे ही पार्वती का अहंकार नष्ट हुआ, वैसे ही शिव ने उन्हें अपना लिया और उनके आपसी प्रेमसंबंध से कार्तिकेय का जन्म हुआ, जिसने बड़े होकर राक्षस तारकासुर का वध किया। तारकासुर ने देवताओं को बंधक बनाया हुआ था। वह देवताओं से अपनी मर्जी से काम करवाता था। दरअसल उसने ब्रह्मा से यह वरदान मांगा हुआ था कि वह शिव के पुत्र के सिवाय और किसी के हाथों से न मरे। उसे पता था कि शिव तो प्रकृति से परे साक्षात परमात्मा हैं, वे भला किसलिए विवाह करेंगे।

शिव-पार्वती विवाह की उपरोक्त रूपात्मक कहानी का रहस्योद्घाटन

ईश्वर भी जीव से मिलने के लिए बेताब रहता है। अकेले रहकर वह ऊब जैसा जाता है। यदि ऐसा न होता तो जीवविकास न होता। जीव से मिलने के लिए वह जीव के शरीर के सहस्रार में बैठकर तप करने लगता है। वह न कुछ खाता है, न कुछ पीता है। बस चुपचाप अपने स्वरूप में ध्यानमग्न रहता है। यही शिव का वहाँ तपस्या करना है। जीव का शरीर ही हिमालय पर्वत है, और जीव का मन अर्थात कुंडलिनी ही सती या पार्वती है। वे अपनी तपस्या व योगसाधना के प्रभाव से ही अपनी प्रेमिका सती के इतना नजदीक रहकर भी उसके लिए व्याकुल नहीं होते। सुषुम्ना यहाँ गंगा नदी है, जो सहस्रार को ऊर्जा की भारी मात्रा देकर उसे ऊर्जावान अर्थात पवित्र करती रहती है। जीवात्मा यहाँ पर्वतराज हिमालय या हिमाचल भी है। ऐसे तो जीवात्मा का मिलन परमात्मा से बीच-बीच में होता रहता है, पर पूरा मिलन नहीं होता। इसीको इस रूप में लिखा है कि शिव ने अपने वहाँ किसी के आकर मिलने को मना कर दिया। मिलने का अर्थ यहां पूर्ण मिलन ही है। दो के बीच पूर्ण मिलन तभी संभव हो सकता है, जब दोनों एक जैसे स्वभाव के हों। यदि शिव आम आदमी से पूर्णमिलन करेंगे, तो स्वाभाविक है कि उनकी तपस्या भंग हो जाएगी, क्योंकि आम आदमी तो तपस्या नहीं करते, और अनेकों दोषों से भरे होते हैं। इसीलिए जीवात्मा अपने मन और अपनी इन्द्रियों को बाहर ही बाहर दुनियादारी में ही उलझा कर रखता है, उसे शिव से मिलने सहस्रार की तरफ नहीं

जाने देता। ये मन, इन्द्रियाँ और प्राण ही राजा हिमाचल के नगरनिवासी हैं। यदि ये कभी गलती से सहस्रार की तरफ चले भी जाएं, तो उन्हें अंधेरा ही हाथ लगता है। यह अंधेरा ही पर्वतराज हिमाचल द्वारा उन्हें दिया जाने वाला कठोर दंड है। पर मन में जो कुंडलिनी चित्र होता है, वह बारम्बार शिव से मिलने के लिए सहस्रार जाना चाहता है। यही पार्वती है। मन का सर्वाधिक शक्तिशाली चित्र कुंडलिनी चित्र ही होता है। वही सहस्रार तक आसानी से जाता रह सकता है। इसीको पार्वती की जिद और हिमालय के द्वारा उसको शिव के पास ले जाने के रूप में बताया गया है। इसीका यह मतलब भी निकलता है कि पार्वती शिव को कहती है कि यदि वह प्रकृति से परे है, तो वह सहस्रार में बैठ कर किसकी आस लगा कर तपस्या कर रहा है। मतलब कि प्रकृति ने ही शिव को इस शरीर के सहस्रार चक्र में बैठने के लिए मजबूर किया है, ताकि उसका मिलन पार्वती रूपी कुंडलिनी से हो सके। केवल कुंडलिनी चित्र को ही सहस्रार में भेजकर आनन्द आता है, अन्य चित्रों को भेजकर नहीं। इसको इस रूपात्मक कथा में यह कहकर बताया गया है कि शिव ने पार्वती के द्वारा की जाने वाले अपनी प्रतिदिन की सेवा को स्वीकार कर लिया। पार्वती प्रतिदिन सखियों के साथ शिव की सेवा करने उस पवित्र शिखर पर जाती और प्रतिदिन घर को लौट आती। इसका मतलब है कि प्रतिदिन के कुंडलिनी योगाभ्यास के दौरान कुंडलिनी थोड़ी देर के लिए ही सहस्रार में रुकती, शेष समय अन्य चक्रों पर रहती। मूलाधार चक्र ही कुंडलिनी शक्ति का अपना घर है। पीठ में ऊपर चढ़ने वाली मुख्य प्राण ऊर्जा और साँसों की गति जो हमेशा कुंडलिनी के साथ रहती हैं, वे पार्वती की सखियां कही गई हैं। हर क्रिया की बराबर की प्रतिक्रिया होती है। कुंडलिनी के सहस्रार में होने से अद्वैत का अनुभव हो रहा है, मतलब कुंडलिनी शिव का ध्यान कर रही है। उसके बदले में शिव भी कुंडलिनी का उतना ही ध्यान कर रहे हैं। शिव को पार्वती में अपनी अर्धांगिनी सती नजर आती है। दरअसल जीव या कुंडलिनी शिव से ही अलग हुई है। कभी वह शिव से एकरूप होकर रहती थी। ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा कामदेव को शिव-पार्वती का मिलन कराने के लिए भेजने का अर्थ है, कुदरती तौर पर उच्च कोटि के योगसाधक का कामुकता या यौनतन्त्र की ओर आकर्षित होना। आप आए दिन देखते होंगे कि कैसे बड़े-बड़े आध्यात्मिक व्यक्तियों पर यौन शोषण के आरोप लगते रहते हैं। यहाँ तक विश्वामित्र जैसे प्रख्यात ब्रह्मऋषि भी इस यौनकामुकता से बच नहीं पाए थे, और भ्रष्ट हो गए थे। दरअसल यह कामुकता कुंडलिनी को इसी तरह से अंतिम मुक्तिगामी वेग (एस्केप विलोसिटी) को प्रदान करने के लिए पैदा होती है, जैसे एक अंतरिक्षयान को धरती के गुरुत्व बल से बाहर निकालने के लिए इसके रॉकेट इंजन से शक्ति पैदा होती है, ताकि वह भौतिकता से मुक्त होकर शिव से एकाकार हो सके। पर बहुत से योगी इस कामुकता को ढंग से संभाल नहीं पाते, और लाभ की बजाय अपनी हानि कर बैठते हैं। उस यौनकामुकता का सहारा लेकर कुंडलिनी शिव के बहुत नजदीक तो चली गई, पर उनसे एकाकार नहीं हो सकी। इसका मतलब है कि कुंडलिनी जागरण नहीं हो सका। आज्ञा चक्र पर ध्यान से कुंडलिनी मानसपटल पर बनी रहती है, जिससे कामुकता वाला काम भी कामुकता से रहित और पवित्र हो जाता है। इसे ही शिव की तीसरी आंख से कामदेव का जल

कर भस्म होना कहा गया है। तीसरी आंख आज्ञाचक्र पर ही स्थित होती है। मैं तो आज्ञा चक्र को ही तीसरी आंख मानता हूँ। तीसरी आँख या आज्ञा चक्र पर स्थित इसी कुंडलिनी शक्ति के प्रभाव से ही यौनयोग भौतिक कामुकता से अछूता रहता है, जबकि समान प्रकार की भौतिक गतिविधियों के बावजूद अश्लील पोर्न भड़काऊ कामुकता से भरा होता है। देवताओं की प्रार्थना पर शिव ने पार्वती से तभी विवाह किया जब पहले पार्वती ने अपना अहंकार नष्ट कर लिया। यह मैं पिछली पोस्ट में भी बता रहा था कि जब योगसाधना से उत्पन्न सत्त्वगुण पर भी अहंकार समाप्त हो जाता है, तभी कुंडलिनी जागरण की संभावना बनती है। कुंडलिनी मन या जीव का प्रतीक है। जीव का अहंकार खत्म हो गया, मतलब कुंडलिनी-रूपी पार्वती का अहंकार खत्म हो गया। जीव के शरीर में सभी देवता बसे हैं। जीवात्मा के रूप में वे भी शरीर में बंधे हुए हैं। उदाहरण के लिए ब्रह्मांड में उन्मुक्त विचरण करने वाले सूर्य देवता छोटी-2 दो आंखों में, सर्वव्यापी वायुदेव छोटी सी नाक में, अनन्त आकाश में फैला जल देवता सीमित रक्त आदि में। इसी तरह ऋषि भी जीव को ज्ञान का उपदेश करके बंधे हुए हैं। ये देवता और ऋषि भी तभी पूर्ण रूप से मुक्त माने जाएंगे, जब जीव मुक्त होगा, मतलब कुंडलिनी जागरण के रूप में शिव-पार्वती का विवाह होगा। जीवमुक्ति के लिए यही देवताओं व ऋषियों की प्रार्थना है, जिसे शिव अन्ततः स्वीकार कर लेते हैं। तारकासुर राक्षस यहाँ अज्ञान के लिए दिया गया नाम है। तारक का अर्थ आंख की पुतली होता है, जो अज्ञान की तरह ही अंधियारे रँग वाली होती है। यह जीव के मन सहित उसके पूरे शरीर को बंधन में डालता है। तारक का मतलब आंख या रौशनी या ज्ञान भी है। इसको नष्ट करने वाला राक्षस ही तारकासुर हुआ। अज्ञान रूपी तारकासुर आदमी को अंधा कर देता है। उपरोक्तानुसार जीव के बंधन में पड़ने से देवता और ऋषि खुद ही बंधन में पड़ जाते हैं। उसका संहार केवल कुंडलिनी जागरण से पैदा होने वाला ज्ञान ही कर पाता है, जिसे इस कथा में शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय के रूप में वर्णित किया गया है।

कब तक सत्य छिपाओगे~दशहरा विशेष कविता

कब तक सत्य छुपाओगे
कब तक प्रकाश दबाओगे।

खड़ा है रावण धर्म में
पड़ा है खंजर मर्म में।
पाप है अपने चरम में
मनुता डूबी शर्म में।
हिंसा का ढूंढोगे
कब तक बहाना।
जैसा करोगे
वैसा पाओगे।
कब तक सत्य छुपाओगे
कब तक प्रकाश दबाओगे।

पूजा पंडाल सज चुके
अपना धर्म भज चुके।
रावण धर्म के लोगों के
हिंसक कदम नहीँ रुके।
पुतले को जलाओगे
अपना मन बहलाओगे।
कब तक सत्य छुपाओगे
कब तक प्रकाश दबाओगे।

अगला वर्ष आएगा
यही बहारें लाएगा।
राज करेगा वीर बुजदिल
ये ही मंजर पाएगा।
मानवता को बुजदिली
कब तक तुम कह पाओगे।
कब तक सत्य छुपाओगे
कब तक प्रकाश दबाओगे।
साभार~भीष्म@bhishmsharma95

कुंडलिनी योग हिंदु धर्म रूपी पेड़ पर उगने वाला मीठा फल है, और फल तभी तक है, जब तक पेड़ है

दोस्तों, यह पोस्ट शांति के लिए और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए समर्पित है। क्योंकि कुंडलिनी योग विशेषरूप से हिंदु धर्म से जुड़ा हुआ है, इसीलिए इसको कतई भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। मैं वैसा बनावटी और नकली योगी नहीं हूँ कि बाहर से योग-योग करता फिरूँ और योग के मूलस्थान हिंदूवाद पर हो रहे अत्याचार को अनदेखा करता रहूँ। अभी हाल ही में इस्लामिक आतंकियों ने कश्मीर में एक स्कूल में घुसकर बाकायदा पहचान पत्र देखकर कुछ हिंदुओं-सिखों को मार दिया, और मुस्लिम कर्मचारियों को घर जाकर नमाज पढ़ने को कहा। इसके साथ ही, बांग्लादेश में मुस्लिमों की भीड़ द्वारा हिंदुओं और उनके धर्मस्थलों के विरुद्ध व्यापक हिंसा हुई। उनके सैकड़ों घर जलाए गए। उन्हें बेघर कर दिया गया। कई हिंदुओं को जान से मार दिया गया। जेहादी भीड़ मौत का तांडव लेकर उनके सिर पर नाचती रही। सभी हिंदु डर के साए में जीने को मजबूर हैं। मौत से भयानक तो मौत का डर होता है। यह असली मौत से पहले ही जिंदगी को खत्म कर देता है। इन कट्टरपंथियों के दोगलेपन की भी कोई हद नहीं है। हिंदुओं के सिर पर तलवार लेके खड़े हैं, और उन्हीं को बोल रहे हैं कि शांति बनाए रखो। भई जब मर गए तो कैसी शान्ति। हिंसा के विरुद्ध कार्यवाही करने के बजाय हिंसा को जस्टिफाई किया जा रहा है। कहा जा रहा है कि कुरान का अपमान हुआ, इस्लाम का अपमान हुआ, पता नहीं क्या-2। वह भी सब झूठ और साजिश के तहत। फेसबुक पर झूठी पोस्ट वायरल की जा रही है। पुलिस और अन्य सुरक्षा एजेंसियां चुपचाप मूकदर्शक बनी हुई हैं। उनके सामने भी हिंसा हो रही है। धार्मिक हिंसा के विरुद्ध सख्त अंतरराष्ट्रीय कानून बनाए जाने की सख्त जरूरत है। दुनियादारी मानवीय नियम-कानूनों से चलनी चाहिए। किसी भी धर्म में कट्टरवाद बर्दाश्त नहीं होना चाहिये। सभी धर्म एक-दूसरे की ओर उंगली दिखाकर अपने कट्टरवाद को उचित ठहराते हुए उसे जस्टिफाई करते रहते हैं। यह रुकना चाहिए। कट्टरवाद के खिलाफ खुल कर बोलना चाहिए। मैं जो आज आध्यात्मिक अनुभवों के शिखर के करीब पहुंचा हूँ, वह कट्टरपंथ के खिलाफ बोलते हुए और उन्मुक्त जीवन जीते हुए ही पहुंचा हूँ। कई बार तो लगता है कि पश्चिमी देशों की हथियार निर्माता लॉबी के हावी होने से ही इन हिंसाओं पर इतनी अंतरराष्ट्रीय चुप्पी बनी रहती है। इस्कॉन मंदिर को गम्भीर रूप से क्षतिग्रस्त किया गया, भगवान की मूर्तियां तोड़ी गईं, और कुछ इस्कॉन अनुयायियों की बेरहमी से हत्या की गई। सबको पता है कि यह सब पाकिस्तान ही करवा रहा है। इधर दक्षिण एशिया में बहुत बड़ी

साजिश के तहत हिंदुओं का सफाया हो रहा है, उधर पूरा अंतरराष्ट्रीय समुदाय चुप, संयुक्त राष्ट्र संघ चुप, मानवाधिकार संस्थाएँ चुप। क्या हिंदुओं का मानवाधिकार नहीँ होता? क्या हिंदु जानवर हैँ? फिर यूएनओ की पीस कीपिंग फोर्स कब के लिए है। हिंदुओं के विरुद्ध यह साजिश कई सदियों से है, इसीलिए तो पाकिस्तान और बांग्लादेश में हिंदुओं की जनसँख्या कई गुणा कम हो गई है, और आज विलुप्ति की कगार पर है, पर मुसलमानों की जनसंख्या कई गुना बढ़ी है। अफगानिस्तान और म्यांमार में भी हिंदुओं के खिलाफ ऐसे साम्प्रदायिक हमले होते ही रहते हैं। यहाँ तक कि भारत जैसे हिन्दुबहुल राष्ट्र में भी अनेक स्थानों पर हिंदु सुरक्षित नहीं हैं, विशेषकर जिन क्षेत्रों में हिन्दु अल्पसंख्यक हैं। आप खुद ही कल्पना कर सकते हैं कि जब भारत जैसे हिन्दुबहुल देश के अंदर और उसके पड़ोसी देशों में भी हिंदु सुरक्षित नहीं हैं, तो 50 से ज्यादा इस्लामिक देशों में हिंदुओं की कितनी ज्यादा दुर्दशा होती होगी। पहले मीडिया इतना मजबूत नहीं था, इसलिए दूरपार की दुनिया ऐसी साम्प्रदायिक घटनाओँ से अनभिज्ञ रहती थी। पर आज तो अगर कोई छींकता भी है, तो भी ऑनलाइन सोशल मीडिया में आ जाता है। इसलिए आज तो जानबूझकर दुनिया चुप है। पहले संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाएँ नहीं होती थीं। पर आज भी ये संस्थाएँ न होने की तरह ही लग रही हैं, क्योंकि ये अल्पसंख्यकों को कोई सुरक्षा नहीँ दे पा रही हैं। वैसा बोस भी क्या, जो अपने मातहतों को काबू में न रख सके। मुझे तो यह दिखावे का यूएनओ लगता है। उसके पास शक्ति तो कुछ भी नहीँ दिखती। क्यों वह नियम नहीं बनाता कि कोई देश धर्म के आधार पर नहीँ बन सकता। आज के उदारवादी युग में धर्म के नाम पर राष्ट्र का क्या औचित्य है। धार्मिक राष्ट्र की बात करना ही अल्पसंख्यक के ऊपर अत्याचार है, लागू करना तो दूर की बात है। जब एक विशेष धार्मिक राष्ट्र का मतलब ही अन्य धर्मों पर अत्याचार है, तो यूएनओ इसकी इजाजत कैसे दे देता है। यूएनओ को चाशनी में डूबा हुआ खंजर क्यों नहीं दिखाई देता। प्राचीन भारत के बंटवारे के समय आधा हिस्सा हिंदुओं को दिया गया, और आधा मुसलमानों को। पर वस्तुतः हिंदुओं को तो कोई हिस्सा भी नहीं मिला। दोनों हिस्से मुसलमानों के हो गए लगते हैं। आज जिसे भारत कहते हैं, वह भी दरअसल हिंदुओं का नहीं है। दुनिया को हिन्दुओं का दिखता है, पर है नहीँ। यह एक बहुत बड़ा छलावा है, जिसे दुनिया को समझना चाहिए। भारत में एक विशेष धर्म को अल्पसंख्यक के नाम से बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जिसका ये खुल कर दुरुपयोग करते हैं, जिसकी वजह से आज भारत की अखंडता और संप्रभुता को खतरा पैदा हो गया लगता है। पूरी दुनिया में योग का गुणगान गाया जाता है, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है, पर जिस धर्म से योग निकला है, उसे खत्म होने के लिए छोड़ दिया गया है। बाहर-बाहर से योग का दिखावा करते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि यदि हिंदु धर्म नष्ट हो गया, तो योग भी नहीं बच पाएगा, क्योंकि मूलरूप में असली योग हिंदु धर्म में ही है। पतंजलि योगसूत्रों पर जगदप्रसिद्ध और गहराई से भरी हुई पुस्तक लिखने वाले एडविन एफ. ब्रयांट लिखते हैं कि हिंदू धर्म, विशेषकर इसके ग्रँथ (मुख्यतया पुराण) ही योग का असली आधारभूत ढांचा है, जैसे अस्थिपंजर मानव शरीर का आधारभूत ढांचा होता है। योग तो उसमें ऐसे ही

सतही है, जैसे मानवशरीर में चमड़ी। जैसे मानव को चमड़ी सुंदर और आकर्षक लगती है, वैसे ही योग भी। पर अस्थिपंजर के बिना चमड़ी का अस्तित्व ही नहीं है। इसलिए योग को गहराई से समझने के लिए हिन्दु धर्म विशेषकर पुराणों को गहराई से समझना पड़ेगा। इसीलिए योग को बचाने के लिए हिन्दु धर्म और उसके ग्रन्थों का अध्ययन और उन्हें संरक्षित करने की जरूरत है। उनकी पुस्तक पढ़ कर लगता है कि उन्होंने कई वर्षों तक कड़ी मेहनत करके हिन्दु धर्म, विशेषकर पुराणों को गहराई से समझा है, उसे अपने जीवन में उतारा है। मैंने भी हिंदु धर्म का भी गहराई से अध्ययन किया है, और योग का भी, इसलिए मुझे पता है। कुछ धर्म तो हिंदु धर्म का विरोध करने के लिए ही बने हुए लगते हैं। हिंदु धर्म पूरी तरह से वैज्ञानिक है। असली धर्मनिरपेक्षता हिन्दु धर्म में ही समाहित है, क्योंकि इसमें दुनिया के सभी धर्म और आचार-विचार समाए हुए हैं। यहां तक कि एक मुस्लिम मौलवी और जमीयत उलेमा हिंद के नेता, मुफ्ती मोहम्मद इलियास कासमी ने भी भगवान शिव को इस्लाम के पहले दूत के रूप में संदर्भित किया है। ज्यादा बताने की जरूरत नहीं है। समझदारों को इशारा ही काफी होता है। जिन धर्मों को अपने बढ़ावे के लिए हिंसा, छल और जबरदस्ती की जरूरत पड़े, वे धर्म कैसे हैं, आप खुद ही सोच सकते हैं। मैंने इस वेबसाइट में हिंदु धर्म की वैज्ञानिकता को सिद्ध किया है। अगर किसी को विश्वास न हो तो वह इस वेबसाइट का अध्ययन कर ले। मैं यहाँ किसी धर्म का पक्ष नहीं ले रहा हूं, और न ही किसी धर्म की बुराई कर रहा हूँ, केवल वैज्ञानिक सत्य का बखान कर रहा हूं, अपनी आत्मा की आवाज बयाँ कर रहा हूँ, अपने कुंडलिनी जागरण के अनुभव की आवाज को बयाँ कर रहा हूँ, अपने आत्मज्ञान के अनुभव की आवाज को बयाँ कर रहा हूँ, अपने पूरे जीवन के आध्यात्मिक अनुभवों की आवाज को बयां कर रहा हूँ, अपने दिल की आवाज को बयां कर रहा हूँ। मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। एक आदमी क्या होता है, उसका तर्क क्या होता है, पर अनुभव को कोई झुठला नहीं सकता। प्रत्यक्ष अनुभव सबसे बड़ा प्रमाण होता है। आज इस्कॉन जैसे अंतरराष्ट्रीय हिन्दु संगठन की पीड़ा भी किसी को नहीं दिखाई दे रही है, जबकि वह पूरी दुनिया में फैला हुआ है। मैंने उनकी पीड़ा को दिल से अनुभव किया है, जिसे मैं लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा हूँ। यदि हिंदु धर्म को हानि पहुंचती है, तो प्रकृति को भी हानि पहुंचती है, धरती को भी हानि पहुंचती है। प्रकृति-पूजा और प्रकृति-सेवा का व्यापक अभियान हिंदु धर्म में ही निहित है। देख नहीं रहे हो आप, दुनिया के देशों के बीच किस तरह से घातक हथियारों की होड़ लगी है, और प्रदूषण से किस तरह धरती को नष्ट किया जा रहा है। धरती को और उसके पर्यावरण को यदि कोई बचा सकता है, तो वह हिंदु धर्म ही है। भगवान करे कि विश्व समुदाय को सद्बुद्धि मिले।

कुंडलिनी रहस्य पुरुष व स्त्री के बीच के शाश्वत प्रेम संबंध के रूप में ही उजागर होता है

सभी मित्रों को आने वाले दीपावली पर्व की शुभकामनाएं

शिवपार्वती विवाह, दुनिया का महानतम रहस्य

मित्रो, एक अन्य अर्थ भी है शिव पार्वती विवाह का। पार्वती प्रकृति है, जो मन के विचारों के रूप में है। वह परब्रह्म शिव को बांध देती है। यही शिव पार्वती से कहते हैं कि पार्वती, मैं सदा स्वतंत्र हूँ, पर तुमने मुझे परतंत्र बना दिया है, क्योंकि सबकुछ करने वाली महामाया प्रकृति तुम ही हो। पार्वती ने घोर तपस्या की, मतलब प्रकृति ने करोड़ों वर्षों तक जीवविकास किया। तब वह इस काबिल हुई कि परमात्मा को जीवात्मा बना सकी। इससे जीव की उत्पत्ति हुई। पार्वती शिव से कहती है कि वह उसके पिता हिमालय से उसका हाथ मांगे। इसका मतलब है कि प्रकृति नहीं चाहती कि हर जगह जीवात्मा की उत्पत्ति होए। अगर ऐसा होता तो पत्थर, मिट्टी, पानी, कीटाणु आदि में भी जीवात्मा होती और उन्हें भी दुःख दर्द हुआ करता, इससे सृष्टि में अव्यवस्था फैलती। इसलिए प्रकृति चाहती है कि जब जीव का शरीर अच्छी तरह से विकसित हो जाए, तब उसीमें जीवात्मा की उत्पत्ति होए। इसी विकसित शरीर को ही पर्वतराज हिमालय कहा गया है। पार्वती पहले हिमालय का निर्माण करती है, फिर उसकी पुत्री के रूप में पैदा होकर उसी पर रहने लगती है। मतलब कि प्रकृति पहले शरीर का निर्माण करती है, फिर उसीसे पैदा जैसी होकर उसीके अंदर बस जाती है। यह ऐसे ही है, जैसे आदमी पहले अपने लिए घर बनाता है, फिर उसके अंदर खुद रहने लगता है। फिर शिव कहते हैं कि वे निर्विकार और निरीह होकर भी भक्तों के लिए शरीर धारण करते हैं। वास्तव में ये दृश्य जगत शिव का ही शरीर है। इसी के पीछे भागकर दरअसल आदमी शिव के पीछे ही भागता है, मतलब उसीकी भक्ति करता है। पर आदमी को ऐसा नहीं लगता। कुंडलिनी भी परब्रह्म शिव का स्थूल रूप ही है, जिसके ध्यान से शिव का ही ध्यान होता है। सीधे रूप में तो परब्रह्म शिव को कोई नहीं जान-पहचान सकता।

वामपंथी तंत्र के पुरोधा भगवान शिव

शिवपुराण में शिव को अभक्ष्यभक्षी और भूतबलिप्रेमी कहा है। मतलब साफ है। यह पँचमकारी वाममार्गियों की इस मान्यता की पुष्टि करता है कि शिव माँस, मदिरा, भांग आदि का सेवन करते हैं, और मंदिरों में देवताओं को दी जाने वाली पशुबलि से प्रसन्न होते हैं। खैर, सच्चाई तो

वे ही जानें। मैं तो संभावना को ही अभिव्यक्त कर रहा हूँ। वास्तव में भगवान ही सबको बचाने वाले हैं, और वही मारने वाले भी हैं। पर मारने वाले हमें भ्रम से ही प्रतीत होते हैं। उनके द्वारा मारने में भी उनके द्वारा बचाना ही छिपा होता है। हम पूरी तरह से भगवान का गुणगान तो कर सकते हैं, पर पूरी तरह उनकी नकल नहीं कर सकते। ऐसा इसलिए है क्योंकि भगवान कर्म और फल से प्रभावित नहीं होते, पर आदमी को बुरे कर्म का बुरा फल भोगना ही पड़ता है। हो सकता है कि इस्लाम की प्रारंभिक मान्यता भी यही हो, पर वह कालांतर में अतिवादी होकर अन्य धर्मों और संप्रदायों का दुश्मन बन गया हो। यहाँ तक कि एक मुस्लिम मौलवी कासिम ने भी भगवान शिव को इस्लाम के पहले दूत के रूप में संदर्भित किया है। इससे हाल की ही घटना याद आ रही है। सूत्रों के अनुसार, इस क्रिकेट विश्वकप में एक पाकिस्तानी खिलाड़ी बीच मैदान में सबके सामने नीचे बैठकर नमाज पढ़ने लग गया। पाकिस्तान को मैच जीतने से ज्यादा खुशी धर्मप्रचार से मिली।

कुंडलिनी ही एक सच्चे जीवरक्षक के रूप में

यह कहा जाता है कि विभिन्न जीवों में कुंडलिनी विभिन्न चक्रों पर रहती है। विकसित जीवों में यह ऊपर वाले चक्रों में रहती है , जबकि अविकसित जीवों में नीचे वाले चक्रों पर। मैंने इसका वर्णन एक पुरानी पोस्ट में भी किया है। इसका यह मतलब नहीं है कि सभी जीव कुंडलिनी योगी होते हैं और कुंडलिनी ध्यान करते हैं। इसका मतलब यह है कि जब हमारी चेतना का स्तर नीचा होता है, तब यदि अद्वैत का अदृश्य अवचेतन मन से ही सही, हल्का सा ध्यान या ख्याल किया जाए, तब कुंडलिनी आनंदमय शांति पैदा करती हुई नीचे वाले चक्रों पर आ जाती है। अदृश्य ध्यान का हल्का ख्याल मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि चेतनता की न्यूनावस्था में मस्तिष्क में ध्यान करने लायक़ ऊर्जा ही कहाँ होती है। अचेतनता के अंधकार के समय इस अचिंत्य ध्यान भावना से कुंडलिनी ज्यादातर नाभि चक्र पर अनुभव में आती है, और यदि चेतना का स्तर इससे भी अधिक गिरा हुआ हो, तो स्वाधिष्ठान चक्र पर आ जाती है। हालांकि कुछ क्षणों में ही कुंडलिनी मस्तिष्क के चक्रों में आ जाती है , क्योंकि कुंडलिनी का स्वभाव ही ऊपर उठना है। ऐसा करते हुए वह मूलाधार से ऊर्जा भी ऊपर ले आती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि निम्न चेतनता की अवस्था में मस्तिष्क में पर्याप्त ऊर्जा का स्तर नहीं होता, जो कुंडलिनी को ऊपर वाले चक्रों में स्थापित कर सके। मालूम पड़ता है कि कुंडलिनी का निचले चक्रों पर आना मृत्यु के समय सहायक होता है। मृत्यु के समय चेतनता बहुत निम्न स्तर पर होती है। उससे मन में अंधेरा सा छाया रहता है। उस समय अद्वैत की सूक्ष्म भावना से कुंडलिनी निचले चक्रों पर आकर अच्छे मित्र की तरह साथ निभाते हुए आनंदमयी और शांत चेतना प्रदान करती है। वह मृत्यु जनित सभी दुखों और कष्टों को हरते हुए आदमी को मुक्ति प्रदान करती है।

राम से बड़ा राम का नाम~भक्तिगीत कविता

जग में सुंदर हैं सब काम
पर मिल जाए अब आ~राम।
बोलो राम राम राम
राम से बड़ा राम का नाम।१।
दीपावली मनाएं हम
खुशियां खूब लुटाएं हम।
आ~राम आ~राम रट-रट के
काम को ब्रेक लगाएं हम।२।
मानवता को जगाएँ हम
दीप से दीप जलाएँ हम।-2
प्रेम की गंगा बहाएं हम-2
नितदिन सुबहो शाम।३।
बोलो राम राम राम
राम से बड़ा राम का नाम।-2
जग में------
वैर-विरोध को छोड़ें हम
मन को भीतर मोड़ें हम।
ज्ञान के धागे जोड़ें हम
बंधन बेड़ी तोड़ें हम।४।
दिल से राम न बोलें हम
माल पराया तोलें हम।-2
प्यारे राम को जपने का-2
ऐसा हो न काम।५।
बोलो राम राम राम
राम से बड़ा राम का नाम।-2
जग में------
मेहनत खूब करेंगे हम
रंगत खूब भरेंगे हम।
मन को राम ही देकर के
तन से काम करेंगे हम।६।
अच्छे काम करेंगे हम
अहम-भ्रम न भरेंगे हम।-2

बगल में शूरी रखकर के-2
मुँह में न हो राम।७।
बोलो राम राम राम
राम से बड़ा राम का नाम।-2
जग में------
भाईचारा बाँटें हम
शिष्टाचार ही छांटें हम।
रूढ़ि बंदिश काटें हम
अंध-विचार को पाटें हम।८।
धर्म विभेद करें न हम
एक अभेद ही भीतर हम।-2
कोई शिवजी कहे तो कोई-2
दुर्गा कृष्ण या राम।९।
बोलो राम राम राम
राम से बड़ा राम का नाम।-2
जग में------

धुन प्रकार~ जग में सुंदर हैं दो नाम, चाहे कृष्ण कहो या राम [भजनसम्राट अनुप जलोटा गीत] **साभार~भीष्म@bhishmsharma95**

कुंडलिनी ध्यान के लिए तप को ही शिव या इष्ट ध्यान के लिए तप कहा जाता है, मोटे तौर पर

कुंडलिनी एक लज्जा से भरी स्त्री की तरह अपने प्रियतम शिव से मिलने से शर्माती है, और असंख्य युगों और जन्मों तक अविवाहित रहकर ही उसकी अव्यवस्थित खोज में पागलों की तरह भटकती रहती है

दोस्तो, मैं पिछली पोस्ट में शिवपुराण का हवाला देकर बता रहा था कि पार्वती शिव से मिलते हुए शरमा कर पीछे भी हट रही थी, पर साथ में आनन्द से मुस्कुरा भी रही थी। दरअसल कुंडलिनी या जीव के साथ भी ऐसा ही होता है। कुंडलिनी जैसे ही शिव से एक होने लगती है, वैसे ही वह घबराकर और शरमा कर पीछे हट जाती है। हालांकि उसे आनन्द भी बहुत आता है, और बाद में वह पछताती भी है कि वह क्यों पीछे हटी। यही क्षणिक कुंडलिनी जागरण है, जैसा शिवकृपा से व गुरुकृपा से संभवतः मुझे भी हुआ था। अब तो मुझे वह अनुभव याद भी नहीं। इतना सा लगता है कि वह हुआ था कुछ और मैं पूरी तरह से खुल जैसा गया था उस समय। बहुत संभव है कि इसी कुंडलिनी कथा को ही इस शिवकथा के रूप में लिखा हो। न भी लिखा हो, तब भी कोई बात नहीं, क्योंकि जैसा स्थूल जगत में होता है, वैसा ही सूक्ष्म जगत में भी होता है। कोई फर्क नहीं। यतपिण्डे तत्ब्रह्मांडे। शिव ने जब कामदेव को भस्म कर दिया, तब वे खुद भी अंतर्धान हो गए। इससे पार्वती विरह से अत्यंत व्याकुल हो गई। हर समय वह शिव की याद में खोई रहती थी। उसे कहीं पर भी आनन्द नहीं मिल पा रहा था। उसका जीवन नीरस सा हो गया था। उसकी यह दशा देखकर पर्वतराज हिमाचल भी दुखी हो गए। उन्होंने अपनी बेटी पार्वती को अपनी गोद में बिठाकर उसे प्यार से सांत्वना दी। एकदिन नारद मुनि पार्वती से मिलने आए और पार्वती को समझाया कि उसने अपना अहंकार नष्ट नहीं किया था, इसीलिए शिव अंतर्धान हुए। फिर उससे और कहा कि शिव उसकी भलाई के लिए उसका अहंकार खत्म करना चाहते हैं, इसीलिए उससे दूर हुए हैं। नारद ने पार्वती को अहंकार खत्म करने के लिए तपस्या करने को कहा। जब पार्वती ने तपस्या के लिए नारद से मंत्र मांगा, तो नारद ने उसे शिव पंचाक्षर मन्त्र दिया। यह "ॐ नमः शिवाय" ही है।

उपरोक्त रूपात्मक कथा का रहस्योद्घाटन

ऐसा घटनाक्रम बहुत से प्रेम प्रसंगों में दृष्टिगोचर होता है। एकबार जब मानसिक यौनसंबंध बन जाता है, उसके बाद एकदूसरे के प्रति बेहिसाब आकर्षण पैदा हो जाता है। पुरुष लगातार अपनी प्रेमिका की परीक्षा लेता है। वह उसे अपने प्रेम में दीवाना देखना चाहता है। वह उसे अपने प्रति पूरी तरह से निष्ठावान और समर्पित देखना चाहता है। कई संयमित मन वाले पुरुष तो यहाँ तक चाहते हैं कि स्त्री उसे स्वयं प्रोपोज़ करे और यहाँ तक कि वह अपनी डोली लेकर भी खुद ही उसके घर आए। यह जोक नहीं, एक मनोवैज्ञानिक वास्तविकता है। यह कुंडलिनी से प्रेरित ही है। वे ऐसा न होने पर स्त्री को त्यागने से भी परहेज नहीं करते। शिव के जैसे उच्च आध्यात्मिक पुरुष तो स्त्री के अत्यंत निकट आ जाने पर भी अपने को संयमित करके अपने को गलत काम से बचा लेते हैं। वे स्त्री से बात भी नहीं करते और जीवन में अपना अलग रास्ता पकड़ लेते हैं। यह शिव के अंतर्धान होने की तरह ही है। इससे स्त्री, प्रेमी पुरुष की याद में बिन पानी मछली की तरह तड़पती है। पार्वती के साथ भी वैसा ही हुआ था। पुरुष भी उसकी याद को अपने मन में बसा कर अपने काम में लग जाता है। यह शिव के ध्यान की अवस्था में चले जाने की तरह ही है। अधिकांशतः पुरुष तो पहले से ही शिव की तरह अहंकार से रहित होता है। ज्यादातर मामलों में, रूप, गुण और संपत्ति का अहंकार तो स्त्री को ही ज्यादा होता है। इसी वजह से पुरुष उससे दूर चला जाता है, क्योंकि आग और पानी का मेल कहाँ। मैं यहाँ लैंगिक पक्षपात नहीं कर रहा हूँ, बल्कि प्रकृति की अद्भुत सच्चाई बयान कर रहा हूँ। अपवाद तो हर जगह हैं, कहीं ज्यादा तो कहीं कम। कालांतर में जब दुनियादारी के थपेड़े खाकर स्त्री का अहंकार नष्ट होता है, तब फिर उस प्रेमी पुरुष से उसकी मुलाकात होती है। हालाँकि अधिकांश स्त्रियों ने अपनी अलग गृहस्थी बसा ली होती है। पार्वती के जैसी तो बिरली ही होती है जो ताउम्र शिव की प्रतीक्षा करती रहती हो। फिर भी स्त्री, अपने सच्चे प्रेमी पुरुष से भावनात्मक लाभ तो प्राप्त करती ही है, बहिन, मित्र आदि किसी भी सम्बन्ध से। उन दोनों की मिश्रित मानसिक शक्ति स्वयँ ही उनकी संतानों को प्राप्त हो जाती है। यही शिव पार्वती का लौकिक मिलन, और मानसिक शक्ति के रूप में भगवान कार्तिकेय का जन्म है।

हिमालय का गंगावतरण वाला स्थान ही सहस्रार है

पार्वती उसी गंगावतरण वाले स्थान पर तप करती है, जहाँ उसने शिव के साथ प्रेमालाप किया था। वह स्थान सहस्रार चक्र ही है। "प्रेम की गंगा" छंद भी लोकप्रसिद्ध है। दरअसल प्रणय प्रेम से पीठ में सुषुम्ना से होकर चढ़ने वाली ऊर्जा ही वह प्रेम की गंगा है। कुंडलिनी सहस्रार चक्र पर आरूढ़ हो गई, और अद्वैत के आनन्द का अनुभव करने लगी। इसको ऐसे लिखा गया है कि पार्वती सहस्रार में तप करने लगी। तप का मतलब सहस्रार में कुंडलिनी का ध्यान ही है। यही शिव का ध्यान भी है, क्योंकि सहस्रार में कुंडलिनी से मिलने शिव देरसवेर जरूर आते हैं,

मतलब कुंडलिनी जागरण जरूर होता है। तप ध्यान के लिए ही किया जाता है। इसलिए तप को ध्यान योग या कुंडलिनी योग भी कह सकते हैं। यदि तप से ध्यान न लगे, तो वह तप नहीं, मात्र दिखावा है। हालाँकि तप कुंडलिनी के ध्यान के लिए होता है, पर इसे मोटे तौर पर शिव के ध्यान के लिए बताया जाता है, क्योंकि कुंडलिनी से अंततः शिव की ही तो प्राप्ति होती है। यह इस ब्लॉग के इस मुख्य बिंदु को फिर से प्रमाणित करता है कि कुंडलिनी ध्यान या कुंडलिनी योग ही सबकुछ है। अपनी बेटी को मनाने और तप से रोकने के लिए उसके पिता हिमाचल और माता मेनका अपने पुत्रों और प्रसिद्ध पर्वतों के साथ वहाँ पहुंचते हैं। वे उसके कष्ट से दुखी हो जाते हैं। वे उसे कहते हैं कि कामदेव को भस्म करने वाले वैरागी शिव उसे नहीं मिलने आने वाले। वैसे भी भगवान को किसी की परवाह नहीं। वह अपने आप में पूर्ण है। वह अपनेआप में ही मस्त रहता है। ऐसे परम मस्तमौला को मना कर अपने वश में करना आसान काम नहीं है। पर पार्वती जैसे हठी भक्त लोग उसे मना लेते हैं। पार्वती को भक्ति की शक्ति का पूरा पता था, इसलिए वह नहीं मानती और तप करती रहती है। दरअसल मस्तिष्क ही हिमाचल राजा है। उससे ऐसे रसायन निकलते हैं, जो तपस्या से हटाते हैं। यही हिमाचल के द्वारा पार्वती को समझाना है। यह कुंडलिनी से ध्यान हटाकर जीव को बाहरी दुनियादारी में उलझाकर रखना चाहता है। विभिन्न पर्वत शिखर मस्तिष्क की अखरोट जैसी आकृति के उभार हैं, जो शरीर के विभिन्न भागों को नियंत्रित करते हैं। ये सभी पर्वतराज हिमाचल के अंदर ही हैं। मस्तिष्क को अपनी सत्ता के खोने का डर बना रहता है। उसके तप की आग की तपिश से सारा ब्रह्मांड जलने लगता है। इससे परेशान होकर ब्रह्मा को साथ लेकर सभी देवता और पर्वत उसे मनाने और तप से रोकने के लिए उसके पास जाते हैं। दरअसल यह शरीर ही संपूर्ण ब्रह्मांड है। इसमें सभी देवताओं का वास है। तप के क्लेश से यह शरीर तो दुष्प्रभावित होगा ही। यह स्वाभाविक ही है। ब्रह्मा सुमेरु पर्वत पर रहते हैं। सुमेरु पर्वत मस्तिष्क को ही कहते हैं। जैसे ब्रह्मा से ही सृष्टि का विकास होता है, वैसे ही मस्तिष्क से शरीर का विकास होता है, अपनी कल्पनाशीलता से। वैसे तो मस्तिष्क में सभी देवताओं का निवास है, पर मस्तिष्क के सर्वप्रमुख अभिमानी देवता को ही ब्रह्मा कहते हैं। सभी देवता मस्तिष्क के साथ पूरे शरीर में व्याप्त रहते हैं, पर ब्रह्मा मस्तिष्क में ही रहता है। इसीलिए ब्रह्मा का निवास सुमेरु में बताया गया है। इसलिए तप से ये ही शरीरस्थ देवता और इस शरीर रूपी ब्रह्मांड में रहने वाले असंख्य कोशिका रूपी जीव ही भूखे-प्यासे रहकर व्याकुल होते हैं। वास्तव में कुंडलिनी के साथ शरीर के प्राण भी सहस्रार को चले जाते हैं। इससे शरीर शक्तिहीन सा होकर अपंग जैसा या लाचार जैसा या पराश्रित जैसा हो जाता है। इससे स्वाभाविक ही है कि शरीर तो भौतिक रूप से पिछड़ेगा ही। बाहर के स्थूल ब्रह्मांड में कुछ नहीं होता। अगर बाहर के स्थूल जीवों और देवताओं को कष्ट हुआ करता, तो आज तक कोई भी नहीँ बचा होता, क्योंकि ध्यान योग के रूप में प्रतिदिन लाखों लोग तप करते हैं। कई योगी तो वनों-पर्वतों में भी घोर तप करते हैं।

प्रेमयोगी वज्र के द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें व कुछ अन्य अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1)) Love story of a Yogi- what Patanjali says

2)) Kundalini demystified- what Premyogi vajra says

3)) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान

4)) Kundalini science- a spiritual psychology

5)) The art of self publishing and website creation

6)) स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला

7) बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी

8) ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट

9) My kundalini website on e-reader

10) शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)

11) श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम

12) सोलन की सर्वहित साधना

13) योगोपनिषदों में राजयोग

14) क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव

15) देवभूमि सोलन

16) मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र

17) बघाटेश्वरी माँ शूलिनी

18) म्हारा बघाट

19) **कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है**

20) भाव सुमन- एक आधुनिक काव्यसुधा सरस

21) Kundalini science- A spiritual psychology-part1

22) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान-भाग 1

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन , ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट ,"https://demystifyingkundalini.com/" को निःशुल्क रूप में फोलो करें/इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु